# भारतीय साहित्य

भारतीय भाषाविज्ञान तथा साहित्य का शोधपरक त्रैमासिक

जनवरी १९६०

[ वर्ष ५, अंक १ ]



सम्पादक

डा० विश्वनाथ प्रसाद

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रकाशक —
संचालक,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय,
आगरा ।

वार्षिक मूल्य १२, रु० ।




भारतीय साहित्य
वर्ष ५, अंक १ ।

मुद्रक :—
हरि कृष्ण कपूर,
आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,
आगरा ।

# विषय सूची


विषय | पृष्ठ संख्या

१. संतों द्वारा प्रयुक्त शब्दों में नये अर्थदान की क्षमता — १
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय,
चंडीगढ़ ।

२. सम सामयिक हिन्दी गद्य-शैली की विशेषतायें और संभावनायें — १७
डा० विश्वनाथ प्रसाद,
संचालक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

३. फरगूसन का हिन्दोस्तानी कोष — ३३
डा० महादेव साहा,
द्वारा, रॉयल एशियाटिक सुसाइटी,
कलकत्ता ।

४. हिन्दी शाक्त-साहित्य — ४५
डा० शशिभूषणदास गुप्त,
अध्यक्ष, आधुनिक भाषाविभाग कलकत्ता विश्वविद्यालय,
कलकत्ता ।

५. सामाजिक वर्गों के अनुसार बैसवाड़ी शब्द-संपत्ति की समीक्षा — ७७
श्री देवीशंकर द्विवेदी,
प्राध्यापक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

६. संदेश रासक के पाठ और अर्थ संशोधन के कुछ सुझाव — ९९
डा० माताप्रसाद गुप्त,
रीडर, हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग ।

७. जायसी की चित्ररेखा — १२१
श्री श्रीराम शर्मा,
घासी बाजार
हैदराबाद ।

विषय　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ संख्या

८. जाहरपीर गुरु गुग्गा　　　　　　　　　　　　　　　　　　१३२
डा० सत्येन्द्र,
प्राध्यापक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

९. शत्रुजीत रायसा　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　१४७
श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव,
साहित्य भंडार,
दतिया।

**टिप्पणी—**

ब्रजभाषा का एक दुर्लभ काव्य ग्रंथ　　　　　　　　　　　　　१६१
श्री कृष्णदत्त वाजपेयी,
अध्यक्ष, इतिहास एवं संस्कृति विभाग सागर विश्वविद्यालय,
सागर।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

# सन्तों द्वारा प्रयुक्त शब्दों में नये अर्थदान की क्षमता

संत-साहित्य में ऐसे अनेक शब्द हैं जो परम्परया साधना विषयक किसी निश्चित अर्थ के द्योतक के रूप में अपने अपभ्रंश रूप में सन्तों में प्रचलित थे। सन्तों ने इन शब्दों के मूल अर्थ में नए अर्थों की योजना की। भाषा में सन्तों की यह देन बहुत महत्वपूर्ण है। परंतु दुर्भाग्यवश इसकी जैसी चर्चा होनी चाहिए वैसी अब तक नहीं हुई। मैंने अपनी 'कबीर' नामक पुस्तक में शून्य, सहज, निरंजन, खसम आदि शब्दों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था; तब से कुछ लोगों ने उन शब्दों पर विचार तो किया है, लेकिन घूम-फिर कर प्रायः उतने ही शब्दों में आलोचनाएँ सीमित रह गई हैं। मेरे विचार से पुराने शब्दों को नवीन अर्थ-गरिमा से सम्बद्ध करने वाले शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। इनका अध्ययन बहुत ही मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक होगा और अर्थ-विज्ञान-शास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री सम्पूर्ण रूप से नवीन और आकर्षक होगी। आज मैं थोड़े से शब्दों की ओर संकेत कर रहा हूँ। यद्यपि यह संकेत मात्र है पर मैं इस आशा से इनकी चर्चा करना उचित समझ रहा हूँ कि ये प्रतिभाशाली शोधकों को इस क्षेत्र में अधिक आकर्षित कर सकेंगे।

साधारणतः निर्गुणमार्गी संत-साधक शास्त्र के विधिवत् ज्ञान से वंचित होते थे, परन्तु अनुभव और सत्संग से प्राप्त ज्ञान के निश्चित रूप से धनी थे। उनका जीवन-दर्शन हठयोगी और कौलमार्गी साधकों से भिन्न था। परन्तु यौगिक और आध्यात्मिक साधना की धारा में चिरकाल से बहते आते हुए घिसे-घिसाए शब्द उन्हें अपने पूर्ववर्ती योगमार्गी साधकों से ही प्राप्त हुए थे। उन्होंने इन शब्दों को अपने नवीन जीवन-दर्शन के अनुकूल अर्थ प्रकट कर देने में समर्थ बनाया। मोटे तौर पर इन्हें नवीन अर्थ तीन प्रकार से उपलब्ध हुए।

१. कुछ शब्द संस्कृत शब्दों के ऐसे अपभ्रंश रूप में प्राप्त हुए थे जो संस्कृत से प्राप्त दूसरे शब्दों के समान थे। सन्तों ने उन शब्दों को अपने जीवन-दर्शन के अनुकूल दोनों ही अर्थों में स्वीकार कर लिया। इस प्रकार एक ही शब्द दो या अधिक अर्थों के व्यंजक हो गए।

२. कुछ शब्द ऐसे थे जिनके अपभ्रंश रूप फारसी या अरबी से आए हुए शब्दों के विकृत रूपों के निकट जान पड़ते थे। सन्तों ने अपने तत्त्ववाद के अनुरूप होने पर इन दोनों शब्दों को एक मान कर एक नवीन अर्थ की अभिव्यक्ति दी।

३. तीसरी श्रेणी में वे शब्द आते हैं जो संस्कृत अर्थ से एकदम भिन्न किन्तु तत्काल प्रचलित भाषा के प्रयोगों के अनुरूप-अर्थों में प्रयुक्त किए गए। ऐसे प्रयोगों में कभी-कभी मूलअर्थ एकदम छूट गया। कभी-कभी इस प्रकार के शब्दों की उद्भावना की गई जो संस्कृत के मूल अर्थों से एकदम विच्युत तो नहीं थे लेकिन जिनकी उद्भावना उन शब्दों की तौल पर की गई जो मूलअर्थ से या तो एकदम बदल गए या कुछ दूर हट गए थे। इन शब्दों को हम क्रमश: वर्द्धितार्थक, नवार्थक और उपचरितार्थक कह सकते हैं। प्रथम श्रेणी (परिवर्द्धितार्थक) में आने वाले शब्दों में अनभै, भै, उनमनि रहनी, उनमन्न, सुषमनि, बंकनालि, अलेख, अलख, निहकर्मी, स्यंभदुवार, आदि शब्द रखे जा सकते हैं। दूसरी (नवार्थक श्रेणी में अनहद, बेगमपुरा, मरजिया, अलह, खसम, आदि शब्द हैं। तीसरी (उपचरितार्थक) श्रेणी में सुच्छमवेद, सुन्न-सहज, सुरति-निरति, हंसा आदि शब्द रखे जा सकते हैं। आज के व्याख्यान में मैं कुछ थोड़े से शब्दों पर ही विचार कर सकता हूँ, परन्तु मेरे विचार से ऐसे शब्दों की संख्या बहुत अधिक है।

शब्दों के अर्थ-परिवर्तन का अध्ययन किसी जमाने में उनकी ऐतिहासिक अर्थ-परम्परा और परिवर्तन-हेतुओं के अध्ययन तक ही सीमित था। लेकिन बाद में इस शास्त्र की अध्ययन-सीमा परिवर्द्धित हुई है। भाषा कुछ अर्थ-संकेतों या प्रतीकों की जड़ आवृत्ति मात्र नहीं है, वह चेतन मस्तिष्क से निकलती है और चेतन-मस्तिष्क को ही चालित करती है। उसके संकेत स्थिर ही नहीं रह पाते। अर्थ-ग्रह ग्रहीता के अपने परिवेश के कारण बदलता रहता है। कहा जाता है कि संसार के दर्शन और विचार के साहित्य में सबसे बड़ा घपला शब्दों के प्रयोग के कारण हुआ है। किसी विशिष्टकाल के किसी विशिष्ट दार्शनिक ने कभी किसी शब्द का विशिष्ट अर्थ में व्यवहार किया, बाद में उस शब्द को रूढ़ार्थक मान लिया गया। अन्यान्य विचारों और परिवेश के कारण उस शब्द म अन्य अर्थों का सन्निवेश होता रहा और नतीजा यह हुआ कि नई परिस्थितियों में पुराना 'रूढ़' शब्द अर्थगत गड्डु-मड्डु का कारण बन गया। उदाहरण के लिए शून्य शब्द को लिया जाय। प्रथम बौद्ध दार्शनिकों ने इसका प्रयोग जिस अर्थ में किया था वह अर्थ बाद में नहीं रहा। फिर विचारगत गड्डु-मड्डु शुरू हुआ और शून्यवाद को एक विचित्र अर्थ प्राप्त हुआ। टीकाकारों और भाष्यकारों ने नई-नई परिभाषाएं कीं और पुराना शब्द नए-नए अर्थों का संकेत होता रहा। शून्य का अर्थ आकाश भी हुआ; परन्तु सगुण अर्थ में, निर्गुण अर्थ में नहीं। आगे हम देखें कि किस प्रकार विभिन्न विचार धारण करने वाले आचार्यों ने इस शब्द-गुणक-शून्य को अपने-अपने ढंग से समझा। पश्चिम में इस बात को बीज रूप में तो पहले ही स्वीकार कर लिया गया था, परन्तु एक अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न महिला, लेडी वायोला वेल्बी (Lady Viola Welby) ने इस विचार को बहुत ही परिष्कृत और कुछ हद तक धक्कामार तरीके से व्यक्त किया। आगे चलकर इनके विचारों को कई अप्रत्याशित क्षेत्रों से सहारा मिला। गणित और तर्कशास्त्र ने तो यहाँ तक कहना शुरू किया कि वास्तविक सत्ता (रियैलिटी) को हम तर्क के द्वारा पहचान नहीं पाते। जो कुछ कहते हैं वह वस्तुत: भाषा का ही विश्लेषण है। तत्तत् शास्त्रों से हम विश्व का रहस्य

नहीं, केवल भाषा का रहस्य जान पाते हैं। हमारी दुनिया वस्तुतः परावाक् की लीला का विलास मात्र है। आज हमारे पुराने आचार्यों की वह बात समझ में आने लगी है कि सारा संसार, अणु से लेकर परम व्योम तक, केवल पदार्थ है—पद का अर्थ, सविभक्तिक शब्दों का अर्थमात्र। भाषा में हम वस्तुओं का नाम नहीं पाते, पदों का—सविभक्तिक शब्दों का—अर्थमात्र पाते हैं।

आकाश या शून्य का गुण 'शब्द' बताया जाता है। इसी शब्द या नाद की चर्चा मैं पहले करना चाहता हूँ। सन्त-साहित्य में अनहदनाद की बड़ी चर्चा है। मूलतः अनहदनाद संस्कृत में बहु-प्रचलित 'अनाहतनाद' से सीधे विकसित हुआ है। पर इसके भीतर जो तत्व है वह सीम-हीन अर्थ को भी ध्वनित करता है। विदेशी 'हद' शब्द से इसका नाता जोड़कर अटपटी वाणी के अद्भुत कलाकार संतों ने इसमें वह अर्थ जोड़ दिया है जो 'अनाहत' शब्द की चौहद्दी में नहीं अँटता था। कितना बड़ा चिन्तन और अनुभव इस अर्थ-परिवर्तन के भीतर है, यह मैं ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सकूँगा। केवल पिङ्गमात्र निर्देश करने का प्रयत्न करने जा रहा हूँ। अर्थ-विकास के अध्ययन करने वाले विदेशी पण्डितों ने ज्ञान की इस शाखा का नाम 'सिमैण्टिक्स' दिया है, मैं **सीमान्तक-शास्त्र** कहूँगा। अनहदनाद की चर्चा करने वाले से इससे अधिक उत्तम शब्द की आशा न रखें। सीमान्तक अर्थात् असीम का निर्देशक—अनहद!

## अनहदनाद

योगी बताता है कि संसार में जो शब्द सुनाई दे रहा है वह '**आहत**' होता है। आघात से उत्पन्न होने के कारण ही वह 'आहत' है। जब चित्त बाह्य वस्तुओं से हट-कर अन्तर्मुख होता है तो बाहर मुखरित होते रहने वाले 'आहत शब्दों' का सुनाई देना बन्द हो जाता है और भीतर-भीतर एक शब्द सुनाई देता है जो बाह्य वस्तुओं के आघात से उत्पन्न आहत शब्दों से भिन्न होता है। समष्टि-व्याप्त शब्द का यह व्यक्तिनिष्ट रूप है। अर्थात अन्तर्मुख अवस्था में विश्वब्रह्माण्ड में व्याप्त जो शाश्वत अविनश्वर शब्द है उसका व्यक्तिगत रूप सुनाई देने लगता है। किसी प्रकार के आघात से नहीं उत्पन्न होने के कारण यह शब्द 'अनाहत' है। 'अनहद' इसी 'अनाहत' शब्द से बना हुआ तद्भव शब्द है। जो आहत शब्द होता है वह आघात से उत्पन्न होता है और वह नष्ट भी हो जाता है—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः—इसीलिए आहत शब्द मात्र ससीम हैं किन्तु जो अनाहत शब्द है वह देश और काल की सीमाओं में बँधा नहीं है। वह असीम भी है। अनाहत शब्द में उसके निस्सीम होने की ध्वनि नहीं है। परन्तु सन्तों ने 'अनाहत' का जो तद्-भव रूप पाया उस समय विदेशी भाषा का एक और शब्द भारतीय सीमा में प्रवेश कर चुका था, वह है 'हद' अर्थात् सीमा। इसलिए जब सन्तों ने 'अनहद' शब्द का प्रयोग किया तो उसका दूसरा अर्थ—हद से परे अर्थात् निस्सीम अर्थ भी उनके मन में था। 'अनहद' का प्रयोग करते समय दोनों ही बातें उनके मन में होती थीं। अनाहत केवल शब्द का विशेषण हो सकता था, किन्तु 'अनहद' किसी भी इन्द्रियार्थ का विशेषण बन सकता था। शब्द का विशेषण होकर वह आघात में नश्वर शब्दों का निषेध करता है किन्तु अनहद के रूप में वह शब्द के अर्थ में भी विस्तार करता है। 'अनहद नाद' या 'अनहद

सबद' केवल श्रोत्रेन्द्रिय का ही विषय नहीं बल्कि सम्पूर्ण इन्द्रियों का विषय है। इस प्रकार 'नाद' या 'शब्द' शब्द केवल श्रोत्रेन्द्रिय के विषय के वाचक न होकर मन, बुद्धि आदि के विषय का भी वाचक बन गया। इस प्रकार सन्तों के साहित्य में शब्द ठीक-ठीक अर्थों में ब्रह्म का प्रतीक बन गया। कैसे बना?

कदाचित् आज यह बताने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि शब्द स्पन्दन या कम्प मात्र हैं। हम जो सुनते हैं वह वायुमण्डल की तरंगों की एक निश्चित दीर्घता या ह्रस्वता तक ही सीमित है। एक निश्चित परिमाण की तरंग-दैर्घ्य से अधिक दैर्घ्य होने पर और एक निश्चित तरंग-ह्रस्वता से कम ह्रस्वता होने पर हम शब्द नहीं सुन सकते। परन्तु ह्रस्व से ह्रस्वता होता हुआ शब्द यद्यपि सुनाई नहीं देता किन्तु क्रमशः क्षीण होता हुआ भी वर्तमान तो रहता ही है समाप्त होकर वह कहाँ जाता है?

मानलीजिए कि शब्द—आहत शब्द—क्रमशः क्षीण होता हुआ शून्य में विलीन हो गया। गणित शास्त्र की दृष्टि से यह शून्य ऋणात्मक नहीं होगा। तरंग की दीर्घता क्रमशः क्षीण होती गई। मान लीजिए उसकी लम्बाई 'ल'-प्रतिक्षण 'क्ष' मात्रक संख्या द्वारा जो क्षण और मात्रा, काल और स्थान की सबसे छोटी इकाई है क्रमशः विभाजित और क्षीयमाण होकर क्षीण हो रही है। सबसे छोटी लम्बाई केवल बात की बात नहीं तो और क्या है? मन में सबसे छोटे की कल्पना कीजिए—और भी छोटा, और भी छोटा, और भी! 'मनोरथानामगति नं विद्यते'। अनन्त खण्डों में जो विभाजित होता है वह शून्य है, और शून्य से जो विभाजित हो वह अनन्त हो जाता है! संस्कृत में शून्य द्वारा विभाजित राशि को 'खहर' कहते हैं वह अनन्त है और विष्णु के समान ही है उसमें जितना भी घटाओ, जैसे का तैसा रहेगा भास्कराचार्य ने कहा था—

अस्मिन् विकारः खहरे न राशा-
वपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु,
बहुष्वपि स्याल्लय सृष्टि कालेऽ
नन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥

परन्तु शून्य कहिए या अनन्त कहिए। यह केवल भाषा की मार-पेंच है, पद मात्र है। पदार्थ से, पर पदार्थ से, इसको कुछ विशेष लेना-देना नहीं है। यह बौद्धदार्शनिकों की भाषा में 'प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते' केवल प्रज्ञप्ति मात्र है, लोक-व्यवहार के लिए कल्पित प्रतीक मात्र! दादू ने ठीक ही कहा था—

कुछ नाहीं का नाम दे भरमा सब संसार!

मगर दीर्घता और काल क्या हैं! सबसे छोटी अनन्त इकाइयों—जिसे परावाक् की माया में भूले रहने के कारण हम शून्य कहते हैं—का समवाय है। देश में वह अनेक शून्यों—अनेक बिन्दुओं का समवाय है और काल में अनेक क्षण बिन्दुओं का सन्तान है, प्रवाह है, फैलाव है। आधुनिक पण्डितों की बोली में एक क्वैण्टम है, दूसरा कण्टिनुअम है। पुराने पण्डितों की बोली में एक 'बिन्दु' है। दूसरा 'नाद' है। एक स्थिति है, एक गति है। स्थिति और गति को एकाकार करके प्रतीयमान तत्व काल है। काली उसी की शक्ति है, धर्म है।

शब्द साधना, मन्त्र-तत्व, नाम जप और अजपाजाप परस्पर संबद्ध शब्द हैं। 'शब्द' या 'नाद' शब्द का क्या अर्थ है, मन्त्र और देवता किस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं परमार्थतः मन्त्र और नाम में क्या सम्बन्ध है, इत्यादि प्रश्न संत-साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए जानने योग्य हैं। फिर तो मन्त्र की इस विशाल और जटिल साधना को सन्तों ने किस प्रकार सहज साधना में रूपान्तरित किया है यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाएगी। इसलिए आज मैं मन्त्र-तत्व से ही अपनी बात शुरू करूँगा। इस तत्व के स्पष्ट होने पर 'सुरति' और 'लौ' की बात समझने की कोशिश की जाएगी। प्रसिद्ध कबीर-पंथी संत रामरहस साहब ने कहा है कि वस्तुतः निरति, सुरति और शब्द कहने भर के लिए तीन हैं, अन्ततो गत्वा सब एक ही में विलीन हो जाते हैं—

सब्द सुरति और निरति ये कहिबे को हैं तीन।
निरति समानी सुरति में सुरति सबद में लीन॥

स्वयं कबीर ने इसकी महिमा समझाते हुए कहा है कि—

सबदै काया जग उतपानी
सबदै केर पसारा॥

स्पष्ट ही 'शब्द' मुख्य और अन्तिम बात है, तो फिर इसी को पहले समझा जाय।

## चित् शक्ति ही परावाक् है

जो चित् शक्ति है वह स्वरूपतः निःशब्द है और पर शब्द या परावाक् से अभिन्न है। जब वह गतिशील होती है तो पहले सामान्य स्पन्द के रूप में और फिर विशेष स्पन्द के रूप में और अन्त में स्पष्टतर उच्चरित शब्द के रूप में क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी कह के वस्तुतः यही कहा जाता है कि आरंभ में चित् स्वरूपा निस्पन्द शक्ति पहले सामान्य स्पन्द के रूप में, फिर विशेष स्पन्द के रूप में और अन्त में स्थूल स्पष्ट शब्द के रूप में प्रकट होती है। अर्थात् चित् या चैतन्य शक्ति के रूप में आन्दोलित होकर शब्द और अर्थ के रूप में व्यक्त होती है।

## शब्द ब्रह्म

शब्द और शब्दार्थ का जो हेतु है वही शब्द ब्रह्म है। वह वेदान्तियों के परब्रह्म और शक्तों के परशिव से अभिन्न है। सूक्ष्म या 'पर शब्द ब्रह्म' जब अपनी उस प्रकृति से भिन्न होता है जो विन्दु रूपिणी है अर्थात् जो सृष्टि करने के लिए उद्यत प्राय है, जब इस विन्दु रूपिणी प्रकृति के शब्द ब्रह्म का योग होता है तो निर्विशेष शब्द और अर्थ के सूक्ष्म रूप उत्पन्न होते हैं, इसमें जब क्रिया की अधिकता हो जाती है तो स्थूल शब्द और स्थूल-अर्थ अभिव्यक्त अव्यक्त नाद-मात्र होते हैं। यह जो व्यक्त 'र व'य शब्द है उसी को 'नाद-मात्र' कहते हैं। यह सर्जनात्मक प्रक्रिया के भीतर से अग्रसर होता रहता है और व्यक्त शब्द और अर्थ का हेतु बनता है।[1] अर्थात् ब्रह्म जो है वही व्यापक शब्द

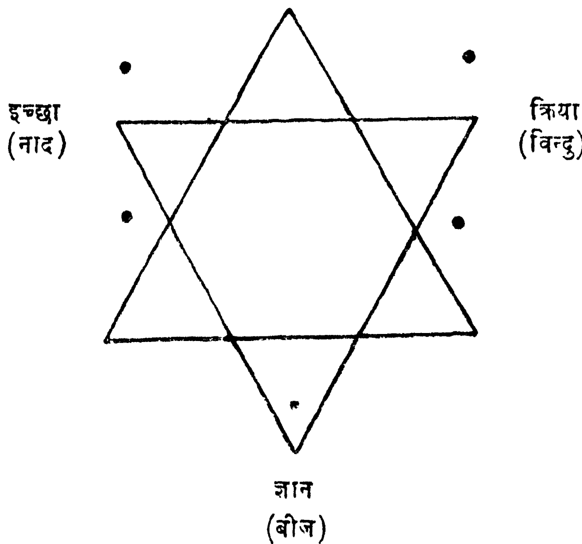
---

१. "तेन शब्दार्थ रूप विशिष्टस्य शब्द ब्रह्मत्वमवधारितम्" राघवभट्ट ने (५-१२) में लिखा है कि "सृष्ट्युन्मुख परम-शिव परमोल्लास मात्रमखण्डोऽव्यक्त नादबिन्दुमय एव व्यापको ब्रह्मात्मकः शब्दः"।

रूप है, जो अखंड है, अव्यक्त है और जो नाद बिन्दु मय है। अर्थात् जो सृष्टयुन्मुख परम-शिव के परमोल्लास का स्वरूप मात्र है। इस प्रकार दर्शन-शास्त्र में जिसे 'अव्यक्त पराचित् शक्ति' कहते हैं और भक्ति-शास्त्र में जिसे सगुण ब्रह्म कहते हैं; इन दोनों का गतिशील सम्मिलित रूप है। शक्ति ही जब अव्यक्त प्रकृति द्वारा चालित होती है अर्थात् जो निर्गुण और सगुण ब्रह्म का क्रियात्मक रूप है वही शब्द का वास्तविक स्वरूप है। 'हठयोग प्रदीपिका' में बताया गया है कि जो कुछ नाद रूप में सुनाई देता है वही शक्ति है, क्योंकि वह व्यक्त है और जो तत्वों से परे है, निराकार है। आकार रूप में व्यक्त नहीं हुआ है वह सब शिव है। जहाँ तक आकाश का विस्तार है, जहाँ तक शब्द की प्रवृत्ति है, जो निश्शब्द है उसे श्रुतियों में पर ब्रह्म परमात्मा कहकर गाया गया है।[२]

## नाम और बिन्दु

तो, सूक्ष्म शब्द या नाद परब्रह्म की इच्छा का रूप है। बीज ज्ञान का और बिन्दु क्रिया का स्वरूप है। सीधी भाषा में यों समझा गया है—निर्गुण शिव विशुद्ध चैतन्य है और सगुण शिव उपाधि युक्त। उपाधियुक्त चैतन्य से उपाधियुक्त शक्ति उत्पन्न होती है। इन दोनों के संयोग से विश्व में जो एक विक्षोभ होता है वही नाद है और उस विक्षोभ का क्रियाशील होना ही बिन्दु है। इस नाद और बिन्दु से सम्पूर्ण विश्व




२. यत्किञ्चित् नाद रूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा
यस्तत्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः।
तावत् आकाश संकल्पो यावच्छेदः प्रवर्तते
निश्शब्दं तत् परब्रह्म परमात्मेति गीयते॥

—हठयोग प्रदीपिका, ४. १०१—१०२।

में व्याप्त विशेषताहीन नाद और विन्दु का ही ग्रहण होना चाहिए—इसी बात को समझने के लिए इन्हें परनाद और परबिन्दु कहा जाता है। कभी-कभी लोग परमनाद और परमविन्दु भी कह देते हैं।

## नाम सूक्ष्म नामी स्थूल

इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि पंच-महाभूतों में से प्रथम दो अर्थात् आकाश और वायु अमूर्त और बाकी तीन अग्नि, जल और पृथ्वी मूर्त हैं। अमूर्तों में आकाश प्रधान है और मूर्तों में अग्नि। शब्द अर्थात् नाम आकाश का धर्म है और रूप अर्थात् नामी तेज का धर्म है। इसलिए नाम सूक्ष्म है और नामी स्थूल। इसीलिए 'हठयोग-प्रदीपिका' में यह कहा गया है कि जो कुछ सुना जाता है वह शब्द के रूप में शक्ति ही है, किन्तु जो परमेश्वर सब तत्वों से परे हैं; क्योंकि शब्द सूक्ष्म होने पर भी वस्तुतः स्थूल अमूर्त तत्व का ही धर्म है। इस प्रकार शब्द-ब्रह्म सृष्टि-क्रिया में प्रवृत्त होने के समय अपने को दो रूपों में अभिव्यक्त करता है—प्रथम शब्द के रूप में जो पहले अनुभूति के ग्राहक के रूप में चित्त में स्पन्दित होता है और फिर इन्द्रियों के माध्यम से स्थूल शब्द के रूप में प्रकट होता है; दूसरा अर्थरूप में जो शब्द द्वारा अनुध्यात रूप को मन में उपस्थित करता है। ये दोनों ही उस चित् शक्ति के कार्य हैं, जिसे वाक् देवी कहते हैं। यह वाक् ईसाई सन्तों के Logos या शब्द से मिलती जुलती है। इसी बात को दृष्टि में रख करके काली को पचास या कभी-कभी इक्यावन नरमुण्डों की माला धारण करने वाली बताया गया है। ये पचास या इक्यावन संस्कृत वर्णों की संख्या माला है। काली वाक् देवता का या मूल चित्-शक्ति का वह रूप है जो उसकी कालगत प्रक्रिया को अभिव्यक्त करती है। पचास अक्षर उसीकी अभिव्यक्ति हैं और महाप्रलय के समय वे अक्षर उसी के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। शब्द-ब्रह्म प्राणिमात्र में स्थित चैतन्य के सिवा और कुछ नहीं है। यही चैतन्य शब्द और अर्थ के रूप में अभिव्यक्त होकर जगत-सृष्टि का हेतु है। यही चित्रूपा शक्ति प्राणि-मात्र में कुण्डली के रूप में स्थित है और अपने आप को वर्णात्मक शब्द में अभिव्यक्त करती रहती है। 'शारदा तिलक' में—

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्द ब्रह्मेति मे मतिः।
तत्प्राप्य कुण्डली रूपं प्राणिनां देह मध्यगम् ॥
वर्णात्मनाऽऽविर्भवति गद्य पद्यादि भेदतः ॥

इसी से सन्त साधकों ने इसे ग्रहण किया और सहारा दिया। सैकड़ों नाम और रूपों के प्रपंच को उन्होंने व्यर्थ घोषित किया और मूलतत्व को पकड़ने की कोशिश की। मूलतत्व अर्थात् वह गुणातीत शक्ति जिसकी अभिव्यक्ति क्रमशः स्थूल से स्थूलतर तत्वों की ओर होती गयी। संतों न सारे मन्त्र-जाल को समेट कर दो अक्षर के राम-नाम में निबद्ध कर दिया, और सारी यौगिक प्रक्रिया को सहज बनाकर सुरति या स्मृति-तत्वों पर केन्द्रित किया। लय को उन्होंने रस्सी बनाया और सुरति या स्मृति को ढेंकुली। इस

मन के द्वारा आनन्द रस को खींचने का रूपक बाँधा गया जिसकी सुरति रूपी ढेंकुली सहायता करती है—

सुरति ढेंकुली लेज लौ मनुवाँ खीचनहार

आहतनाद सीमा है, सृष्टयुन्मुख शिव की सिसृक्षा है, माया है—

यत् किञ्चिन्नादरूपेण श्रूयते शक्ति रेवसा ।

अनाहतनाद सीमातीत है, आकारातीत है—परमेश्वर है—

यस्तत्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः ।

जहाँ तक आकाश है, वहाँ तक ब्रह्म की सिसृक्षा का संकल्प है, इच्छा है, जहाँ तक छन्द है—

तावदाकाश-संकल्पो यावच्छन्दः प्रवर्तते

जहाँ शब्द—आहत शब्द नहीं है, वह निःशब्द परब्रह्म, परमात्मा है—

निःशब्दं तत् परंब्रह्म परमात्मेति गीयते—

इसे केवल अनाहत कहना कम कहना है, अस्पष्ट कहना है। उसके लिए उचित शब्द 'अनहद'—सीमातीत—कहना अधिक उचित है।

## अन भै (अनुभव, निर्भय)

सभी जानते हैं, निर्गुण मार्गी सन्तों में अधिकांश पढ़े-लिखे नहीं थे। शास्त्र पढ़कर जो ज्ञान प्राप्त किया जाता था, वह अर्जित होता है, बुद्धि को शाणित करता है। परन्तु सब समय वह मनुष्य का अपना अनुभूत ज्ञान नहीं होता। इसीलिए आध्यात्मिक साधना के साहित्य में ज्ञान दो प्रकार का बताया गया है। एक तो स्वयं अनुभूति या स्वसंवेद्य, दूसरा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा अनुभूत अर्थात् परसंवेद्य-ज्ञान। आध्यात्मिक जगत में अपने अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान का महत्त्व है। दूसरे के अनुभव से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह जानकारी बढ़ाता है, अपने जीवनदर्शन का अंग नहीं बनता। सन्तों ने अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान को महत्त्व दिया है और वस्तुतः वही उन्हें प्राप्त भी था। उन्होंने अनुभव द्वारा गृहीत सत्य को ही ज्ञान का सच्चा मार्ग माना। इस अनुभव शब्द का लोकभाषा में रूपान्तर 'अनभै' जैसा हुआ। संतों के मत से आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए सब प्रकार से भयहीन होकर भजन करना आवश्यक है। भय साधक का सब से बड़ा शत्रु है। वह मनुष्य को सत्य से सदा विचलित करता रहता है। इसीलिए कबीर ने कहा है कि 'निर्भय होइ निशंक भजि केवल कहै कबीर'। यही कारण है कि अनुभव-गम्य ज्ञान को भी प्राप्त करने के लिए निर्भय होना आवश्यक है। इसीलिए सन्तों ने साधना को 'शूरातन' या 'शूरत्व' का विषय माना है। जो शूर होता है वही आध्यात्मिक साधना में भिड़ा रहता है। जो भय से व्याकुल है उसे पद-पद पर क्लेश और मृत्यु का डर बना रहता है। वह न साधु हो सकता है न शूर बन सकता है और न सती हो सकता है। ये तीनों ही निर्भीक भाव से व्रत निबाह सकते हैं। तीनों

का खेल आग पर खेला जाता है—'साध, सती और सूर का अणणी उपिला खेल'। कोई आश्चर्य नहीं कि सन्तों ने 'अनभै' शब्द का, जो 'अनुभव' का रूपान्तर है, निर्भय अर्थ की भी ध्वनि डाल दी हो। इस प्रकार 'अनभै साँच पंथ' एक दूसरी ओर निर्भीक भाव से सत्य की उपासना करने का मार्ग है।

## भै (भव, भय)

'भव' या होना संस्कृत के आध्यात्मिक साहित्य का बहुत पुराना शब्द है। जीव कर्मवश नाना योनियों में भटकता है। उसे बार-बार संसार में कुछ-न-कुछ बनकर उत्पन्न होना पड़ता है (पुनर्भव); इसी बार-बार उत्पन्न होने की क्रिया की समाप्ति 'अपुनर्भव' है। प्रतिक्षण वर्तमान और नाशमान जगत को 'भव' या संसार कहा जाता है। इसका भी रूपान्तर 'भव' या 'भय के रूप में हुआ। यह 'भव' सब से बड़ा भय है। कबीरदास और दादूदयाल की वाणियों में 'भव' के दो रूपान्तर प्राप्त होते हैं। 'भै' और 'भौ'। जहाँ इसका रूपान्तर 'भै' है वहाँ यह जन्म-मरण के पचड़े के साथ-साथ भय के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

## उन्मनी, उनमनि रहनी

नाथपंथी योगियों में 'मनोन्मनी' शब्द का प्रयोग है, जो कभी पूर्ण समाधि के अर्थ में व्यवहृत होता है और कभी मन के सुस्थिर होने के अर्थ में। दोनों बातें परिणाम में एक ही हैं, क्योंकि मन का स्थिर होना ही वास्तविक समाधि है। एक दूसरा शब्द जिसमें समस्त मानसिक क्रियाओं का विलय हो जाता है, नाथपंथी साहित्य में आता है। वह शब्द है 'अमनस्क'। यह मन के भावाभाव विनिर्मुक्तावस्था का द्योतक है अर्थात् समाधि की वह अवस्था जिसमें होने और न होने, दोनों का ही ज्ञान नहीं रहता। मनोन्मनी अवस्था क्या है यह 'हठयोग प्रदीपिका' के एक श्लोक से ज्ञात होता है।

मारुते मध्य संचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते।
यो मनः सुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी ॥

शिव-संहिता और घेरंड-संहिता में यह शब्द समाधि के पर्याय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत-व्याकरण के कठोर नियमों के अनुसार इस शब्द की सिद्धि कठिन जान पड़ती है। 'उन्मनस्' शब्द चित्त की ऊर्ध्वगति के लिए बन सकता है, परन्तु 'मनोन्मनी' शब्द कैसे बनेगा यह एक समस्या ही है। जान पड़ता है नाथ पंथी साधकों ने लोक-भाषा से इस शब्द को ग्रहण किया था और उसे संस्कृत में चला दिया। कबीरदास ने 'उनमनि रहनी' का प्रयोग सहज-समाधि के अर्थ में किया है और 'मन' को 'उनमन' से लग जाने की विचित्र लगन का उल्लेख किया है।

'मन लागा उनमन्न सों उनमन मनहिं विलग्ग।'

यहाँ मन का 'उन्मन' से लगना ही 'मनोन्मनी' जान पड़ता है जो संस्कृत-व्याकरण से तो नहीं सिद्ध होता, लेकिन लोक-भाषा में प्रचलित रहा होगा। 'उनमन' का अर्थ

हुआ मन का ऊर्ध्वमुख होना। नाथपंथी साधक पिण्ड में वर्तमान शिव को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और उसका विश्वास है कि जो कुछ पिण्ड में है वह ब्रह्माण्ड में भी है। इसीलिए यदि पिण्ड स्थित शिव को प्राप्त किया जा सका तो ब्रह्माण्ड-स्थित शिव को भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। कबीर से निर्गुण-साधना की जो परम्परा शुरू होती है उसमें प्रेम-तत्त्व का एक नया अध्याय जुड़ा है। यह प्रेम-तत्त्व नाथपंथी शुष्क साधना में अपरिचित है। इसलिए निर्गुण-मार्गी भक्तों ने 'उन्मन' शब्द का एक और अर्थ कर लिया। 'उन्मन' अर्थात् 'उनका मन' 'उनका' अर्थात् परमप्रेयान् भगवान का। इसीलिए जब उन्होंने कहा कि 'मन लागा उनमन्न सों' तब उनके मन में एक दूसरा भाव भी था कि मेरा मन उनके मन से लगा। और भी स्पष्ट शब्दों में कबीर दास ने 'उनका' मन के अर्थ में 'उनमन' शब्द का प्रयोग किया है—

जब मैं इनमन उन मन जांनां, तब रूप न रेख तहाँ बांनां।
तनमन मनतन एक समांना, इन अनभै मांहें मन जांनां।।

—कबीर-ग्रंथावली पृ० २०३।

इससे मिलता-जुलता एक और शब्द है 'तिनका'। तिनका तृण शब्द का रूपान्तर है लेकिन कबीर आदि सन्तों ने इसमें यह अर्थ भी ध्वनित करने का प्रयत्न किया है कि जो तृण के समान तुच्छ है वह सब प्रकार से निरीह 'उनका' अपना दास है।

'उनमनि रहनी' में भी एक ध्वनि है। अपभ्रंश में 'इ' विभक्ति तृतीया या सप्तमी के अर्थ में व्यवहृत होती है, इसलिए 'उनमन रहनी' शब्द का अर्थ हुआ 'उनके मन में रहना' अर्थात् जैसा वे चाहें उस तरह रहना। इस प्रकार एक तरफ 'उनमनि रहनी' का अर्थ होता है। मन को अधोगामी प्रवृत्तियों से बचाकर ऊर्ध्वमुख करना, वहाँ उसका दूसरा अर्थ होता है परमात्मा को सम्पूर्ण रूप से आत्म समर्पण करना। वे जैसा चाहें वैसा ही अपने को प्रकट करना। इस प्रकार 'उनमनि रहनी' में योग और भक्ति के चरम-लक्ष्य विचित्र भाव से उलझा दिए गये।

## 'सुखमनि' (सुषुम्ना, आनन्दचित्त से)

यौगिक साधना के साहित्य में सुषुम्ना नाड़ी बहुत परिचित है। मेरु-दण्ड के भीतर से जाने वाली तीन नाड़ियों में यह प्रमुख और मध्यवर्तिनी है। सहज साम्यावस्था प्राप्त होने पर बाएँ दाहिने की नाड़ियों की गति रुक जाती है और सुषुम्ना से मन और प्राण की गति होती है। इस मनोवहा नाड़ी को 'सुषुम्णा' कहते हैं। 'सुषुम्णा' शब्द बहुत पुराना है। वेदों में भी यह शब्द मिल जाता है लेकिन ठीक उसी अर्थ में नहीं, जिस अर्थ में परवर्ती काल में इसका व्यवहार हुआ है। कहा जाता है सूर्य की सात किरणों में से एक का नाम 'सुषुम्णा' है। इस किरण के द्वारा सूर्य चन्द्रमा को प्रकाशित करता है।

योग-साहित्य में पिण्ड के भीतर सूर्य-स्थान और चन्द्र-स्थान निर्धारित है। सुषुम्णा के दाहिने और बाएँ स्थित इला पिंगला को भी क्रमशः सूर्य और चन्द्र की नाड़ी

कहा गया है। जान पड़ता है सूर्य और चन्द्र तथा सुषुम्णा की पुरानी कहानी योग-मार्ग के साहित्य में भी बराबर याद की जाती रही होगी। 'सुषुम्णा' का शाब्दिक अर्थ है 'सुसुप्त' इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ बराबर चला करती हैं जब कि सुषुम्ना सुप्त रहती है। केवल साधना के द्वारा ही उसका उद्बोधन होता है। निर्गुण-मार्गी संतों ने इस नाड़ी को 'सुखमनि' कहा है। नाड़ी शब्द का भी एक रूपान्तर कर लिया गया है—नाड़ी इड़ा और पिंगला में से पिंगला को तो ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया, लेकिन इड़ा को इंगला बना दिया गया। 'इड़ा' कैसे 'इंगला' बन गई यह एक रहस्य है; आगे इस पर विचार करेंगे।

'सुषुम्णा' शब्द के अपभ्रंश रूप 'सुखमनि' का व्यवहार संतों ने 'मनोवहा सुषुम्णा' नाड़ी के अर्थ में ही किया है। परन्तु कितने ही ऐसे स्थल हैं जिनसे स्पष्ट आभासित होता है कि सन्तों के मन में इसका एक और भी अर्थ है, 'सुखमनि' 'सुखचित्त' से। जैसे ऊपर बताया गया है कि अपभ्रंश की 'इ' विभक्ति तृतीया और सप्तमी दोनों अर्थों में प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार 'सुखमनि' का अर्थ हुआ 'उस मार्ग से जिससे मन में सुख या आनन्द बना हो।' दो-चार उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देंगे। मगर अभी इतना ही। आगे अवसर मिलेगा।

## 'बंकनाली' (वक्रनाड़ी, टेढ़ी नाली)

कबीर, दादू आदि संतों ने अनेक स्थलों पर मन के 'बंकनालि' के रस पीने की चर्चा की है। साधारणत: 'बंकनालि' का अर्थ सुषुम्ना ही समझा जाता है, परन्तु यह शब्द ठीक सुषुम्ना का वाचक नहीं है। मेरु-दण्ड में सुषुम्ना वक्रनाड़ी नहीं है। दो स्थानों पर उसमें वक्रता आती है, एक तो बिन्दु के प्रथम स्फोट के समय, जो शब्द के रूप में 'पश्यन्ती' होती है और प्राण के रूप में 'इंडुभ' पवन है। दूसरी वक्रता अन्तिम अवस्था में ब्रह्म-रन्ध्र के पार आती है। शब्द के स्तर पर वह 'मात्रिका-विलय' है और प्राण के स्तर पर ब्रह्म-रन्ध्र का भेद। दोनों ही नाथ और कौल साधकों की साधना के विषय हैं। निर्गुणमार्गी भक्तों ने उसमें नवीन अर्थ का योग किया। 'सुखमनि मार्ग' सहज समाधि का मार्ग है। इसकी प्रथम वक्रता पहली 'सुरति' है और द्वितीय वक्रता दूसरी 'सुरति' है। 'सुरति' शब्द के प्रसंग में हम इसकी व्याख्या विस्तार से करेंगे। सन्तों के अनुसार 'बंकनालि' जहाँ एक ओर वक्रनाड़ी है वहीं दूसरी ओर टेढ़ी नली से बहते हुए प्रेम-रस की वाहिका है।

## अलेख, अलख (अलक्ष्य, अनाकलनीय)

'अलेख' या 'अलख' शब्द संस्कृत के अलक्ष्य शब्द से बना है, अर्थ है—जो देखा न जा सके या लक्ष्य न किया जा सके। परन्तु संतों ने 'अलेख' शब्द में एक और अर्थ जोड़ दिया है—जिसका लेखा या आकलन न किया जा सके। इसी को ध्यान में रखकर कबीर ने कहा है 'लेख समाना अलेख में।'

**अलह (अलक्ष्य, अलभ्य, अल्लाह)**

अलख शब्द घिस कर अलह बन जाता है। संस्कृत का एक दूसरा शब्द 'अलभ्य' भी 'अलह' बन जाता है—'यं गुणवन्ता अलहना' (-विद्यापति)। यह परमात्मा का विशेषण और नाम है। परमात्मा अलह है अर्थात् 'अलभ्य' है और 'अलक्ष्य' है। अलभ्य का मतलब यह है कि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। उसे उस प्रकार से नहीं पाया जाता जिस प्रकार बाह्यजगत् के इन्द्रियार्थ पकड़े जाते हैं; उसे उस प्रकार से नहीं देखा जाता जिस प्रकार इन्द्रियार्थ देखे जाते हैं। दोनों शब्द अलभ्य और अलक्ष्य साधारणत: लोक-प्रचलित 'देखे जाने योग्य' 'पाये जाने योग्य' अर्थ का निषेध करता है। कबीर ने जब कहा था कि—'दिस्टि ना मुष्टि अगम अगोचर गुरु परतापे दीठा लो'—तो उसम इन दोनों भावों का प्रचलित अर्थ म निषेध और ग्रहण उनका उद्देश्य था। दृष्टि और मुष्टि का दृष्टि विषयक और मुष्टि विषयक नहीं है। 'गुरु परतापे दीठा लो' का मतलब है 'वह गुरु की कृपा से लक्ष्य भी है और लभ्य भी।' इस प्रकार 'अलह' शब्द में जो निषेधार्थक 'अ' कार है वह केवल लोक-प्रचलित बाह्य अर्थ के निषेध के लिए। जिन दिनों मध्यकाल के हिन्दी सन्तों में यह शब्द अपभ्रंश के रूप में पाया गया, उन्हीं दिनों अरबी का 'अल्लाह' शब्द भी प्राप्त हुआ। 'अल्लाह'—एकमेवाद्वितीयम्—परात्पर तत्त्व का वाचक है। इसी शब्द का संतों की भाषा में 'अलह' रूप हुआ। इस प्रकार कबीर आदि संतों ने 'अलह' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है। (१) परम्परागत प्राप्त अलभ्य और अलक्ष्य तथा (२) अल्लाह के रूप में आया 'परात्पर तत्त्व' अर्थ। कभी-कभी सन्तों ने अलह शब्द का ऐसा प्रयोग किया है कि उससे ये दोनों ही अर्थ आभासित होते हैं।

**निहकर्मी (निष्काम, नैष्कर्म्य, स्नेह काम)**

जैसा ऊपर बताया गया है कि संत-साधना का एक आदर्श सती स्त्री जो अपने प्रेमी के साथ आग पर जल मरती है। इस सती के लिए संतों में एक शब्द प्रयुक्त होता है 'निहकर्मी पतिव्रता'। 'निहकर्मी' में संस्कृत के कई शब्दों का अर्थ उलझा हुआ है। मूलत: यह शब्द 'निष्काम' शब्द का वाचक है, जिसका अर्थ है किसी प्रकार के प्रतिदान की कामना किये बिना प्रेम करने वाली पतिव्रता। संस्कृत के 'कर्म' शब्द से 'कम्म' या 'काम' बनता है। फिर इच्छा-वाचक 'काम' का संस्कृताभास करने से 'कर्म' शब्द बन जाता है। इस प्रकार 'निहकर्मी' शब्द में दो अर्थ आ जाते हैं—'निष्कामभाव से प्रेम' और 'नैष्कर्म्य'। प्राकृत और अपभ्रंश में 'निह' शब्द स्नेह के अर्थ में व्यवहृत होता है, इसीलिये 'निह' का दूसरा अर्थ होता है 'स्नेह की कामना'। इस प्रकार तीन शब्दों के अर्थों के उलझने से यह 'निहकर्मी' शब्द बना है। इसमें निष्कामभाव, निर्बैरभाव और स्नेह की एक मात्र कामना का भाव भी आ गया है। कबीर दास ने स्वयं कहा है—

निर्वैरी निहकामता साईं सेती नेह।
विषया सूं न्यारा रहे संतनि का अंग एह ॥

## स्यम्भ दुआर (सिंहद्वार, स्वयंभू द्वार)

संतों ने, विशेष करके कबीर ने 'स्यंभ' शब्द का प्रयोग 'सिंह' के तद्भव अर्थ के रूप में किया है। 'स्यंभ दुवार' अर्थात् मुख्यद्वार—'सुरति निरति परचा भया तव खुलिगे स्यंभ दुवार'—परन्तु 'स्यंभ' शब्द में एक और संस्कृत शब्द की ध्वनि है। अर्थात् स्वयं उत्पन्न होने वाला अर्थात् अकृत्रिम यौगिक साहित्य में इस शब्द का भी बहुत व्यवहार हुआ है। संतों ने इनको एक दूसरे से उलझा दिया है। इस प्रकार 'स्वयंभू' अर्थात् स्वयं आविर्भूत अर्थात् अनादि अर्थ की भी व्यंजना है।

## लय, ल्यो, लव

लौ दीप-शिखा को कहते हैं। संस्कृत में समाधि की अवस्था की 'निवात-निष्कम्प-दीप शिखा' से उपमा दी गयी है; अर्थात् समाधिस्थ व्यक्ति वायु-हीन स्थान में जलती हुई दीप-शिखा की भाँति प्रज्वलित और स्थिर होता है। कालिदास ने समाधिस्थ शिव की उपमा घुमड़े हुए किन्तु नहीं बरसने वाले बादलों से, बिना तरंग वाले शान्त-स्थिर सरोवर से, और निवात-निष्कम्प प्रदीप से दी है—

आवृष्टि　संरम्भमिवाम्बुवाहमयाविवाधार　मनुत्तरङ्गम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधात्, निवात निष्कंपमिव प्रदीपम्॥

कुमार-संभव ३।४८।

इसी निवात निष्कम्प दीप शिखा की उपमा के कारण दीपक का लौ ध्यान का प्रतीक बन गया। 'लौ लगने' का अर्थ है 'चित्त का एकान्तिक ध्यानावस्थ भाव'। समाधि में ऐसा क्यों होता है? कालिदास ने कारण बताया है "अन्तश्चराणां मरुतां निरोधात्।" शरीर के भीतर संचरित होने वाले प्राण नामक वायुओं के निरोध होने से इस निरोधावस्था को 'लय' होना कहते हैं। इसीलिये संस्कृत में प्राण-वायु के लीन होने को या चित्त-वृत्ति के भीतर-ही-भीतर विलीन हो जाने को—'लय योग' कहते हैं। हिन्दी 'लै' इसी 'लय' से बनता है। संतों ने 'लै' और 'लौ' शब्दों को एक में घुला दिया और 'लवलीन' शब्द की उद्भावना की। किसी वस्तु में 'लवलीन' होने का अर्थ है सम्पूर्ण रूप से चित्त वृत्तियों का एक वस्तु पर केन्द्रित करना। 'लय' और 'लव' दोनों के मिश्रण से 'ल्यौ' शब्द बना है जिसका अर्थ है स्थिर भाव से चित्त-वृत्तियों का निरोध। कबीरदास ने उस स्थान पर 'ल्यो' लगाया था, जहाँ न सिद्धों का संचार है, न पक्षी उड़ते हैं, न रात्रि-दिवस की अनुभूति है। अर्थात् जहाँ न मन की चंचलता है, न संकल्प-विकल्प की उड़ान है और न प्रकाश और अंधकार की बाह्य अनुभूतियों का अस्तित्व है—

जिहि बन सीह न संचरै पंखि उड़ै नहिं जाइ।
रैनि दिवस का गमि नहीं तहाँ कबीर रह ल्यौ ल्याइ॥

## गम, अगम, बेगमपुरा

संस्कृत में 'गम्' धातु गत्यर्थक है। 'गति' शब्द का प्रयोग संस्कृत में बड़े व्यापक अर्थ में किया जाता है; वह मोक्ष और ज्ञान के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। किसी की

किसी विषय में गति न होना अल्पज्ञता की निशानी है। 'गम' शब्द का संतों ने इसी व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। आध्यात्मिक ग्रंथों में भगवान् को और ज्ञान के स्वरूप को अनुभवगम्य कहा गया है, जिसे अनुभव से जाना जा सके। इसीलिये गति शब्द का अर्थ प्राप्ति भी होता है। ऊपर के दोहे में 'गमि' शब्द का प्रयोग पहुँच अर्थ में हुआ है। 'रैनि दिवस का गमि नहीं' अर्थात् पहुँच नहीं। परम पुरुष 'अगम्य' या 'अगम' है अर्थात् आसानी से उसके पास पहुँच नहीं हो सकती, उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। सन्तों ने 'अगम' 'अगोचर' शब्द का व्यवहार बहुत अधिक मात्रा में किया है। जिस समय ये शब्द संत-साधना में अत्यधिक रूप से प्रचलित थे उसी समय अरबी का 'ग़म' शब्द भी सरकता हुआ देशी भाषा में पहुँच गया और जम गया। 'ग़म' शब्द का अर्थ है रंज, शोक, चिन्ता। किसी का गम न करना बेफ़िक्र रहने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार पुराने 'गम' के साथ इस नए 'ग़म' का गड्ड -मड्ड हो गया। 'रात दिवस का गम न होना' का एक अर्थ है कि वहाँ उनकी पहुँच नहीं; दूसरा अर्थ है वहाँ रात-दिन की फ़िकर नहीं। इसी प्रकार 'अगम पुरुष' का एक अर्थ तो यह है कि जो सरलता से न पाया जा सके या जिस तक सरलता से न पहुँचा जा सके या जो स्थूल इन्द्रियों की गति से परे है—और दूसरा अर्थ यह हुआ कि 'जहाँ पहुँचकर चिन्ता और फ़िक्र नहीं रह जाती। कबीर के गानों में "पिया मोरे बसेले' अगम पुरवा हो" में दोनों ही भाव हैं। संतों ने और भी श्लेष करने के लिए 'अगमपुर को 'बेगमपुर' बनाया; और कबीरदास ने मस्ती पूर्वक गाया कि उन्होंने 'बेगमपुरा' शहर में अपना घर बना लिया है। इस 'बेगम' में पुराने दोनों भाव तो हैं ही—महारानी का बसाया हुआ नगर—का एक नया अर्थ भी जोड़ दिया गया है। निर्द्वन्द्वभाव का स्थान और स्थूल इन्द्रियों की पहुँच के बाहर, ये दो अर्थ तो पहले से ही थे। इस प्रकार संत साहित्य में इस पुराने शब्द ने कई नई अभिव्यक्तियों को स्थान दिया है। 'अगम' का अर्थ 'अगम्य' या 'अनवधार्य तो है ही जैसा कि कबीर के इस दोहे से स्पष्ट है—

कर्ता की गति अगम है, तू चलि अपने उनमान।
धीरे-धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परवांन॥

वह ऐसा स्थान भी है जो वेद और पुराण के गमि से बाहर है "वेद कुरानो गमि नहीं कह्या न को पतियाय।"

## 'मरजिया' या मरजीवा

मध्यकालीन सन्तों ने आध्यात्मिक साधना के लिए कुछ आदर्श प्रतीकों का व्यवहार किया। ऊपर 'सती' और 'शूर' की चर्चा हो चुकी है। इसी श्रेणी का एक प्रतीक है 'मरजिया या 'मरजीवा'। 'मरजिया' या 'मरजीवा' वह गोताखोर है जो समुद्र में मोती के लिए गोता लगाता है। वह वस्तुतः मरकर जीता है, या मरण से जीविका चलाता है वही मुक्ता पाता है। साधु का काम भी यही है। वह 'आपामारि जीवत मरे'—अपने आपा को मारकर ही उसे प्राप्त करता है। अर्थात् निकृष्ट अहंभाव का दमन करके ही उत्कृष्ट अहंभाव को प्राप्त करता है; इस प्रकार वह उत्तम रत्न प्राप्त

करता है। निर्गुण मार्ग के प्राय: प्रत्येक संत ने इस 'मरजिया' या 'मरजीवा' की चर्चा की है। परन्तु इसके साथ उन्होंने भक्ति के प्रधान सिद्धान्त को भी जोड़ दिया है। भक्त सदा ही भगवान के अनुग्रह पर विश्वास करते हैं। भगवान् जिस पर अनुग्रह करता है उसे प्राप्त होता है। उपनिषद् के ऋषि ने भी अनुभव किया था कि वह जिसे स्वयं वरण करता है उसी को प्राप्त होता है— यमेवैश वृणुते तेन लभ्यः। ये जो परमात्मा का स्वयं वरण करना है यही उसका अनुग्रह है। मध्यकाल में तो सगुण-मार्गी भक्तों का यह दृढ़ विश्वास था कि भगवान् के अवतार धारण करने का एक मुख्य हेतु भक्तों पर अनुग्रह करना भी है— स्वलीलाकीर्ति विस्ताराद् भक्ते स्वनुजिघ्रिच्छया—इसलिए अनुग्रह प्राप्त करना भक्त का बहुत बड़ा लक्ष्य है। मुसलमान सन्तों के सम्पर्क से इस अनुग्रह का एक दूसरा रूप लोक-भाषा में प्रचलित हुआ। उसका वाचक शब्द है 'मर्जी'। 'मर्जी' फ़ारसी भाषा का शब्द है और सूफी-साधकों में ठीक उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है जिस अर्थ में भारतीय साधक 'अनुग्रह' का प्रयोग करते हैं।

अपभ्रंश के 'मरजिया' या 'मरजीवा' शब्द का संतों ने इस नए अर्थ में भी व्यवहार किया है। इसके पुराने अर्थ 'मरणजीवी' के साथ एक और अर्थ जुट गया 'मर्जी पाने वाला : अनुग्रहीत'। इसलिए जब संतों की भाषा में कहा जाता है कि जो 'मरजिया' या 'मरजीवा' होता है वही मुक्ता पाता है तो आपा मिटाने के साथ अनुग्रह प्राप्त करने का अर्थ भी ध्वनित होता है।

## सुरति योग

जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, संत लोगों ने बहुत से पुराने शब्दों में नया अर्थ जोड़ा है। 'सुरति' शब्द पुराने स्मृति शब्द का अपभ्रंश है। स्मृति अर्थात् पुरानी बातों को याद करना। लेकिन इस स्मृति शब्द से जिस सुरति शब्द का विकास हुआ है वह केवल स्मृति रूप नहीं है। उसमें प्रेम का भाव भी है। सुरति (सु + रति) केवल याद करने की बात नहीं है। याद तो किसी को कहीं भी किया जा सकता है, केवल स्मरण मात्र से भक्त को संतोष नहीं हो सकता, स्मरण में प्रीति होनी चाहिए और रम जाने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। सुरति में इस प्रीति के भाव को जोड़ दिया गया है। निरति संसार से विरक्त होना है। जब तक बाह्य जगत से वैराग्य न हो तब तक अन्तस्थित परमप्रेयान के साथ 'सुरति' नहीं चल सकती। निरति बाह्य विषयों के प्रति अनास्था और वैराग्य को सूचित करती है और सुरति आन्तर विषयों के प्रति आसक्ति। इस प्रकार स्मृति-वाचक सुरति शब्द में नवीन अर्थों को जोड़ा गया है। इसी प्रकार लय शब्द—जिसकी चर्चा हम लय-योग में कर चुके हैं, संतों की बोली में बदला है। 'लै' शब्द का 'लौ' बन गया है। 'भव' शब्द का तो 'भै' बन गया किन्तु 'लय' शब्द का 'लौ'। स्पष्ट ही केवल ध्वनि विकार सम्बन्धी नियम यहाँ काम नहीं कर रहे हैं, 'लय' शब्द को 'लौ' के साथ जोड़ देने में कुछ रहस्य है। 'लौ' अर्थात् दीप-शिखा। निवात निष्कम्प दीप-शिखा जिस प्रकार पूर्ण शान्त और ऊर्ध्वमुखी होती है उसी प्रकार जब साधक अपने में आप ही विलीन होकर शान्त और स्थिर हो जाता है उस अवस्था का नाम 'लय' या 'लौ' है। लौ शब्द में बाह्य विषयों की असम्पृक्तता का भाव भी आगया है। इस प्रकार पुराना 'लय' शब्द 'लौबन'

कर उस विशिष्ट ध्यान का वाचक हो गया है जो बाह्य विषयों में असम्पृक्त चित्त को प्रेमोन्मुख करता है। इसीलिए उसे सुरति का सहायक माना गया है।

बोधिचर्यावतार में शान्ति देव ने स्मृति-रज्जु का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। यह स्मृति-रज्जु संत साधकों के सुरति-डोर शब्द का पूर्ववर्ती रूप है। शान्ति देव ने कहा है कि चारों ओर से यदि चित्त रूपी हस्ती स्मृति रूपी रज्जु से बांध लिया गया तो फिर समूचा भय दूर हो जाता है। कोई भय नहीं रहता और सभी कल्याण प्राप्त हो जाते हैं—

बद्धश्चेच्चित्त मातंग: स्मृति रज्ज्वा समन्तत: ।
भयमस्तंगतं सर्वं कृत्स्नं कल्याणमागतम् ।।

शान्तिदेव ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की है कि जो लोग अपने चित्त को स्थिर रखना चाहते हैं उन्हें स्मृति और संप्रजन्य की सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए।

चित्तं रक्षितु, कामानां मयैष क्रियतेऽजलि: ।
स्मृतिं च संप्रजन्यं च सर्व यत्नेन रक्षत ।।

इस प्रकार यह स्मृति शब्द बहुत पुराना है और साधकों में इसका प्रयोग भी बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। लेकिन मध्य युग के साधकों तक आते-आते उसमें कुछ विशेषता आ गई है। कई प्रकार से उस प्रीति-स्निग्ध तत्त्व को समझाने का प्रयोग मिलता है। मूल तत्त्व से अपरिचित रहने से ये बातें प्रहेलिका जैसी लगने लगती हैं। उदाहरणार्थ कभी तो यह कहा गया है कि सुरति निरति में विलीन हो जाती है। फिर प्रथम और द्वितीय सुरति की भी बात कही गई है। मूल बात यह है कि साधक को उस पुरानी प्रक्रिया का स्मरण करना चाहिए जिससे सूक्ष्म शब्द क्रमश: स्थूल होता हुआ समस्त पद और पदार्थों में अभिव्यक्त हो रहा है। यही सुरति उसे वास्तविक तत्त्व का साक्षात्कार करा सकती है। इसकी स्थिति यदि पहले स्वीकार कर ली जाय, अर्थात् यह मान लिया जाय कि पहले बौद्धिक दृष्टि से उसे इन प्रक्रियाओं का साक्षात्कार होता है और फिर उसे जगत-प्रपंच से वैराग्य होता है तो कहा जा सकता है कि सुरति निरति में विलीन होगई पर ऐसी अवस्था में परम-तत्त्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

डा० विश्वनाथ प्रसाद

# समसामयिक हिन्दी गद्य-शैली की विशेषताएँ और संभावनाएँ

## संस्कृत-परम्परा

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" संस्कृत की इस प्रसिद्ध सूक्ति में साहित्यिक गद्य के संबंध में प्राचीन परंपरागत धारणा बड़े सुन्दर रूप में सूत्रबद्ध है। इसके अनुसार गद्य छंदों के अनुशासन से रहित एक काव्यात्मक रचना-मात्र था। साहित्य-दर्पण में चार प्रकार की गद्य शैलियाँ बताई गई हैं :—(१) वृत्तगन्धोच्छिुत, जो वृत्त या पद्यबद्ध रचना की गन्ध से मुक्त हो, (२) वृत्तगन्धी, जिसमें वृत्त या छंद की गंध हो, (३) उत्कलिकाप्राय, जिसमें बड़े-बड़े समास शब्दों की बहुलता हो, और (४) चूर्णक, जिसमें छोटे-छोटे समस्त शब्दों का प्रयोग हो। शैली की दृष्टि से भोजराज ने उत्कलिकाप्राय को आवृत्ति नाम और चूर्णक को चूर्ण नाम से निर्दिष्ट किया है। इन दोनों के अतिरिक्त उन्होंने दो और भेदों का उल्लेख किया है—ललित जब कि वर्णनीय प्रसंग का भाव कोमल और प्रच्छन्न हो और निष्ठुर जब कि वर्णनीय विषय प्रकट और स्फुट हो।

इन विभिन्न प्रकार की गद्य-रचनाओं का प्रयोग केवल कथा और आख्यायिका के लिए होता था। ये दोनों ही वस्तुत: गद्यबद्ध काव्य-रचनाएँ थीं, जिनमें कुछ विशिष्ट प्रकार के छंदों का भी मिश्रण रहता था। संस्कृत में इस प्रकार की गद्य-कृतियों में बाणभट्ट की 'कादम्बरी' कथा के क्षेत्र में और उनका 'हर्षचरित्र' आख्यायिका के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ हैं। इन दोनों की शैली अलंकारों से लदी हुई है। सुबन्धु और दंडी संस्कृत गद्य के दो अन्य सफल कृतिकार हुए, जिन्होंने इसी शैली का अनुसरण किया है। जब देशी भाषाओं में गद्य-कृतियों की रचना प्रारंभ हुई तो उन्हें उत्तराधिकार में साहित्यिक गद्य की यही परंपरा मिली। धनपाल की तिलकमंजरी, प्राकृत की समराइच्च कथा तथा वसुदेवहिंडी और अपभ्रंश की कुवलयमाला कथा—इन सबके गद्य का ढाँचा वही है। यही आदर्श ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर', विद्यापति की 'कीर्तिलता' और कीर्तिपताका तथा राजस्थान की वचनिकाओं, जैसे, लीलावती और जैन ग्रंथकारों के गद्य, जैसे, दशार्णभद्र की कथा में भी प्रतिफलित है।

आगे चलकर नाथ-पन्थ की ब्रजभाषा-कृतियों में और तदनन्तर आचार्य उपदेशकों और वल्लभाचार्य के शिष्यों की कृतियों में हमें धार्मिक चर्चाओं के प्रसंग में हमें गद्य के प्रयोग का उदाहरण मिलता है। वल्लभाचार्य का नाम इस संबंध में विशेष महत्व का है, क्योंकि उन्होंने दक्षिण से आकर अपनी साहित्य-रचना के लिए ब्रजभाषा को चुना। १८वीं शती के अंतिम चरण में जब रामप्रसाद निरंजनी ने 'योगवाशिष्ठ' का अनुवाद खड़ी बोली में किया और मुंशी सदासुख लाल 'रियाज़' ने 'सुखसागर' लिखा तो उनका प्रधान लक्ष्य धर्म-प्रचार ही था। दूसरी ओर इंशा अल्ला खाँ शुद्ध हिन्दी के सरलीकरण के उद्देश्य से प्रेरित हुए, जिसमें न फारसी का मिश्रण हो, न संस्कृत का, परंतु इन कृतियों में भी अलंकरण तथा गद्य में भी तुक मिलाने की प्रवृत्ति बनी रही।

हिन्दी में कादम्बरी की शैली-परंपरा को द्विवेदी युग में भी पं० गोविन्द नारायण मिश्र ने जीवित रक्खा। मिश्र जी के सरस साहित्य-सूक्ति-सुधानिधि की दार्शनिक सुविचार सुदर्शनीय अलंकार-लहरों के आनंद-विहार में उच्छ्वसित दो-दो पृष्ठों के लंबे-लंबे वाक्य वाणभट्ट की समासगर्भित सघन सजी-धजी वाणी से स्पर्धा करने को सन्नद्ध दिखाई पड़ते हैं। नमूने के लिए एक उदाहरण लीजिए :—

"सहज सुन्दर मनहर सुभाव कवि-सुभाव-प्रभाव से सबका चितचोर सुचारु सजीव-चित्र रचना-चतुर चितेरा, और जब देखो तब ही अभिनव सब नवरस रसीली नित नव-नव भावरसरसीली. अनूप रूप सरूप गरबीली सुजन मनमोहन-मन्त्र की कीली, गमक जमकादि सहज सुहाते चमचमाते अनेक अलंकार-सिंगार-साज-सजीली, छबीली कविता-कल्पना कुशल कवि, इन दोनों का काम ही उस अगजग मोहिनी बलाकी सबला सुभाव सुन्दरी अति सुकोमला अबलाकी, नवेली, अलवेली अनोखी पर परम चोखी भी प्रेम-पोखी, समधिक सुहावनी, नयनमन-लुभावनी भोली रूप-छबि को आँखों के आगे परतच्छ खड़ी सी दरसाकर मर्मज्ञ सुरसिक जनोंके मनोंका लुभाना, तरसाना, सरसाना, हरसाना और रिझाना ही ही।*

इस प्रकार के पांडित्य प्रदर्शनकारी विस्तीर्ण वाग्जालपूर्ण लंबे-लंबे वाक्यों और समासोंवाले गद्य की तुलना कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक ऐसे ऐश्वर्यवान् तथा आराम-तलब राजा से की है, जिसकी मेदा बढ़ गई हो और जो बड़े-बड़े टीकाकारों, भाष्यकारों तथा पंडितों के कंधों पर सवार हुए बिना, स्वयं चल-फिर न सकता हो। यही नहीं, ऐसी रचनाओं के पाठकों को भी समझना पड़ता है कि वे वाक्य-रस-विलासी राजा ही हैं, जिन्हें समय की कोई चिन्ता नहीं और जो यह भूल गए हों कि उन्हें आफिस भी जाना है या और कोई काम भी करना है। प्रत्येक कदम पर, प्रत्येक शब्द पर, प्रत्येक वाक्यांश और प्रत्येक वाक्य पर हमें रुकना पड़ता है, सोचना और विचारना पड़ता है। तब कहीं जाकर हम इस प्रकार की अतिशय कलात्मक तथा अलंकृत रचनाओं की सुंदरताओं का आनंद ले पाते हैं। किन्तु आज के युग में जीवन की गति पूर्णत: बदल गई है। आज हमारे समक्ष बहुत सी नई प्रेरणाएं हैं तथा हमारे उद्देश्यों और अनुभूतियों में भी विविधता आ गई है।

*स्व० पं० गोविन्दनारायण मिश्र, कवि और चित्रकार, श्री गोविन्द निबन्धावली, पृ० १ (कलकत्ता, सं० १९८२ वि०)।

हम आश्चर्यजनक परिवर्तनों के बीच रह रहे हैं और आज के युग की भावना हमारी शैली को प्रभावित कर रही है।

## समसामयिक प्रवृत्तियाँ

तद्नुसार हिन्दी गद्य को काव्य की सँकरी गली से बाहर निकलना पड़ा और जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य बनना पड़ा। आज हम अप्रतिहत गति चाहते हैं। किसी वर्णन के प्रत्येक पहलू के सूक्ष्म विवरणों को सुनने के लिए अनिश्चित रूप से प्रतीक्षा करने का न तो हमारे पास समय है, न धैर्य। हम चाहते हैं कि जो कुछ भी हमसे कहा जाय, जल्दी और संक्षेप में कह दिया जाय। एक छोटा वाक्यांश एक छोटा वाक्य, एक शब्द-मात्र पर्याप्त है। इसका यह अर्थ नहीं कि हमने मधुरता और सुंदरता की चेतना खो दी है। हम यह सब कुछ चाहते हैं, किन्तु केवल तत्व-रूप में, संक्षिप्त और सीमित रूप में। शैली-भेद की ये मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ हिन्दी के समसामयिक गद्य को प्रभावित कर रहीं हैं। यहाँ मैं फणीश्वरनाथ 'रेणु' की लोकप्रिय कृति 'परती: परिकथा, की प्रारंभिक पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ :—

"धूसर, वीरान, अन्तहीन प्रान्तर।

पतिता भूमि, परती जमीन, वन्ध्या धरती...... ।"

इस उद्धृतांश में कोई क्रिया नहीं है। सारे दृश्य को चित्र के समान खड़ा कर देने में पृथक्-पृथक् शब्द समर्थ हैं। इस प्रकार संस्कृत के बाणभट्ट से हिन्दी के 'रेणु' तक गद्य-शैली के विकास की एक रोचक और बांकी कहानी है।

## ऐतिहासिक पीठिका

देश में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ तो अँग्रेजों ने प्रशासन के लिए हिन्दी सीखने-सिखाने की आवश्यकता का अनुभव किया। कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई, जिसमें उन्होंने आगरे के लल्लूलाल से 'प्रेमसागर' तथा अन्य कई कृतियों की और आरा के सदलमिश्र से 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित्र' की रचना कराई। प्रेमसागर ब्रजभाषा से और नासिकेतोपाख्यान तथा रामचरित्र संस्कृत से अनुवादित हुए थे। और भी कई ग्रंथों के अनुवाद कराए गए। विभिन्न विषयों में पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी और प्रिंटिंग प्रेस भी उपलब्ध थे। इन दोनों कारणों से हिन्दी गद्य के उपयोग के लिए, उपन्यास, नाटक, इतिहास, भूगोल आदि के क्षेत्रों में नई दिशाएँ खोजना सुगम हो सका। प्रचार और उपदेश के लिए ईसाई मिशनों ने बाइबिल तथा अन्य धर्म-ग्रंथों का अनुवाद किया। बंगदूत, उदंत मार्तण्ड, बनारस अखबार आदि कई समाचार-पत्र प्रकाशित हुए।

अँग्रेज प्रशासकों ने देखा कि हमारी भाषा में दो प्रकार की शैलियाँ प्रचलित थीं। एक तो वह जिसमें अरबी-फारसी के शब्द भरे थे और जो मुस्लिम संस्कृति और परंपरा से संबद्ध शिष्ट वर्ग में व्यवहृत होती थी और दूसरी वह जो संस्कृत अथवा देशी शब्दों पर आधारित थी और जनसाधारण के काम में आती थी। शासन, कानून

तथा शिक्षा के क्षेत्र में, इनमें से कौन सा रूप काम में लाया जाय, इस विषय में एक विवाद-सा उठ खड़ा हुआ, जिसमें बीम्स, जान गिलक्राइस्ट, गार्सां द तासी, शिवप्रसाद सितारेहिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह आदि देशी-विदेशी विद्वानों ने भाग लिया। अन्ततः तय हुआ कि दोनों ही प्रवृत्तियों को अपने-अपने ढंग से विकास का रास्ता निकालने दिया जाय। फलतः विदेशी सत्ता के अनुकूल राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में भी भेदनीति की कराल प्रतिक्रियात्मक शक्तियों को उभारा और खुलकर खेलने दिया। परिणाम-स्वरूप हिन्दी और उर्दू साहित्य का पृथक्-पृथक् विकास हुआ।

यों तो अरबी, फारसी और तुर्की के बहुतेरे शब्द हिन्दी में पहले से ही प्रचलित थे। चंद, सूर और तुलसी की कृतियों में तद्भव रूप में ऐसे अनेक शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। इसलिए शिवप्रसाद सितारेहिंद, जो हिन्दी में फारसी-अरबी शब्दों के अधिकाधिक सम्मिश्रण के पक्षपाती थे तथा राजा लक्ष्मण सिंह, जो सभी विदेशी शब्दों के बहिष्करण के समर्थक थे, इन दोनों प्रतिवादियों से भिन्न एक मध्यम मार्ग निकालने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५ ई०) को बहुत अधिक कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने सामान्य प्रयोग के आधार पर सभी स्रोतों के शब्द तथा मुहावरे ग्रहण किए और इस भाँति भाषा को समृद्ध बनाया। इससे हिन्दी में उन राष्ट्रीय-संवेगों की अभिव्यक्ति का प्रभावशाली साधन बनने की सूक्ष्मता आई, जो सन् १८५७ में हुए विदेशी शासन के विरुद्ध ऐतिहासिक विद्रोह के बाद व्याप्त हो रहे थे। इसी कारण भारतेन्दु को आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्मदाता कहा जाता है। बहुत से हिन्दी लेखकों ने उनका अनुकरण किया। इस प्रकार हिन्दी को एसी क्षमता मिली कि उसका प्रयोग ज्ञानवर्धक साहित्य के साथ-साथ संवेदनात्मक और प्रेरणात्मक रचनाओं के लिए भी सफलतापूर्वक होने लगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के इस उत्तर भाग में ही राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तथा आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज के महान् सामाजिक धार्मिक आन्दोलनों का आरंभ हुआ। आर्यसमाजी लेखकों की कृतियों और बंगाली लेखकों के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद ने हिन्दी में संस्कृत के बहुत से शब्दों के तत्सम रूप में समावेश की प्रवृत्ति को पुष्ट किया। इन सब क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से ही यह संभव हुआ कि हिन्दी गद्य अपने संबंधित शब्द-भण्डार से समृद्ध होकर काव्य के संकुचित कुंज के बाहर निकल सका और जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की योग्यता अर्जित करने के निमित्त अपने आपको उपयुक्त रूप में ढाल सका।

## वर्त्तमान धारा का प्रवर्त्तन और विकास—

भारतेन्दु-युग के उपरान्त महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों के प्रयत्नों से हिन्दी में व्यापकता आई और अन्य नये विषयों में उसका प्रयोग संभव हुआ। स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त, पद्मसिंह शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, प्रेमचंद, गोपालराम गहमरी और संपादकाचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी,

जयशंकर 'प्रसाद' ने हिन्दी गद्य-शैली को युग के अनुकूल समृद्ध, समर्थ और व्यापक रूप दिया तथा उसमें अँग्रेजी शली के कुछ श्रेष्ठ गुणों का, बँगला के वाक्य-गौरव का और उर्दू मुहावरों की सजीवता का समावेश किया। इनके अतिरिक्त हिन्दी को बहुव्यापी रूप देने के उद्देश्य से स्वर्गीय अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी कई नये प्रयोग किए।

इन प्रयोक्ताओं में प्रेमचंद ही ऐसे अग्रदूत सिद्ध हुए, जिन्होंने रोजमर्रे की भाषा की लय के यथासंभव समीप आने और युग की आत्मा से अन्विति स्थापित करने के लिए भाषा के रूप को परिवर्तित करने की आवश्यकता का अनुभव किया और उसे कर दिखाया। उनका 'गोदान' इस दिशा में एक नया प्रयोग था, जिसने दूसरों के लिए आदर्श का कार्य किया।

**काव्यात्मक गद्य**

यह नहीं है कि विज्ञान और प्रचार के इस युग में काव्यात्मक गद्य का उपयोग ही नहीं हो। वैज्ञानिक सत्य को भी लोकोपयोगी रूप देने के लिए प्राय: सजीव कल्पना से काम लेना पड़ता है और आवश्यकतानुसार काव्योचित साधनों का उपयोग करना पड़ता है। परन्तु हिन्दी में अभी विज्ञानवेत्ताओं की लेखनी से इस स्तर पर कुछ विशेष उपलब्धि नहीं हुई है। केवल स्वर्गीय रामदास गौड़ के 'वैज्ञानिक अद्वैतवाद' में वैज्ञानिक गद्य की एक विचारपूर्ण प्रौढ़ शैली का थोड़ा परिचय हमें मिलता है।

छायावाद के युग में हिन्दी गद्य ने भी सर्वश्री सुमित्रानंदन पंत, 'प्रसाद' और निराला से पद्य-साहित्य के समान ही मार्मिक लाक्षणिकता का अभिनव परिधान प्राप्त किया। 'प्रसाद' के नाटकों में, पंत की भूमिकाओं में तथा निराला की आलोचनाओं और उपन्यासों में इसके उदाहरण मिलते हैं। पंत की गद्य-कृतियों का एक संग्रह 'गद्य-पथ (१९५५ ई०)' के नाम से प्रकाशित है। इन सब की भाषा में काव्य की कलात्मकता और भावुकता का मिश्रण किसी न किसी रूप में व्याप्त है। फिर भी हम इन्हें गद्य-काव्य मात्र नहीं कह सकते।

हिन्दी में गद्य-काव्य का सबसे पहला सफल प्रयोग स्वर्गीय ब्रजनंदन सहाय के 'सौंदर्योपासक' में हुआ था। इसके अतिरिक्त रायकृष्णदास की 'साधना', अनाख्या तथा 'ब्रजरज' ने इन्हें इस क्षेत्र में अग्रदूतों में समासीन किया। वियोगी हरि के सहज और भावपूर्ण गद्य-खण्ड भी इस प्रकार की साहित्य-सर्जना की अमूल्य संपत्ति हैं। स्वर्गीय चतुरसेन शास्त्री का नाम भी गद्य-काव्य के वरिष्ठ लेखकों में आता है। परन्तु इस क्षेत्र में सर्वाधिक सफलता मिली है, कविवर माखनलाल चतुर्वेदी को, जिनकी वाणी के लिखित तथा उच्चरित दोनों ही रूपों में कोमलकांत पदावली तथा नवीन अभिव्यंजनाओं से समन्वित कवित्व की रस-धारा अनायास उमड़ उठती है। 'साहित्य-देवता' उनकी एक अनूठी देन है। वर्तमान युग में श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया गद्य-गीतों के क्षेत्र में सरस और सफल प्रयोग कर रही है।

ध्यान रहे कि काव्यात्मक गद्य के क्षेत्र में भी अब जटिलता की अपेक्षा सरलता

की ही अपेक्षा है। भावात्मक गद्य में खलील जिब्रान और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ढंग का एक नवीन प्रयोग दिनकर ने अपनी 'उजली आग' में किया है, जिसमें अनेक सारगर्भित सूक्तिवत् वाक्यों का प्रयोग मार्मिकता और अर्थ-गौरव के साथ हुआ है। सभी वाक्य नपे तुले हैं और अपने छोटे कलेवर में गंभीर अभिव्यक्ति समेटे हुए हैं।

## अन्य प्रयोग

नाटक और एकांकी के क्षेत्र में भी अब लंबे संवाद प्रायः नहीं दिए जाते। चरित्रों का विकास और प्रस्फुटन बोलचाल की शैली में दिए गए गद्यात्मक कथोपकथनों के द्वारा बड़े स्पष्ट रूप में होता है। बातचीत की शैली के कुछ अच्छे प्रयोग सेठ गोविन्ददास के नाटकों में मिलते हैं। पर ऐसे गद्य में जो स्वाभाविक गति रहती है, जो सूक्ष्म हास्य और व्यंग्य के फुहारे रहते हैं, उनका निखरा रूप यदि देखना हो तो उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीशचंद्र माथुर तथा विष्णु प्रभाकर की कृतियों में देखिए। स्वर्गीय जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' पं० हरिशंकर शर्मा तथा अन्नपूर्णानंद का हास्य इनसे सर्वथा भिन्न कोटि का है।

शैली के द्वारा प्रकृत चित्रण तथा यथार्थ का वातावरण उत्पन्न करने के लिए हमारे प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, शब्द-चित्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रहसनकार रामेश्वरसिंह कश्यप, शैलीकार अमृतलाल नागर तथा अन्यान्य आंचलिक कथाकार स्थानीय प्रयोगों और बोलियों के शब्दों का स्वच्छंदतापूर्वक प्रयोग करते हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनियाँ' में इस दिशा में किए गए एक प्रारंभिक प्रयास का परिचय मिलता है। जनपदीय शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति को श्री राम-नरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तथा डा० सत्येन्द्र की कृतियों से भी प्रोत्साहन मिलता रहा है।

गद्य के क्षेत्र में शक्तिशाली और ओजस्वी भाषा का जैसा प्रभावपूर्ण प्रयोग स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के लेखों और संपादकीयों में मिलता था वैसा अब दुर्लभ है। फिर भी सामयिक विषयों पर आज, हिन्दुस्तान, भारत, नवभारत टाइम्स, आर्यावर्त आदि कुछ समाचार-पत्रों की संपादकीय टिप्पणियाँ हिन्दी गद्य को पुष्ट करने में सहायक रही हैं।

विवरणात्मक शैली का एक सहज स्वाभाविक रूप हमें पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के लेखों, भाषणों और पत्रों में भी मिलता है। आज से वर्षों पहले लिखी हुई उनकी सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी में भी स्थान-स्थान पर इस विशेषता की झाँकी मिलती है। यही बात उनके द्वारा संपादित बनारसीदास जैन के, अर्धकथानक, की भूमिका में भी पाई जाती है।

उपयुक्त शब्द-योजना द्वारा वर्णनीय विषय का रूप खड़ा कर देने की शक्ति के लिए श्रीराम शर्मा की शिकार-संबंधी पुस्तकों का नमूना प्रस्तुत किया जा सकता है। साहसिक साहित्य के क्षेत्र में उनकी लेखनी बेजोड़ है। एक दूसरा उल्लेखनीय नाम इस क्षेत्र में श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा का है। आप इस समय बिहार वन-विभाग के मुख्य संरक्षक

हैं। वैज्ञानिक विषयों को लोक-प्रिय रोचक शैली में प्रस्तुत करने में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी लेखनी के प्रताप से जंगल में भी मंगल का समाँ बँध जाता है और पहाड़ भी अपनी मूक वाणी में पुकार उठते हैं।

इस गुण का एक अधिक विस्तीर्ण व्यापक धरातल पर सन्निवेश हमें श्रीमती महादेवी वर्मा के गद्य-साहित्य में मिलता है। वर्णनीय विषय की तह में प्रवेश करके, बारीकी के साथ उसका भीतरी और बाहरी चित्र अंकित कर देने की कला में आप सिद्धहस्त हैं। कवियों की मण्डली में महादेवी ही एक ऐसी प्रतिभा हैं, जिन्होंने गद्य को पद्य से भिन्न स्तर पर रखने का सफल और जागरूक-प्रयत्न किया है। इस संबंध में वे स्वयं लिखती हैं :—"विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं, बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।"* चिन्तन विचार और सहृदयता के कलात्मक समन्वय से गद्य के क्षेत्र में—लेखों और व्याख्यानों, दोनों ही प्रकार के प्रयोगों में आपकी शैली का रूप वैसा ही सफल सिद्ध हुआ है, जैसा पद्य के क्षेत्र में आपका कवि-रूप। महादेवी के गद्य के संबंध में श्री जयप्रकाश नारायण जी की (ता० २७-९-४५ ई० को) जेल में लिखी हुई ये अप्रकाशित पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं "आज महादेवी के 'चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' समाप्त कीं। दूसरी पुस्तक में पहली से अधिक प्रौढ़ता है—शैली और कला की। दोनों पुस्तकें सुंदर हैं। अब तक हिन्दी में ऐसी चीज़ देखने में नहीं आई थी।"

व्यक्तिपरक निबन्धों के उपयुक्त गद्य-शैली के प्रांजल, प्रौढ़ प्रयोग के उदाहरणों में श्री सियारामशरण गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके झूठ-सच में हिन्दी गद्य का जैसा उत्कृष्ट, अर्थगर्भित और स्वच्छंद प्रवाहपूर्ण नमूना मिलता है वैसा रवि बाबू, काका कालेलकर, आदि कुछ पहुँचे हुए निबंधकारों की कृतियों को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार की निबन्ध-कला में उसके अनुरूप सजीव शैली के प्रयोगों में उन्हें श्रेष्ठ और अप्रतिम सिद्धि मिली है।

आधुनिक गद्य-शैली को मिली हुई प्रमुखतम देनों में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का स्थान विशिष्ट है। लगता है जैसे इसके लेखक के रूप में, आज की युग-भावना के अनुकूल एक नया रूप धारण करके बाणभट्ट स्वयं अवतरित हो गए हों। सारी पुस्तक एक आकर्षक और विचारपूर्ण डायरी-शैली में लिखी गई है।

डायरी-शैली का एक दूसरे प्रकार का नमूना हमें डा० धीरेन्द्रवर्मा के 'मेरी कालेज डायरी' (प्रयाग, १९५८) में मिलता है। यद्यपि यह उनकी १८ से २० वर्ष तक की लिखी हुई दिन-चर्या का ही संशोधित और सम्पादित रूप है, फिर भी व्यक्तिपरक शैली का यह एक सुन्दर अभिनन्दनीय प्रयोग है।

सीधे-साधे, अकृत्रिम वार्तालाप की शैली ही डायरी शैली का आदर्श हो सकती है। यों संस्कृत के प्राचीन काव्याचार्यों ने वार्ता को काव्य नहीं माना है। भामह ने स्पष्ट कहा है‡—

* शृंखला की कड़ियाँ, अपनी बात, पृ० ७ (प्रयाग ···)

‡ काव्यालङ्कार, २/८७

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिण : ।
इत्येवमादि किं काव्यं वार्तामेनाम्प्रचक्षते ।।"

परन्तु यह भी मानी हुई बात है कि सगुण शब्दार्थवाली अनलंकृत निराडंबर वर्णन-शैली भी एक कला है । इस प्रकार की शैली का सर्वोत्तम उदाहरण हमें गाँधी जी के प्रवचनों में मिलता है† मालूम होता है जैसे प्रत्येक शब्द दरिया में बहते हुए बजरे की तरह मन के भावों और विचारों की छोटी-बड़ी लहरियों पर तिरता जा रहा हो ।* भी देखिए । जान पड़ता है, नवयुवक लेखक लिख नहीं रहा है, बल्कि आमने-सामने बैठे हुए किसी मित्र से सहज भाव से दिल खोलकर बातें करता जा रहा है ।

समालोचना में प्रयुक्त विविध गद्य-शैलियों की विशेष चर्चा करने का यहाँ अवसर नहीं है, पर प्रसंगवश यह उल्लेख कर देना वांछनीय है कि इस क्षेत्र में भी डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'कबीर' नामक पुस्तक एक सर्वथा नई गद्य-शैली का स्वरूप प्रस्तुत करती है । यह पं० रामचंद्र शुक्ल की शैली से स्पष्ट रूप से भिन्न है । यद्यपि इसमें पं० रामचंद्र शुक्ल के गद्य की सी विश्लेषणात्मकता नहीं है, तो भी पारदर्शिता और प्रेषणीयता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है ।

इसके अतिरिक्त डा० गुलाबराय, डा० नगेन्द्र, पं० नंददुलारे वाजपेयी, प्रो० नलिनविलोचन शर्मा, श्री शिवदानसिंह चौहान डा० रामविलास शर्मा, डा० देवराज आदि के पांडित्यपूर्ण निबंधों और ग्रंथों के द्वारा विवेचनात्मक गद्य की नई-नई प्रणालिओं के प्रयोग हुए हैं, जिनसे भाषा-शैली में समीक्षा-शक्ति का वहुविध विकास हुआ है । फिर भी सामान्य रूप से यही कहना उचित होगा कि आलोचनात्मक निबंधों और शोध-प्रबन्धों के लेखक अब भी अपने विश्लेषणों और विवेचनों में रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास तथा जयशंकर 'प्रसाद' की गंभीर, ठोस और संस्कृतनिष्ठ शैली का ही अनुसरण करते हैं । इनमें से कुछ प्रबंध तो हिन्दी साहित्य के लिए निःसंदेह मूल्यवान देन हैं ।

परन्तु हिन्दी गद्य-शैली केवल संस्कृत तक सीमित कभी नहीं रही । उच्चरित और लिखित दोनों ही रूपों में हिन्दी ने प्रारंभ से ही सभी उद्गमों के शब्द ग्रहण किए हैं । जीवन्त भाषा का यही लक्षण है । इसीलिए "आज रेडियो से क्रिकेट मैच का आँखों देखा हाल सुनाया जायगा"—इस प्रकार के वाक्य अब हिन्दी में धड़ल्ले से प्रयुक्त होने लगे हैं और सर्वसाधारण के बीच खपते जा रहे हैं । सप्लाई के लिए कोश में चाहे जो भी पर्याय दिया जाय पर अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में छपता तो यही है—"फ़ौजी सामान की तेजी से सप्लाई," "हावड़ा बर्दमान स्टेशनों के बीच ८८ मील रेलमार्ग पर बिजली की ट्रेनें दौड़ने लगी हैं । इन रेलमार्गों के लिए ब्रिटेन, जापान, इटली आदि देशों के ११० ए० सी० इंजनों का आर्डर दिया गया था, जिनकी सप्लाई और डिलीवरी प्रारम्भ हो चुकी है ।" लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक अंग्रेजों के सम्पर्क में रहने के कारण इस प्रकार के

† गाँधीजी, दिल्ली-डायरी, अहमदाबाद, १९६०
* इस सम्बन्ध में इस निबन्ध का पृ० २९ दे०

दैनिक प्रयोग के बहुत से अँग्रेजी शब्द अपने ही आप जनसाधारण की भाषा के अंग बन चुके हैं। डाक्टर, प्रोफेसर, मजिस्ट्रेट, स्कूल, कालेज आदि शब्दों का प्रयोग आज कौन नहीं करता ? और अँग्रेजी ही क्यों पुर्तगाली और फ्रेंच से भी अनेक शब्द सामान्य भाषा में बहुत पहले से ही ग्रहण किए जा चुके हैं, जैसे, कमरा, नीलाम, कप्तान, पलटन, गोदाम, चाबी, पिस्तौल, अँग्रेज, सिगरेट आदि।

और यह बात केवल साधारण प्रयोग के शब्दों तक ही सीमित नहीं है। अँग्रेजी साहित्य के अध्ययन ने हिन्दी शब्दावली तथा वाक्य-रचना को यहाँ तक प्रभावित किया कि 'शेखर एक जीवनी' 'साकेत: एक अध्ययन' 'प्रेमचंद एक अध्ययन' जैसी उल्लेखनीय कृतियों के शीर्षकों पर भी अँग्रेजी व्याकरण का प्रभाव दिखता है। इसका उदाहरण अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी' के निम्नलिखित वाक्यों में लीजिए:—

"स्नेह एक ऐसा चिकना और परिव्यापक माप है कि उसमें व्यक्तित्व नहीं रहते। ''''''उसे (स्नेही को) कभी ध्यान ही नहीं रहता कि इसे (स्नेह-पात्र को) भी देखने के लिए एक अलग, एक विशिष्ट प्रयत्न करूँ। जैसे एक भली भाँति प्रकाशित दृश्य को देखकर हम प्रकाश को अलग नहीं देखते, किन्तु एक अँधियारे दृश्य को देखकर हठात् पूछ बैठते हैं कि इसका कौनसा अंश प्रकाशमान है''''''।"

इस छोटे से अनुच्छेद में अँग्रेजी के संज्ञा पुरोगामी अनिश्चयवाचक आर्टिकिल 'ए' के लिए बार-बार किया गया 'एक' का प्रयोग द्रष्टव्य है। इसका प्रयोग ऐसे संदर्भों में अँग्रेजी में आवश्यक है। इस 'ए' के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए मृत्युंजय प्रसाद जी ने एक बड़े मजे का उदाहरण प्रस्तुत किया था, जिसे यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा:—

"अगर तबीब लिखे—'मरीज को खास तरह से पाली गई एक मुर्गी का अंडा देना चाहिए' तो फिर यह समझने में कठिनाई पड़ेगी कि एक अंडा या एक ही मुर्गी के कई अंडे दिए जायँगे। अँग्रेजी के इस 'ए' (एक) के प्रभाव से यह कठिनाई बराबर ही पेश आया करती है।"*

इसी प्रकार अँग्रेजी के 'दि' के लिए भी हिन्दी में 'वह' का प्रयोग बेतरह खटकता है।

इधर अँग्रेजी के 'दैट' का अनुवाद करके हिन्दी के वाक्यों के आरंभ में 'कि' देने की प्रवृत्ति भी बढ़ चली है। जैसे:—

"आज हम दायित्व लेते हैं—

कि हमारा प्रत्येक प्रयत्न समाज के उत्थान के लिए होगा।

कि हम सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को अपना लक्ष्य मानेंगे।

कि हमारी सेवाएँ आपकी सुरुचि का अनुसरण करेंगी"

'दैट''''''दैट''''''एँड दैट' का अँग्रेजी वाक्य-गठन भी हमारे कुछ नए लेखकों की लेखनी के सहारे हिन्दी-क्षेत्र में प्रविष्ट हो चला है। उदाहरणार्थ—

---

*सम्मेलन पत्रिका, भाग—१४, अंक—१०, ज्येष्ठ सं० १९८४ विक्रम, पृ० ४४३।

"हमें भली भाँति पता है कि हमारे विरोधियों को हमसे प्रधान शिकायत क्या है, कि उस शिकायत का आधार क्या है, और कि उस आधार के पीछे उनका मंतव्य क्या है।"

अँग्रेजी की तर्ज पर एक ही वाक्य के अन्तर्गत कई वाक्यों के विशेषण की प्रवृत्ति इधर हिन्दी में बढ़ती जा रही है। और शब्दों का तो कुछ न पूछिए। एक ओर पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण हो रहा है और दूसरी ओर उपन्यासों, नाटकों आदि में ही नहीं, वरन् आलोचना के क्षेत्र में भी पैटर्न, ट्रीटमेंट, एप्रोच, काम्प्लेक्स, सेक्स, रोमैण्टिसिज्म, सुपर-रियलिज्म आदि बिना पचे-पचाए विदेशी शब्दों का प्रयोग हो रहा है। अँग्रेजी मुहावरों के आधार पर कई नये मुहावरे भी गढ़ जाने लगे हैं। जैसे अज्ञेय ने रिटर्न-विजिट के लिए 'भेंट लौटाना' इस शब्दावली का प्रयोग किया है।

कदम उठाना, हाथ बैठाना, हाथ मिलाना, भाग लेना आदि अँग्रेजी से आदत्त मुहावरे तो सामान्य प्रयोग में पहले से ही आ चुके हैं। इधर और भी मुहावरे चल गए हैं, जैसे 'काला बाजार, सफेद झूठ, खुली बैठक, शिखर सम्मेलन। आदत्त मुहावरों मे से कुछ तो उत्कृष्ट अनुवाद के नमूने हैं, जैसे, रंगे हाथ 'रेड हैण्डेड' से 'रँगा सियार' के सादृश्य पर बना है, जो हितोपदेश और पंचतंत्र के 'नीलवर्ण शृगाल' की कहानी पर आधारित है। परन्तु कुछ जल्दी के किए हुए प्रयोग हास्यास्पद भी प्रतीत होते हैं। इधर समाचार पत्रों में 'अंडर ग्राउंड' के लिए भूमिगत शब्द का प्रयोग देखने में आया है। 'भूमिगत हो गए' यह कुछ बेढंगा-सा लगता है। जो हो, इस प्रवृत्ति को क्या केवल रोष की दृष्टि से देखना उचित होगा? यह सर्वथा स्वाभाविक है कि अँग्रेजी और अमरीकी लेखकों की श्रेष्ठ आधुनिक कृतियों से प्रभावित हमारे समसामयिक साहित्यकार उन विचारों को हिन्दी में प्रस्तुत करने के लिए उत्कंठित हों, जिनका अनुवाद उन्हें एक प्रकार से संभव प्रतीत नहीं होता। यदि उन विचारों को हिन्दी में प्रस्तुत करने से पहले उन्हें पचाने तथा अपना बनाने का समय निकाल सकें तो निश्चय ही वे कृत्रिम तथा विचित्र-सी लगने वाली ऐसी बहुत-सी आदत्त नवीनताओं से बच सकते हैं। किन्तु हड़बड़ी या प्रमादवश वे ऐसा कर नहीं पाते।

फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हमारे आदत्त शब्दों में से कई कुछ बहुत ही सूक्ष्म अर्थ-रूपों के व्यंजक हैं। मैं यहाँ आधुनिक रचनात्मक साहित्य से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ:—

१. "जयदेव पुरी शरणार्थियों को मुफ्त राशन बाँटनेवाले डिपो के सामने क्यू में खड़ा था।"

(यशपाल के सन् १९६० में प्रकाशित 'झूठा-सच' की पहली पंक्ति)

२. "आकाश में बादलों की फौज जहाँ-तहाँ मार्च करती हुई सूरज को ढँक रही थी।"

( उदयशंकर भट्ट के १९६० में प्रकाशित 'शेष-अशेष' की दूसरी पंक्ति )

३. "चन्द्र का वह जिघांसु मूड फिर लौट आया।"

( अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' से )

क्या हम राशन, डिपो, क्यू, मार्च और मूड इन शब्दों को हटाकर कोई अन्य पर्याय रख सकते हैं ? क्या इस संदर्भ में 'मूड' शब्द को बदल कर यह वाक्य इस रूप में रक्खा जा सकता है :—"चंद्र की वह जिघांसु मनःस्थिति बदलकर फिर वैसी ही हो गई ।"

मुझे विश्वास है कि उक्त वाक्य का विद्वान् लेखक इसे स्वीकार नहीं करेगा। जिस प्रकार हसरत, अरमान, महसूस आदि कुछ विदेशी शब्दों का प्रयोग अच्छे शैलीकार अब निःसंकोच कर रहे हैं, उसी प्रकार 'मूड' जैसे शब्द और 'रिटर्न-विजिट' जैसी अभिव्यक्तियों के लिए उपयुक्त मुहावरे भी भावना, मनःस्थिति और सामाजिक व्यवहार के कुछ सूक्ष्म रूपों के चित्रण के लिए भाषा में खप जा सकते हैं। किन्तु 'मूड' शब्द के मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन 'ड' ने यदि उत्क्षिप्त 'ड़' का रूप लेकर 'मूड' शब्द को 'मूड़' न बना दिया तो हिन्दी की ध्वनि-प्रक्रिया पर एक आघात-सा पहुँचेगा। फिर भी चिन्ता की बात नहीं, इसे एक भाषा-विज्ञानी का महज मज़ाक समझिए । हमारी भाषा में रोड, राड, सोडा, रेडियो जैसे शब्द पहले ही आ चुके हैं जिनमें अनाद्य 'ड' स्पष्ट आदान का सूचक है ।

इसी प्रकार की अँग्रेजी से आगत एक स्वर-ध्वनि 'ऑ' है, जिसे उत्तर प्रदेश में प्रायः शुद्ध आ जैसा ही उच्चरित किया जाता है । श्री भगवतीचरण वर्मा अपने 'थके पाँव' (१९५४ ई०) में एक वाक्य का प्रयोग किया है—"जाइए आपका काल आया है।" मुझे कोई मित्र पुकार कर ऐसा संदेश दे तो मैं तो खौफ से चौंक उठूँ। खुदा हाफिज़ ! इस प्रकार अचानक यह कम्बख्त काल सिर पर आ टूटे तब तो मेरे सारे काम ज्यों के त्यों अधूरे ही पड़े रह जायेंगे । नहीं तो फोन के 'कॉल' और काल में तथा बॉल और बाल में स्वनिमात्मक भेद कीजिए जिससे उनमें अर्थ-भेदकता आ सके अन्यथा बेकार द्विभाषाश्रित श्लिष्ट शब्दों की संख्या बढ़ा कर भ्रम न पैदा कीजिए। अथवा दूसरा उपाय यह हो सकता है कि 'कॉल' के लिए पुकार और बॉल के लिए गेंद इन पर्यायों से ही सदा काम लीजिए और संतोष कीजिए। पर सचमुच ही क्या आप ऐसा कर सकेंगे ।

वास्तव में सामान्य बोल-चाल के माध्यम से आए हुए शब्दों को हठात् हटाने का प्रयास भाषा की स्वाभाविकता पर कुठाराघात करना है । जगदीशचंद्र माथुर के एक नये एकांकी के दो पात्रों की यह बातचीत इस दृष्टि से देखिए :—

"रतन—मेरा लिखा हुआ चेक बैंक वालों को भी पसंद आता है। उस रोज ऐजेंट कह रहे थे कि मेरा दस्तखत बड़ा सुडौल और रोबीला है ।"

"कंचन—क्या कहने ! लेकिन दस्तखत का ज़ोर नहीं चलने का, महीने का आखिर है और एकाउंट देखो तो बिलकुल सिफ़र ।"

पात्रोचित भाषा के ये उदाहरण शिक्षित समाज की आधुनिक प्रवृत्ति का संकेत कर रहे हैं ।

हर्ष की बात है कि हिन्दी शब्द-भंडार का बंद द्वार आज एक और दिशा में भी खुल गया है । डा० प्रभाकर माचवे आदि जैसे हिन्दीतर क्षेत्रों के भी तथा दक्षिण भारत

के मो० सत्यनारायण, नागप्पा, चंद्रहासन, पार्थसारथि जैसे कई यशस्वी लेखकों ने भी इधर नियमित रूप से लिखना प्रारम्भ कर दिया है। उनके द्वारा कई नये शब्द, अर्थ, मुहावरे और प्रयोग हिन्दी में प्रवेश पाते जा रहे हैं, जो अभिनन्दनीय हैं। ऐसे कृती लेखकों के प्रभाव से हिन्दी की व्यापकता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है।

हमारी समन्वित चेतना का ही यह परिणाम है कि इधर संस्कृत से बहुत से नये शब्द हिन्दी में लिए गए हैं और उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। संविधान में भी इस संस्कृतप्राय रूप का समर्थन हुआ है और शब्दावली के लिए संस्कृत पर आश्रित होने की बात कही गई है। वास्तव में यदि हमें अखिल-भारतीय आधार पर हिन्दी का प्रयोग करना है तो उसके लिए संस्कृतनिष्ठ शैली आवश्यक है, क्योंकि भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में महत्तम सामान्य तत्त्व प्रस्तुत करनेवाली एकमात्र भाषा संस्कृत ही है। इसे स्पष्ट करने के लिए भारत के ८वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर दिए गए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के रेडियो-भाषण की निम्नलिखित पंक्तियाँ दी जा सकती हैं :—

"दरिद्रता निवारण, शिक्षा के विस्तार, अज्ञान और निरक्षरता के उन्मूलन तथा कम-से-कम जीवन के रहन-सहन और घरेलू सुख-सुविधाओं की व्यवस्था आदि के लिए भौतिक साधनों की परम आवश्यकता है। इसके बिना प्रगति की प्रेरणा कुंठित हो जा सकती है और देशव्यापी उत्साह पर तुषारपात हो सकता है।"

इसकी तुलना उसी अवसर दिए गए प्रधान मंत्री श्री नेहरू के भाषण के निम्नलिखित उद्धरण से कीजिए।

"भारत के सामने एक चुनौती है। यह चुनौती तीसरी पंचवर्षीय योजना की चुनौती है। × × × जरूर ही हम एक बहुत बड़ा काम करना चाहते हैं। वह है इस देश को नए सिरे से बनाना। अगर कोई यह कहता है कि दूसरी योजना में हमने जरूरत से ज्यादा हौसला दिखाया है तो मैं यह कहूँगा कि मुझ में वाकई ज़रूरत से ज्यादा हौसला है और आगे भी हम इससे बड़े हौसले से काम सामने रक्खेंगे, क्योंकि हम तो इसी के लिए बने हैं"

इनमें राष्ट्रपति का भाषण संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के व्यापक अखिल भारतीय रूप का उदाहरण है, जब कि प्रधानमन्त्री के भाषण में बोलचाल की हिन्दी का वह रूप व्यवहृत हुआ है जो दिल्ली और उत्तर प्रदेश के शहरों में अत्यधिक प्रचलित है। किसी भाषा के ऐसे शैलीगत भेद उसकी व्यापकता और शक्ति के ही परिचायक हैं।

किन्तु ऐसे भेद यदि एक सीमा का अतिक्रमण करने लगते हैं तो भाषाओं के उच्चरित और लिखित रूपों के बीच अंतर पड़ जाता है, जो तब तक तो निभ जाता है जब तक कि उससे सुबोधता में विशेष अड़चन नहीं पड़ती। किन्तु जहाँ सुबोधता में विघ्न पड़ता है, वहाँ संतुलन आवश्यक हो जाता है। अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द को इसी कारण सभी जिलाधीशों के पास इस आशय का एक परिपत्र भेजना पड़ा था कि न्यायालयों और राजकीय कार्यालयों में व्यवहृत होने वाली भाषा

उच्चरित भाषा से दूर जा रही है और कृत्रिम, कठिन तथा अलंकृत बन रही है। गवाहों और मुलजिमों से किए जाने वाले प्रश्न कठिन हिन्दी में होते हैं, जो उनकी समझ में नहीं आते। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३५१ का उल्लेख करते हुए उन्होंने चेतावनी दी है कि यदि यह प्रवृत्ति रोकी न गई तो हिन्दी के विकास को क्षति पहुँचेगी। परन्तु यहाँ हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि विधि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान की भाषा-शैली की दृष्टि से हमारे सामान्य भाषा-रूप से कुछ भिन्न रहेगी ही, जैसा कि अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में भी है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि उत्तर भारत के नगरों में तथा उत्तर प्रदेश के निकटस्थ क्षेत्रों के मध्यवर्गीय परिवारों में व्यवहृत हिन्दी की भाषण शैली का बड़ा सफल और कलात्मक प्रयोग भगवतीचरण वर्मा के नये उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' तथा राजा राधिकारमण सिंह की सद्य: प्रकाशित कृति 'तब और अब' में हुआ है। राजा साहब की शैली बड़े सुन्दर रूप से शैली के सम्बन्ध में 'बफों' के इस कथन की पुष्टि करती है—Le style, éest 'homme memel'—अर्थात् शैली ही व्यक्ति है।"।

समसामयिक महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्म-कथा' और 'बापू के कदमों में' उल्लेखनीय हैं। इन्हें मैं हिन्दी की सरल गद्य-शैली की उत्कृष्टतम कृतियों में मानता हूँ, जिनमें एक मेधावी मस्तिष्क के चिन्तन और वर्णन का निर्बाध प्रवाह मिलता है। उदाहरणार्थ—

"उनके लिए इससे और सुन्दर तथा भव्य मृत्यु नहीं हो सकती थी। एक तो ईश्वर में ध्यान लगाकर प्रार्थना के स्थान पर जा ही रहे थे, गोली लगने पर भी मुख से 'हे राम' का ही उच्चारण हुआ।

"जनम जनम मुनि जतन कराहीं; अन्त 'राम' कहि आवत नाहीं"

पर महात्मा जी के मुँह में अन्तिम शब्द 'राम' का ही आया। इससे बढ़कर उनकी तपस्या का और क्या सुन्दर फल हो सकता था? गोली भी मारी गई एक ऐसे कारण से, जो उनके जीवन का एक बड़ा ध्येय और व्रत था। उन्होंने सारी जिन्दगी हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए प्रयत्न किया था। जब समय आया तो मुसलमानों की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी जान की परवाह न करके अपनी सारी शक्ति उस अहिंसा की प्रतिष्ठा में लगा दी, जो उनके जीवन का लक्ष्य था। बस वह आन्नदपूर्वक गोली के शिकार बन गए।*

गांधी जी की अन्तिम घड़ियों के वर्णन कई गद्य-पद्यात्मक रचनाओं में मैंने देखे हैं, पर ऐसा सीधा-सादा और प्रभावशाली, मर्मस्पर्शी वर्णन, याद नहीं कि अन्यत्र कहीं देखा हो। ऐसी कृतियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि आज के लिखित हिन्दी शैलीगत स्तर पर उच्चरित भाषा से पहले की अपेक्षा अधिक दूर कदापि नहीं है। वास्तव में यह एक बहुत बड़ी कला है कि हम उसी रूप में लिखें, जिस रूप में साधारणत: बातचीत करते हैं और साथ ही बैठे-ठालों की शिथिल गप-शप के स्तर पर भी न जा गिरें।

*—'बापू के कदमों में, पृ० २६६—६७

जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित सूक्ष्मतम सत्य और सुकुमारतम संवेग तथा विचार भी अब सरल और शुद्ध भाषा में निबद्ध किए जा सकते हैं। इसके प्रमाण हैं विनोबा जी तथा साहित्यिक दायरे के लिए कुछ अपरिचित-से स्वामी शरणानन्द जी की विचारपूर्ण कृतियाँ और भाषण। भावों के सरस चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा धर्मवीर भारती की प्रतिभा भी अनुपमेय है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि समसामयिक विज्ञान और मानवीय अनुभव की कृतियों के लिए किस प्रकार के गद्य का प्रयोग होना चाहिए और हमारा आज का गद्य यह भार उठाने में समर्थ है या नहीं। विज्ञान की भाषा प्रवाहमयी और निर्वैयक्तिक होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दावली की है। इस विषय में तो सब एकमत हैं कि पारिभाषिक शब्द जहाँ तक संभव हो, अखिल-भारतीय और एकरूप होने चाहिए, जिन्हें हिन्दी-सहित भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं में काम में लाया जा सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए संस्कृत का आश्रय आवश्यक है। इसके अतिरिक्त लोकभाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं तथा अँग्रेजी की सहायता भी अपेक्षित है। हर्ष की बात है कि भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के प्रयत्नों के फलस्वरूप कोई दो लाख से अधिक पारिभाषिक शब्द कोशबद्ध हो चुके हैं और इनके निर्माण में हिन्दी-क्षेत्र के ही नहीं हिन्दीतर प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों और विशेषज्ञों की सहायता भी प्राप्त की गई है। ख्याल किया जाता है कि ये शब्द कम-से-कम माध्यमिक स्तर तक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों के लिए पर्याप्त होंगे। मंत्रालय अब ऐसी व्यवस्था कर रहा है कि विज्ञान की प्रमुख और उच्चस्तर की पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में किया जाय तथा मौलिक पुस्तकें लिखी जायँ, जिनका उपयोग विश्वविद्यालयों की सभी कक्षाओं में हो सके। यह एक कठिन और बड़ा कार्य है, जिसे दृढ़ और व्यापक आधार पर किया जाना चाहिए। तभी वह विशाल धन-राशि, समय और शक्ति जो शब्द निर्माण में लग चुकी है, सार्थक हो सकेगी और उसका अभीप्सित उपयोग हो सकेगा। यह तो सभी जानते हैं कि कोश में अलग-अलग शब्द लिख देने से अर्थ नहीं निकलता, अर्थ निकलता है शब्दों और वाक्यांशों को वर्गों, उपवाक्यों और वाक्यों में एक साथ मिलाकर रखने से। इन शब्द-समूहों तथा हमारे विचारों और गतिविधियों का सम्बन्ध एक रहस्यमय सूत्र के द्वारा निर्मित होता है और यह सम्बन्ध एक रहस्यमय ढंग से एक मस्तिष्क के विचार दूसरे मस्तिष्क तक पहुँचाता है। विश्वविद्यालयों का सहयोग इस कार्य के लिए बहुत आवश्यक है, क्योंकि यदि निर्मित शब्दों और लिखित पुस्तकों का वस्तुतः उपयोग नहीं होता, तो ईश्वर न करे, उनकी वही गति हो सकती है जो हैदराबाद में निजाम सरकार द्वारा तैयार करवाई गई उर्दू पुस्तकों की हुई।

पहले तो हमें अब इसमें सन्देह न होना चाहिए कि हमारे उद्देश्य स्पष्ट हैं। अभी हाल में घोषित किया गया है कि विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग ने एक समिति की स्थापना की है, जो इस प्रश्न पर विचार करेगी कि उच्च स्तर की रक्षा करते हुए शिक्षण के माध्यम में किस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है। इसके लिए वह एक योजना भी प्रस्तुत करेगी। पारिभाषिक शब्दों के विषय में प्रकट किया जानेवाला भय केवल हिन्दी के लिए ही सत्य नहीं है। अँग्रेजी में भी प्रत्येक दस वर्ष के

बीच चार-पाँच हजार शब्द विज्ञान के वेगशाली विकास के साथ चल सकने के लिए निर्मित होते हैं। यही नहीं, विज्ञान और उद्योग-धन्धों के कुछ प्रचलित पारिभाषिक शब्द कभी-कभी अप्रत्याशित अतिव्याप्तियों अथवा असत्य समानताओं के कारण बड़े भ्रामक सिद्ध होते हैं, जैसे, फ्रेंच में जैसे 'éther' शब्द और 'ester' दोनों ही अर्थों का सूचक है। अँग्रेजी और अमरीकी जैसी भाषाओं में भी, जिनमें चचेरी बहनों-जैसा संबंध है और जिन्हें सामान्यतः एक ही भाषा समझा जाता है, पारिभाषिक प्रयोग के संबंध में कभी-कभी गंभीर भ्रांतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। चर्चिल ने लिखा है कि किस प्रकार एक बार प्रस्ताव 'टेबुल' करने के प्रसंग में 'टेबुल' शब्द ने एक महत्त्वपूर्ण युद्ध-समिति में एक लंबा और कटु वाद-विवाद उपस्थित कर दिया। कारण यह था कि अमरीकियों ने 'टेबुल' का अर्थ 'अनिश्चित काल के लिए स्थगन' लगाया, जब कि अँग्रेजों ने उसका अर्थ समझा 'अगली मंत्रणा के लिए निश्चय'। किन्तु ऐसी भ्रांतियों और कठिनाइयों के भय से अँग्रेजी में मंत्रणाएँ और फ्रेंच में वैज्ञानिक पुस्तकों का प्रकाशन रोक तो नहीं दिया जाता।

पिछले दस वर्षों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और मानव विद्याओं की विभिन्न शाखाओं की कुछ उच्चस्तरीय सामग्री का प्रकाशन काशी नागरीप्रचारिणी सभा, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, उत्तरप्रदेश सरकार सूचना-विभाग की प्रकाशन-शाखा-जैसी साहित्यिक तथा प्रबुद्ध संस्थाओं से हुआ है। इनमें से कुछ पुस्तकों को आदर्श मानकर आगे इस क्षेत्र में कार्य किया जा सकता है। इनमें से कुछ पुस्तकें जैसे प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्मा का 'रबर' (१९५५ ई०) डा० दयास्वरूप के 'औद्योगिक ईंधन' (ना० प्र० सभा २००९ वि०) और 'धातुविज्ञान' (२००८ वि०) श्री सुरेशसिंह का 'जीव-जगत' (सूचना-विभाग १९५८ ई०) श्री विनोदचंद्र मिश्र का 'जाति-विज्ञान का आधार' जो प्रो० जी० एस० गेयर की मूल पुस्तक का अनुवाद है (सूचना वि० उ० प्र०, १९५८) तथा मोहम्मद सादिक़ सफवी के 'राइफल' का श्री रामचंद्र वर्मा द्वारा उर्दू से किया अनुवाद (सूचना-विभाग उ० प्र०, १९५८ ई०) ये विज्ञान के अनुरूप ऐसी सुस्पष्ट, सुबोध और संग्राह्य गद्य का स्वरूप प्रस्तुत करती है, जिसको आदर्श मानकर इस क्षेत्र में कार्य किया जा सकता है। इन पुस्तकों की अनुक्रमणिका में अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के साथ ही उनके वे हिन्दी पर्याय भी दे दिए गए हैं, जिनका पुस्तक में व्यवहार किया गया है। विज्ञानेतर सामान्य मानवीय ज्ञान के क्षेत्र में डा० मोतीचंद्र का 'सार्थवाह' (बिहार, राष्ट्र-भाषा-परिषद्) तथा राहुल सांकृत्यायन का 'मध्य एशिया का इतिहास' ये दोनों पुरस्कृत ग्रंथ विवेचनात्मक गद्य के अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली की समस्या को हल करने के लिए केन्द्रीय शासन ने कुछ मन्तव्य स्थिर कर लिए हैं, जिनका वहाँ अनुसरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त 'राइफल' नामक पुस्तक के मूल लेखक ने भूमिका में कुछ स्पष्ट सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जिनकी ओर मैं ऐसे ग्रंथों के लेखकों का ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। वैज्ञानिक या शिल्पकारिता वाले ग्रंथों के लिए जहाँ हमें उपयुक्त पारिभाषिक शब्द अपनी भाषा में नहीं मिलें वहाँ अँग्रेजी शब्दों को ही स्वाभाविक ध्वनिप्रक्रियात्मक रूपान्तरों के साथ

स्वीकार कर लेना उचित होगा, जैसा कि उपर्युक्त पुस्तकों के अनेक स्थलों में उदाहृत हैं। कहाँ पर शब्दान्तरण द्वारा नये पर्याय तैयार किए जायँ, और कहाँ पर ध्वन्यन्तरण द्वारा अँग्रेजी के ही शब्द स्वीकार कर लिए जायँ, इसका निर्णय सदा विवेक-बुद्धि पर निर्भर है। शरीर शास्त्र में एक लैटिन शब्द है वोमर (Vomer) जिसका अर्थ नासिका के ऊपर की एक छोटी सी हड्डी है। विद्यार्थी 'वोमर' की परिभाषा रटते-रटते परेशान हो जाते है। यदि इसका पर्याय 'हलास्थि' प्रयुक्त होने लगे तो शब्द से ही अर्थ स्पष्ट हो जायगा और विद्यार्थी का मस्तिष्क-भार हलका हो जायेगा। इसी प्रकार Platyrrhine के लिए श्री विनोदचंद मिश्र ने 'चिपटनासा' शब्द का व्यवहार किया है, जो सर्वथा ग्राह्य है। इसके अतिरिक्त 'ऑक्सीजन' तथा 'हाइड्रोजन' के लिए हिन्दी में ही 'ओसजन', 'उद्जन' आदि अनेक पर्याय व्यवहृत होते हैं। इससे अच्छा तो यही है कि मूल शब्द का ही ध्वन्यन्तरण कर लिया जाय। कहाँ किस नीति से काम लिया जाय, इसका मुख्य आधार आयास-लाघव हो सकता है। जहाँ जिससे कम से कम आयास में प्रयोजन सिद्ध हो सकता हो वहाँ उसी रास्ते को अपनाना उचित होगा।

यदि हिन्दी को १९६५ ई० में संघ की भाषा के रूप में अँग्रेजी का स्थान लेना है, जैसा कि हमारे स्वराष्ट्र-मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पंत की अध्यक्षता में बनी हिन्दी-समिति न सुझाव दिया है, जिसे आवश्यक संशोधनों के साथ राष्ट्रपति की स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी है, हिचकिचाने और इन्तजार करते रहने का कोई अर्थ नहीं है। हिन्दी गद्य हमारे उद्देश्य की पूर्ति सहज ही कर सकता है, यदि उद्देश्य के पीछे सच्ची इच्छा-शक्ति हो, क्योंकि भाषा का विकास और उसमें नये अर्थों का समन्वय तभी होता है जब कि उसको प्रयोग में लाया जाय, ठीक उसी प्रकार जैसे बालक चलना सीख लेने के बाद नहीं चलता, बल्कि चलने के साथ ही साथ चलना सीख पाता है।

डा० महादेव साहा

# फरगूसन का हिन्दोस्तानी कोष

हिन्दुस्तान की आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के हजार वर्ष हो चले। इन भाषाओं के व्याकरण तथा कोश लिखने का इतिहास उतना पुराना नहीं है। अपनी सूची में अगर हम कोंकणी को लें तो कहना पड़ेगा कि इसी भाषा का व्याकरण सबसे पहिले लिखा गया। १५७९ में पहिला इंगलिस्तानी स्टीफेन्स पच्छिमी हिन्दुस्तान में उतरा। उसी ने कोंकणी का व्याकरण लिखा। जहाँ तक मुझे मालूम है, यही हिन्दुस्तान की आधुनिक आर्य भाषाओं में एक का पहिला व्याकरण है।

१७वीं शताब्दी में मिरजा खान ने (१६७५/७६) में तुहफात-उल-हिन्द नामक एक अनूठा ग्रंथ फारसी में लिखा। इसमें उन्होंने सामुद्रिक, कोकशास्त्र, संगीत के अलावा ब्रजभाषा के छन्द, अलंकार व्याकरण और ३००० शब्दों का कोश भी दिया है। इसके अलावा हिन्दी-फारसी के छोटे-बड़े कई कोश मिलते हैं। इन कोशों पर अलग से लिखने का इरादा है।

विदेशियों में जोशुआ केटेलर* ने पहिले पहल १६९८ में हिन्दुस्तानी व्याकरण लिखा। १७४३ में प्रकाशित इसके लैटिन अनुवाद को लोग अधिक जानते हैं। बेन्जामिन शुल्ट्ज के (१७४० लिखा) १७४४-४५ में प्रकाशित व्याकरण हिन्दुस्तानी का दूसरा व्याकरण है। इसके बाद ही जार्ज हैडले (१७७२) के व्याकरण का नाम आता है। ऊपर के सभी व्याकरणों में थोड़े बहुत शब्दों के अर्थ दिये गये हैं मगर इन्हें कोश की मर्यादा नहीं दी जा सकती है।

जान फारगूसन ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना में २९ अगस्त १७६५ में भर्ती हुए। १३ जनवरी १७६७ लेफ्टिनैन्ट बनाये गये। तन्दुरुस्ती खराब होने की वजह से २४ जनवरी १७६९ में इस्तीफा देकर विलायत चले गये। वहीं उन्होंने १७७३ में अपना कोश और व्याकरण प्रकाशित कराया। हिन्दुस्तान के रास्ते वे उत्तमाशा अन्तरीप पहुँचे। वहीं एक अंगरेज़ ने उन्हें मार डाला। इसका आख्यापत्र निम्नलिखित है :—

A/DICTIONARY/OF THE/HINDOSTAN LANGUAGE/IN TWO PARTS/I. ENGLISH AND

* जन्म २५ दिसम्बर १६५९ एल्बिङ् (प्रुसिया—अब पोलैंड में)

HINDOSTAN,/II. HINDOSTAN AND ENGLISH./The latter containing a great Variety of/ Phrases, to point out the/ Idioms, and facilitate the Acquisition of the Language./ TO WHICH IS PREFIXED/A GRAMMAR OF THE/ HINDOSTAN LANGUAGE./BY JOHN FERGUSSON, A. M./Captain in the Service of the HONOURABLE EAST INDIA COMPANY./LONDON:/PRINTED FOR THE AUTHOR;/AND SOLD BY T. CADELL, IN THE STR-AND./MDCCLXXIII./Price TWO GUINEAS bound.

नीचे हम फरगूसन के अँगरेज़ी-हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तानी-अँगरेज़ी कोशों से कुछ नमूने देना चाहते हैं। हिन्दुस्तानी के शब्दों पर विचार करते समय हमें याद रखना होगा कि कोशकार १७६७-६८ में बंगाल के मेदिनीपुर ज़िले में तैनात थे। इसके दक्खिन-पच्छिम और पच्छिम का इलाका अभी अंगरेजों के कब्जे में नहीं आया था। ग्रंथकार ने बंगाल के देहात में ही अपना काम किया था। कोश में अरबी-फारसी के शब्द बंगाल वाले अर्थ में आये हैं। इसलिये कोश में बंगला शब्दों का बहुतायत से आना कोई अचरज की बात नहीं है। पल्टन में बिहारी सैनिक थे, इसलिये उसका असर भी है। फरगूसन की सारी किताब रोमन अच्छरों में छपी है। हम भी उनके शब्दार्थों को ज्यों का त्यों नागराक्षरों में दे रहे हैं कहीं-कहीं उनका उच्चारण और टिप्पणियाँ अपनी ओर से देंगे।

**'इंगलिश-हिन्दोस्तान' कोश**

Admirable, Besh, Toffea. फारसी का 'वेश' बँगला में इस अंगरेज़ी शब्द के लिये प्रचलित है। भोजपुरी, मगही और मैथिलीमें इसी तरह के अर्थ में इसका प्रचलन है। अरबी का 'तोफा' के लिये भी यही कहा जा सकता है।

Aged, Booda, Poorana. और बँगला में 'बुड़ा', 'बुड़ो' के रूप में प्रचलित है।

Agriculture, Tshass. चास-बँगला में 'चाष' [चष् (भक्षण) + अ (भाववाच्य) = भक्षण के योग्य वस्तु का उत्पादन। प्राचीन बंगला में 'चास' (रमाईपंडित कृत शून्यपुराण); खेत जोतना, खेती। बिहार की कुछ बोलियों में भी 'चास' इसी अर्थ में प्रचलित है।

Ailing, Koila, Azaar, Bearaam. 'काहिल', 'ब्याराम' बंगला में यही रूप प्रचलित हैं। पूर्वी अवधी में 'बेराम'।

Alligator, Koomer. बँगला 'कुमीर' हिन्दी 'कुंभीर'

Anchor, Nangur. बंगला 'नंगर', 'नोंगर'; हिन्दुस्तानी 'लंगर', पूर्वी बंगला-लंगर।

Apparel, Angka, Koppra, Zamah. बंगला 'गायेर कापड़'। 'जामा' बंगला में कुर्त्ते के अर्थ में आता है।

April—Bysak. बैसाख।

Arm, Bhaam—Haatheh. बाँह, हाथ ।
To arrest—Attakk-kurrna. बँगला में 'आटक करा' ।
Arrival—Auwtee. आवती ।
Ashes,—Raag, Pauroo. [?] राख ।
Aspersion—Gilley, Tshoonglee. गिला, चुगली ।
Azure—Neela, Asmaanee. नीला, आसमानी ।
To bake—Tamboorme-pukkauna. तम्बूर में (तंदूर में) पकावना ।
Baker—Nanbay. नानबाई ।
Ball—(from bal, Danish) Goolee. बंगला 'गुली' हि० 'गोली' ।
Ball—(from bal, French) Notsh नाच ।
Bath—Hummum. अ० हम्माम ।
To bathe—Assnaan-Kurrna. अस्नान (स्नान) करना ।
Bear—Bhaal, Ries. भाल (भालू) रीछ ।
Bird, Tshoora. चिड़िया ।
Blood-Lohu. लोहू ।
Boat-man—Dandee, Dingeewalla. बँ० डाँड़ी, डिंगिवाला; हि० डोंगीवाला ।
To boil—Pukkna, Footna. पकना, बंगला 'फुटान' हि० उबालना ।
Bondmaid—Loondee, Bandee. लौंडी, बाँदी ।
Bondman—Goolaam. गुलाम ।
Bread—Rootee. बँ० रुटि, हि० रोटी ।
Bride—Doolen. दुलहन, दुलहिन ।
Bridegroom—Dhoolee. दूल्हा ।
Brother's son—Bhanja. 'भांजा' बहिन के बेटे को कहते हैं । यूरोपीय भाषाओं में 'भतीजे' 'भांजे' के लिये अलग शब्द नहीं हैं ।
Butter—Mukhen. मक्खन ।
—milk—Mittay. मट्ठा ।
Cane-Beat. बं० बेत, हि० बेंत ।
Canopy-Tshandenee. चाँदनी ।
Cap—Ghoogie. घोघी ।
Card—Tass, Gunnjieffa. तास, गंजीफा ।
Clay—Kietssh. कीच ।
Clerk—Kranee. केरानी ।
Cotton—(the down) Rooey. रुई ।
Cotton—(the plant) Koppass. कपास ।
Cowaord—Namurde नामर्द ।
Cud—Pagul. पागुर ।
Daily—Hirrose. हर रोज ।

Daughter—Bethee. बेटी।
—in-law—Kannah. कन्या, बिहार की कुछ बोलियों में 'कनिया' पतोहू या नयी ससुराल में आई लड़की को भी कहते हैं।
To detain-Atkauna. देखो To arrest.
Digger—Beeldaar. बेलदार [हि० बेल + फा० दार] बँगला में भी यह शब्द मिलता है। जैसे—एकायुत बेगारि आगे धाय। उचु नीचु कुपथ सुपथ करे चाय। (घनराम चक्रवर्त्ती—धर्म्ममंगल)
To dine—Kouna-Kauna. खाना-खावना (खाना)।
Dumb—Googa. गूँगा।
—ness—Goongay. गूँगाई।
Eighteen—Autara. अठारह, बँ० आठार।
—th—Autarta. 'टा०' प्रत्यय बंगला से लिया गया है।
Eighty—Asseh. अस्सी।
Eleven—Egaroh. इगारह, ग्यारह, बँ० एगार।
—th—Egarota. बं०, एगारोटा।
Eye—Awkk. आँख।
Eye-brow—Ont. [?]
Eyeless—Beawka. बे आँख का।
Father—Baab. बाब, बाप।
Father-in-law—Sussoor. ससुर।
Father's brother—Tashatsha. चाचा।
Father's father—Dada. दादा।
Father's mother—Dadee. दादी।
Father's sister—Tshatshe. चाची [?]
Fifteen—Pundara. पन्द्रह।
—th—Pundarata. हि० पन्द्रह + बं० टा।
Fifth—Panshta. हि० बँ० पाँच + बं० टा।
Fiftieth—Petshassta. हि० पचास + बं० टा।
Fig—Angsier. अंजीर।
Fine—adj. Meah, May. पू० हि० मेंह, मेंहीं।
—ness—f. Meahee, Mayee. मेंही हि० महीन, बँगला-मिहि।
Fruit—Pull, Meyuwa. फल, मेवा।
Fruit—tree, Pull-gatsh. फलगाछ।
Gender—Rykem. रकम।
Grocer—Dukanee. बँगला-दोकानि, दोकानी। दोकानि पातिया गेल हाट। (शून्य पुराण); सुमधुरवाणी बोले से दोकानी। (चंडीदास)

Hunered—Souw. सौ ।
—th—Souwta. हि० सौ+बंगला 'टा' ।
Husbandman—Reyat, Tshassee रैयत, चासी ।
Husbandry—Reyatgeeree, Tshass रैयतगीरी, चास ।
Knee—Guntha. गांठ ।
Lungs--Tillie. तिल्ली [?]
Million—Kurrub. खरब [?]
Mind—Jaan. जान ।
Mother's sister—Mammee मामी [?]
Mutiny—Aibon. अनबन (?)
Sister's Daughter—Beynjee. भांजी ।
Sick, Koila, Azaar. बं० काहिल ।
—ness—Koiley, Azaaree काहिली ।
Shutter—Keewar. किवाड़ ।
To sing—Guwena. गावना ।
Sister's Son—Bheyunja. भांजा ।
Small pox—Ghoote. बँ० बंगला-गोटी, हि० चेचक ।
Son-in-law—Janway. बं० जामाई ।
Sour—Kutta. खट्टा ।
Spleen—Peepra. फेफड़ा । फरगूसन ने तिल्ली को फेफड़ा और फेफड़ा को तिल्ली किया है । देखो Lung.
Steel—Foulaat. फौलाद ।
Straw--pooal, Kerwee. पुआल, पू० हि० करबी ।
To swim--Paarana. (पूर्वी हिन्दी) पौंड़ना-पैरना,
Table—Meas, Keratse. मेज, कुर्सी ।
Tall—Lumbo. लम्बा ।
Tank—Poaker. बिहारी-पोखर ।
Thanks—Tamsheed-dena. [?]
Theft—Tshooree. बं० चुरी, हि० चोरी ।
Thigh—Tshooter. चूतर ।
Tobacco. Tambaag बं० तामाक ग्रा० बं० तामाग ।
Treasurer—Buxhee. बक्सी ।
What--Kesha. बँ० केसा, हि० कैसा ।
Wheat—Geauw. गेहूँ ।
Window—Kreekee. खिड़की ।
Yes—Hah. हाँ ।

Yesterday—Kaalgeha. बं० गेल काल ∠ गतकाल ।

## फरगूसन का 'हिन्दोस्तान-इंगलिश' कोश

Aageh (आग), Fire. Sywa aageh konna pukkauna ney sikkega. I cannot dress victuals without fire.

Aagehka—lakkeree (आग-का-लकड़ी), Firewood.

Aageh-terru (आग-तरह), Fiery. Asman aageh-terra nuzzur-avta. The air appears fiery.

Aam, Pukka aam meetha araamka pullhey. A ripe mangoisa sweet and salutary fruit.

Aansoo, Tear (weeping) – burra deelgieree me delassadeta. Weeping gives relief ingreat sorrow.

Aar (बँगला-आर, हि० और), more.

Abad, city. Dagha—baaseeka khatr my Oosko abadse door keha. I drove him from the city on account of villainy.

Adadah (अदद), Number.

Adeba, (अदब) compliant, obedient.

Aengoota, (अँगूठा), Thumb.

Affutt (आफत), Adventure, Calamity, Disaster, Misadventure. Merra kissa neeshebe myko rose rose kutsh affutt hota. What sort of fortune is mine for everyday some disaster befalls me.

Agn (ग्राम्य बँगला–अघ्राण; अग्घाण, अघान, हि० अगहन), November.

Aia, (पोर्तुगाली-आया), Dry-nurse. Aia baba-khonna me gehee. The nurse has gone into the nursery.

Aknanee (?), Cave, Aknanee me ek bbaag rēta. One tiger remains in the cave.

Anaar, (फा० अनार), Pomegranate—bopme kutsh araamee deta Pomegranate gives some relief in a fever.

Andee (आँधी), Storm. Jahaas andeemē hara-hua. The ship was lost in a storm.

बँगला—'हारान' (=खोना) का संक्षिप्त रूप 'हारा'+हुआ ।

Assar, (असाढ़), June.

Athiem (अरबी-यतीम, बँगला-एतिम), orphan.

Atshaar-me-den (अचार-में-देना), To pickle.

Attokk-kurrna, To Arrest, To Check, To Gainstand, To obstruct, To Oviate; To Rastrain, देखो To Arrest.

Auwtee, आवती, अवती, Arrival.
Awk, Eye.
Azzath (इज्जत), Veneration.
Baag, भाग, Flight (See Bhaagh, Tiger).
Baddel (बादल), Cloud.
Bagora, (भगोड़ा), Deserter, Fugitive, Runaway.
Barhy (बढ़ई), Carpenter.
Bassa, (बास+आ (क्षुद्रार्थे, तुच्छार्थे), वासस्थान, निवास, बँगला-बासा, बिहारी और पूरबी हिन्दी 'बाँसा'), Abode, Lodging, Habitation.
Beer, (फिर), Once.
Beera, (भेड़ा), Ram.
Beenga (भीगा, भींगा), Wet, Moist, Humid.
Beng, (बँगला–बेंग, बेङ, सं०-व्याङ्ग (मेदिनीकोष), बिहारी भाषाओं में भी बेङ् मिलता है।) Frog.
Bennie (बनाई), Make
Besh (बेश) Accomplished, Elegant, Admirable, Delicious (देखो) Admirable.
Bhaal, (भालू), Bear.
Bhaan, (बाँह), Arm.
Bihen, (बीहन, बेहन), Seed.
Boa, (फारसी-बू, बँ०--बो, बय), Smell, Odour, Scent. Ptaza foohl khush boa kurrta. A fresh flower affords an agreeable smell.
Boil, (हि० बैल, बँ० बयल), Ox, Bullock, Ladooka boil, Carriage bullock.
Bood, (बुध), Wednesday.
Boot, (भूत), Devil, Fiend.
Bramin (ब्राह्मण), The tribe of Indian clergy.
Bysak, (बैशाख), April.
Daal, (दाल), Vetch.
Daal, (डाल), Bough, Branch.
Deep, (द्वीप, बँगला उच्चारण 'द्वीप'), Island.
Deuw, (देव), Idol.
Dhear, (हि० बँ० ढेर) Great many.
Dhee, (देह), Body.
Dhoole, (दुल्हा), Bridegroom.
Dhoolen, (दुलहिन), Bride.

Dingee (बंगला-डिङ्गी), Boat. देखो Boat.
Doonder-walla, (ढंढोरवाला), Cier, Bell-man.
Dukaanee, (बँ० दुकानी) Shop-keeper, Grocer, देखो Grocer.
Feere, (फिर) Again, Back.
Footna, (बँ० फुटान), To Boil. देखो To boil.
Futtea, (फतह), Overthrow, Conquest.
Ganw, (गाँव), Hamlet, Village.
Geauw, (गेहूँ), Wheat.
Gehensa, (गंजा), Bald.
Genda, (गंदा), Corruption.
Goodee (गोदी) Bosom.
Goseng, (गोंसाई), A Hindoo priest.
Gummooree (गंभौरी). An Irruption of the Skin.
Hateh-helie, (हथेली) Palm.
Haath-Karat, [(हि० हाथ + बँ० करात (आरी) = करवत ] Handsaw.
Haathourie, (हथौड़ी), Hammer.
Hattee, (बँ० हाती, हि० हाथी) Elephant.
Heo, (पूरबी हि० हियाँ), Here.
Huo, (पू० हि० हुँआ), There.
Jagga, (हि० जगह, बँ० जायगा), Space, Region, Place, Room, Lodging.
Jagga, (जागा), Awake.
Jarra, (जाड़ा), Algidity, Cold.
Jeed, (जेठ), May.
Jeleea, (सं० जालिक, हि० जालिया, बँ० जेलिया, जेले), Fisher.
Jooma, (अरबी-जुमा, हि० जुमा, बँ० जुम्मा, जुमा), Friday.
Joomaraateh, (जुमेरात), Thursday.
Juvanee, (जबान), Language, Speech.
Kaalauta, (काल + आवता), Morrow.
Kaalgeha, Yesterday देखो Yesterday.
Kaffor, (सं० कर्पूर, हि० कपूर फा० काफूर), Camphor.
Kagoze (चीनी Kak-doz), Paper.
Kahed, (अरबी-क़ैद, बँ० कयेद) Prisoner.
Kahedee, (क़ैदी, बँ० कयेदी), Bondage, Captivity, Confinement.
Kaja, [?], Rock.
Kareh, (खड़ा) Erect.

Karatee, (सं० करपत्र 7 करपत्त 7 करपात (पा = ग्रा) 7 करात,—को चलानेवाला 'कराती'), Sawyer.

Karat-Kurrna. (बँ० करात+हि० करना) To saw.

Karree, (कढ़ी), An Indian Dish.

Kurrumkulla, (फा० करमकल्ला), Cabbage.

Kartek, (सं० कार्त्तिक) October.

Kafcerjee, (अरबी-कफ़), Palm.

Kawn (कान) Ear.

Keala, (केला) Plantain.

Keel-walla, (खेलवाला), Player.

Kerie, (सं० कांड, बँ० कड़ि, हि० (पूरबी) काँड़ी) Beam.

Koah-dena, (बँ० खोग्रोग्रा, हि० खोना, खो देना), To Lose, To Amnut.

Koddawena, (खोदवाना), To Dig.

Koila, (काहिल), Ailing, Sick. देखो Ailing.

Kola, (बँ० खोला, हि० खुला) Apert, Lax, Open, Loose, Patent.

Komeas, (अरबी-क़ूमिस्, पुर्त्त० कामिस, हि० कमीज), Shirt.

Konna (खाना) Nutriment, Diet, Food, Sustenance, Nourishment, Aliment, Repast, Meat, Victuals.

Gormee-chamme my kumm konua kanta leekhen zehada pieta, In summer I eat little, but drink much.

Kobbie, (बिहारी-कोबी, बँ० कपि) Cabbage.

Kooree, (कुँग्रारी, क्वाँरी) Virgin, Maid.

Koortee, (तु० कुरता, बँ० हि० कुर्त्ता, कुरता), Coat.

Kootha, (कुत्ता) Dog.

Koothee, (कुत्ती) Bitch.

Koppass, (कपास) Cotton (the Plant).

Koppra, (कपड़ा) Cloth, Dress, Linen.

Kouwa, (ग्र० कहवा) Coffee.

Koy, (कय) Vomit.

Kubb }
Kudd } adv When.

Kurrub (खरब) Million.

Kuttmul (खटमल) Bug.

Kuttsha-sepoy (कच्चा सिपाही), Recruit.

Lama, (ग्र० लम्हा, हि० बँ० लहमा) Moment.

Latee, (लाठी) Staff.

Legga, (?) Sugar.
Limmboa (बिहारी-लिमुआ, बँ० लेबु), Lime.
Loomnee, (लोमड़ी) Fox.
Looth, (लोथ) Caracass.
Madha, (मेदा) Stomach.
Masturr, (अं० मास्ट, पु० मास्तिस, हि० मस्तूल, बं० मास्तुल) Mast.
Meah, (बिहारी और पूर्वी० हि० मेही, बँ० मिहि) Fine.
Meahee, मेंही Fineness.
Meyna, (?) Mouth.
Mittay, मट्ठा, माठा Buttermilk.
Molunngee, ओ० बँ० मलंगी, Saltmaker.
Moolee, (मूली) Radish.
Moolka, (मूल्य का) Precious.
Mungull, (मंगल) Tuesday.
Naal, (नाल) Horse-shoe.
Naal (?) Claw.
Naal (लाल, ग्राम्य बँगला-नाल) Red.
Nalee, ( ग्रा० बँ० नाल ), Redness
Neass (नस), Vein.
Oeer, (?) Wool.
Offeunn (अफियून, अफीम) Opium.
Osh (हि० और पूर्वी बँगला, ओस) Damp—Dew.
Osteh, (आस्ते) Slowly.
Paal, (पाल) Sail.
Paala, (पाला) Tame.
Paalanee, (पढ़ाई) Education.
Paalna, (पढ़ाना) To Educate, To Rear, To Adopt, To Breed, To Tame, To Cherish.
Paarena, (पैरना) To Swim.
Paeear, (पहाड़) Highlander, Mountaineer.
Pagoon, (फागुन), February.
Pagul, (पागुर) Cud.
Pahr, (पहाड़) Mountain, Hill.
Pahreka, Pahree, (पहाड़ का, पहाड़ी) Mountainous.
Pahree-mulook, (पहाड़ी-मुलुक) Highland.
Paia, (पहिया) Wheel.

Parrat, (सं० बँ० पारद) Mercury, Quick-silver.
Peateh, (पेट) Paunch, (?) Womb, Belly.
Peepra, (फेफड़ा) Spleen.
Peer, (फा० पीर) Monday.
Peet, (पित्त) Bile.
Peetah, (पीठ) Back.
Pensh, (पेंच) Screw.
Pessaree, (हि० पसेरी, पन्सेरी7, बँ० पसेरी (रि), पशुरि (री) Five scre.
Petkeerie, (फिटकिरी) Alum.
Ponshiena, (पोंछना) To Wipe, to Absterge.
Puttshunn, (पू. हि. पच्छूँ) West.
Raand, (राँड़), Rhenduee, (रंडी) Widow.
Rendee, (रंडी) Woman.
Ries, (रीछ) Beer.
Rootee, (बँ० रुटि, रुटी) Bread.
Sassa, (शश) Hare
Sawan, (सावन) July.
Soonkh, (सूँघ) Smell.
Soombar, (सोमवार) Monday.
Sulthaar, (सं० सूत्रधार>ग्राम्य. बँ छूतार, छूतोर) Carpenter.
Tamboar, (फा० तनूर>हि० तन्दूर) Oven.
Tanna, (थाना) Station, Small fort.
Tanna, (टानना) To Tug.
Teem, (टेम) Flame.
Thonnee, (हि० थुथनी, बँ० थुतनि, थुथनि थुत्नि) Chin.
Tottha. (बँ० तुँते, बँ० हि० फ० तुतिया) Vitriol.
Tshemtsha, (चमचा, चम्मच) Spoon.
Tsheene, (चीनी) Sugar.
Tshee, (छी) Sneeze.
Tshirrbee, (चर्बी) Tallow, Grease, Suet.
Tshoob, (चुप) Hush.
Tshooma, (बँ० चुमा हि० चुम्मा) Kiss.
Tshowdree, (चौधरी) A principal Landholder.
Tshowdery, Tshowderreyat, (चौधरी, चौधरियत) A Tenure of Land possessed by a principal Land-holder.
Tshowre, (हि० चँवर, बँ० चामर, चमर) An Instrument made of

fine Hair or wool with a Handle, which is used to Keep. Flies from the Victuals.

Tshullee, (चाल) Motion.

Tshuppauna, (छुपावना) To Mussle, to Conceal, to Veil, to Cover, to Suppress, to Hide, to Secrete. Beebeea subbe tshappau jistre quoy ney innekee sooret nuzzer kurrege, Conceal the women in such a manner, that none may see their Countenances.

Tubb (तब) Tudd, (तद) Then.

Tulad, (?) Generation, Offspring, Race, My bala tulad ka hey my Patann, I am of gentle race, I am a Patann. (पठान) ।

Tullep, (तलब) Pay, Wages. Sukkele [बँ० सकल सक्कलि (ले)] nokere ek meynaka tullep de, give one month's wages to all the servants.

Tunksaal, (हि० टकशाल, बँ० टाकशाल, ग्राम्य बँ० टचाँकशाल) Mint.

Tursoo, (बँ तरशु, हि० तरसो) The Second Day after To-morrow.

Vaelahet, (अ० विलायत,) Country.

Unshey, Untshiatee, (ऊँचा, ऊँचाई) Height, Altitude, Loftiness, Eminence. Satunaka वैदिक सं० स्थूणा, हि० थून, फा०–सितून untshiatee mappkurr, Measure the height of the pillar.

Urrzie, (अर्जी) Address, Request.

Wakeef, (वाकिफ) Sagacious, Alert, Skilful, Capable, Adept, Learned, Wise Deliberate. Aleema me mamlet me aur jungme wakeef hey waih waih kissa adme, Ah, what a man ! He is versant in learning, politics, and war.

Winhanie, (पहना नहीं) Naked.

Woodela, (उघेड़) Naked.

डा० शशिभूषणदास गुप्त

# हिन्दी शाक्त-साहित्य

हिन्दी साहित्य का प्रसार अधिकतया उत्तर भारत तथा मध्य भारत ही में है। भारतवर्ष के इस भूमि-भाग में शाक्त धर्म की वैसी कोई प्रधानता किसी भी काल में नहीं बन पड़ी। इसलिये यह स्वाभाविक है कि हिन्दी में शाक्त साहित्य का परिमाण अधिक नहीं है। जो कुछ मिलता है उसका एक बड़ा भाग है लोक साहित्य। इस प्रसंग में एक बात अवश्य विशेष रूप से स्मरण रखने और विचार करने योग्य है। पौराणिक युग से उत्तर प्रदेश में अवस्थित विन्ध्याचल एक अत्यन्त प्रसिद्ध देवी क्षेत्र माना जाता रहा है। पौराणिक साहित्य में बहुत से स्थलों पर देवी का विन्ध्य-वासिनी रूप में वर्णन किया गया है। वर्तमान काल तक यह विन्ध्याचल भारतवर्ष का एक अत्यन्त प्रसिद्ध देवी क्षेत्र माना जाता रहा है। आधुनिक काल में भी विन्ध्याचल में देवी के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। गंगातट के मन्दिर में देवी पूजी जाती है। विन्ध्येश्वरी नाम से पहाड़ की गुफा में उनकी पूजा होती है। अष्टभुजी दुर्गा के रूप में और काली की मूर्ति की पूजा होती है पहाड़ पर किसी वन के जनहीन परिवेश में। पण्डितों का कहना है कि इन तीन रूपों में तीन क्षेत्रों में देवी का अवस्थान ही उनका त्रिकोण-तत्त्व है। वर्तमान काल में भी विन्ध्याचल में देवी के बहुत से पण्डे-पुजारी रहते हैं, पर उनमें वैसा कोई जनप्रिय शाक्त-साहित्य पैदा नहीं हो पाया। हिन्दी में अवश्य 'दुर्गा-चालीसा' तथा 'विन्ध्येश्वरी चालीसा' का प्रचलन है। जिन्हें कोई गृहस्थ लोग नित्य अथवा किसी विशेष उपलक्ष में पाठ किया करते हैं। नमूने के

१. उर्दू में भी 'चालीसा' मिलता है। सौ वर्ष पहले की लाला शंकरलाल द्वारा उर्दू में लिखी हुई 'शक्ति चालीसा' 'कल्याण' पत्रिका के 'शक्ति अंक' में उद्धृत की गई है।

लिये देवीदास रचित 'दुर्गा चालीसा' का उल्लेख किया जा सकता है[२]। प्रायः उसी के समान 'विन्ध्येश्वरी चालीसा' का भी प्रचलन है[३]।

इन सब चालीसाओं के अतिरिक्त विन्ध्येश्वरी के सम्बन्ध में कुछ स्फुट छंद तथा गीत भी मिलते हैं। आह्लाद मिश्र द्वारा संग्रहीत पंडित जगन्नाथ मिश्र का ऐसा एक कवित्त नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

बजत सकारे हैं नगारे अंबिका के द्वारे
सुर नर मुनि आदि हाथ जोड़ हैं खड़े।
पावत न पार विरुदावली को वेद चार,
कहत अहीस आदि विबुद्ध बड़े बड़े।
'जन जगन्नाथ' सीस हाथ रख अभयद,
तव गुणगान ही सों काम उस को पड़े।
काम कोह मद मोह लोभ आदि सुभटों से
साहस का अस्त्र बाँधे वह सर्वथा लड़े॥[४]

---

२. नमो नमो दुर्गे सुख करणी। नमो नमो अम्बे दुःख हरणी॥
निरंकार है ज्योति तुम्हारी। तिहूँ लोक फैली उजियारी॥
शशि लिलाट मुख महा विशाला। नेत्र लाल भृकुटी विकराला॥
रूप मातु को अधिक सुहावे। दरश करत जन अति सुख पावै॥
तुम संसार शक्ति लौ कीना। पालन हेतु अन्न धन दीना॥
अन्नपूरना हुई जगपाला। तुमहीं आदि सुन्दरी बाला॥
प्रलय काल सब नाशन हारी। तुम गौरी शिवशंकर भारी॥
शिव योगी तुम्हरे गुण गावैं। ब्रह्मा विष्णु तुम्हें नित ध्यावैं॥ इत्यादि
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, कलकत्ता।

३. जय जय जय विन्ध्याचल रानी। आदि शक्ति जग-विदित भवानी॥
सिह वाहनी जै जगमाता। जै जै जै त्रिभुवन सुखदाता॥
कष्ट निवारनि जै जगदेवी। जै जै जै (ति) असुर सुर सेवी॥
महिमा अमित अपार तुम्हारी। शेष सहसमुख वर्णत हारी॥
दीनन को दुख हरत भवानी। नहिं देख्यो तुम सम कोउ दानी॥
सब कर मनसा पुरवत माता। महिमा अमित भक्त विख्याता॥ इत्यादि
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, कलकत्ता।

४. जगन्नाथ मिश्र का और भी एक गान है—

दानव दलनि आगमन नभ में विलोक
जोगिनी जमात साथ में ते अगवानी है।
खप्पर खरग अरु विसिख सरासन लै
दनुज दलनि सुर नर सुखदानी है॥
विधि हरि हर कर जोड़े सानुराग खड़े
जय जय नाद में निमग्न सब वाणी है।
विंध्य पर बासी विंध्यवासिनि विभा भवन
ज्योति है अखंड जहाँ राजति भवानी है॥

विन्ध्याचलवासिनी के बारे में इस प्रकार का एक लोकगीत भी है। ऐसे गीत देवी के 'जस' कहलाते हैं:—

गये पर्वत भवन तेरा माँ नीचे गंग बहाई,
विन्ध्याचल माई ओहो विन्ध्याचल माई।
नंद गोप घर जन्म लियौ है मथुरा में प्रगटाई।
कंस राज जब पटकन लागा छुट आकाश सो जाई, शब्द सुनाई ।।

... ... ... ...

हाथ जोड़ कर करूँ बीनती, बीनती सुन साँवल माँई
सुमर चरन ध्यानू जस गावे हम बालक तुम माई, कला संवाई ।।[५]

विन्ध्याचलवासिनी के सम्बन्ध में मैथिल कवि हर्षनाथ झा रचित एक गीत भी पाया जाता है।[६]

मध्य युग के प्रसिद्ध हिन्दी कवियों में से केवल गोस्वामी तुलसीदास जी की साहित्य रचना में शाक्त पृष्ठ भूमि दिखाई देती है। 'रामचरित मानस' ही तुलसीदास जी की सर्वश्रेष्ठ रचना है और रामभक्त के रूप ही में तुलसीदास सर्वजन विदित हैं। परन्तु लक्ष्य करने की बात यह है कि 'रामचरित मानस' के वक्ता हैं स्वयं शंकर और परमोत्सुक श्रोता हैं स्वयं भवानी उमा। यह नहीं कि ये केवल वक्ता और श्रोता ही थे, अपितु समूचे 'रामचरित मानस' में इसी बात को सबसे महत्व दिया गया है कि शंकर तथा भवानी ही श्री रामचन्द्र के सबसे बड़े भक्त हैं और मर्त्यलोक म रामभक्ति के प्रचारक भी वे ही हैं। तुलसीदास ने कहा है कि रामचरित ऐसी सुन्दर कृति को स्वयं शिवजी ने रचा, फिर कृपा करके पार्वती जी को सुनाया।

संभु कीन्ह यह चरित सोहावा।
बहुरि कृपाकरि उमहिँ सुनावा ।। (बालकाण्ड)

महेश ने रामचरित को रचकर अपने 'मानस' में रखा था और सुअवसर पाकर पार्वती से कहा था।

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सु समउ सिवासन भाषा ।। (वही)

रामचरित के बारे में भवानी को अपार कौतूहल तथा अनुसंधित्सा रहन के कारण उन्होंने जिस प्रकार बारी बारी से प्रश्न किया था, शंकर ने भी उसी प्रकार विस्तार से उसका उत्तर कहा था:—

---

५. डॉ० सत्येन्द्र के संग्रह से।
६. जय जय विन्ध्य निवासिनि तनुरुचि निंदित दामिनि ।।
आनन शशधर मंडल तीनि नयन श्रुतिकुंडल ।।
कनक कुशेशय आसन वसय निकट पंचानन ।।

कीन्ह प्रश्न जेहि भाँति भवानी ।
जेहि बिधि संकर कहा बखानी ।। इत्यादि (वही)

दूसरी तरफ हम देखते हैं कि शिव-पार्वती के परम भक्त थे स्वयं रामचन्द्र । वास्तव में ऐसा जान पड़ता है कि तुलसीदास ने जिस समाज में नए सिरे से रामभक्ति का प्रचार किया था, उसी समाज के अन्दर उन्होंने एक प्रबल शैव-शाक्त मत उपलब्ध किया होगा और शिव-पार्वती के भक्तों में रामभक्ति को सहज ग्राह्य करने के लिये तुलसीदास ने उमा-महेश्वर को ही रामभक्त बनाया था। किन्तु केवल उमा-महेश्वर को रामभक्त बनाने के कारण शैव-शाक्त जन समुदाय में कोई क्षोभ न हो, इसी चिन्ता से कवि ने फिर समन्वय साधन के लिये रामचन्द्र को भी उमा-महेश्वर का भक्त बना लिया था ।

तुलसीदास की धर्म तथा साहित्य-साधना की केन्द्रभूमि थी काशी, जो कि तुलसीदास के आविर्भाव के बहुत पहले से ही शिव और अन्नपूर्णा के धाम के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी । दूसरा प्रसिद्ध देवी क्षेत्र विन्ध्याचल भी काशी से अधिक दूर नहीं, अस्सी मील के लगभग होगा । इसलिये इस भूमिभाग के लोक-मानस के विभिन्न स्तरों में पार्वती-महेश्वर का प्रभाव होना स्वाभाविक था और उसी प्रभाव का परिचय 'रामचरित मानस' में जहाँ-तहाँ बिखरा हुआ है । स्वयं कवि ने कहा है :—

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ ।
बरनउँ राम चरित चितचाऊ ।। (बालकाण्ड)

'शिवा और शिव का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चाव भरे चित्त से रामचरित का वर्णन करता हूँ ।'

सपनेहु साँचेहु मोहि पर जौ हर गौरि पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ।। (वही)

'यदि मुझ पर हर-गौरी की स्वप्न में भी सचमुच प्रसन्नता हो तो मैंने भाषा कविता का जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो ।'

अन्यत्र भी हम देखते हैं कि तुलसीदास ने राम-महिमा का गान गाया है 'सुमिरि उमा वृषकेतु ।' तुलसीदास के एक दूसरे कथन से जाना जाता है कि उन दिनों गिरिनन्दिनी के प्रति साधु-संतों को कितनी श्रद्धा थी—'साधु विबुध कुल हित गिरि नंदिनि ।' अन्यत्र कवि ने कहा है—हर-गिरिजा ने कलियुग को देखकर जगत के हित के लिये शाबर मन्त्र समूह की रचना की ।'[७] इन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं, जिनका न कोई ठीक अर्थ होता

७. कलि बिलोक जगहित हर गिरिजा ।
साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा ।। (बालकाण्ड)
शंख चक्र निरभय वर कर धरु शशधर शेखर ।।
तुअ पद पंकज मधुकर हर्षनाथ भन कविवर ।।
अमरनाथ झा द्वारा प्रकाशित हर्षकाव्य ग्रन्थावली ।

है और न जप ही होता है। इससे पता चलता है कि तुलसीदास के समकालीन समाज में हर-गिरिजा को अवलंबन कर बहुत से शाबर-मंत्रों का प्रचलन था।

'रामचरित मानस' में हम देखते हैं कि पहले से ही हर के राम भक्त होने पर भी राम के बारे में देवी को बहुत कुछ संशय था और हर ने नाना प्रकार से देवी के इस सन्देह को मिटाने की चेष्टा की थी। किसी एक उपाख्यान में है कि एक दिन हर ने सीता-विरह-कातर रामचन्द्र को वन में देखकर 'जय सच्चिदानन्द जगपावन' कह कर प्रणाम किया। फिर अपने मार्ग पर चल पड़े; उनके साथ सती थीं।

सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा सन्देह बिसेखी॥

तब शिव को तरह तरह से रामचरित का वर्णन और व्याख्या करके देवी का भ्रम मिटाना पड़ा। इससे प्रतीत होता है कि उस काल के शैव लोगों ने रामभक्ति को तुरन्त ही अपनाया था, पर शाक्त लोगों पर तब तक वैसा प्रभाव नहीं पड़ पाया था। इस प्रसंग में तुलसीदास ने सती का अवलम्बन कर संक्षेप में दक्ष-यज्ञ और सती का शरीर-त्याग वर्णित करके फिर कुछ विस्तार से हिमालय और मेनका की कन्या—रूपिणी पार्वती का जन्म, शिव के लिये उनकी तपस्या और अन्त में पार्वती-परमेश्वर का विवाह इत्यादि का वर्णन किया। यह वर्णन सामान्यतः कवि कालिदास के कुमारसंभव के वर्णन का अनुयायी है। कभी कभी तुलसीदास के पद मूल संस्कृत श्लोकों से इतने मिलते-जुलते हैं कि देखने से ही जान पड़ता है कि कालिदास के काव्य से तुलसीदास का प्रत्यक्ष परिचय था। शिव के लिये पार्वती की तपस्या और उनके विवाह के विषय को लेकर तुलसीदास ने एक पृथक् काव्य रचा था जिसका नाम है 'पार्बती मंगल'। इस काव्य में 'रामचरित मानस' की अपेक्षा कुछ विस्तृत वर्णन मिलता है और विषय वस्तु की दृष्टि से भी थोड़ा सा अन्तर पाया जाता है। पार्वती विवाह के वर्णन में तुलसीदास ने स्वभावतः ही बहुत कुछ अपने समाज का ही चित्र खींचा। पार्वती की तपस्या का कारण देते हुए उन्होंने थोड़ी लौकिकता का भी परिचय दिया। 'कुमारसंभव' में है कि 'एकदा स्वेच्छागति नारद पिता के पास उस कन्या को देखकर बोले—'विशुद्ध प्रेमयुक्ता यह कन्या महादेव की अर्द्धांगिभागिनी वधू (सपत्नी विहीन भार्या) होगी।' 'रामचरित मानस' में हम देखते हैं कि एक दिन देवर्षि नारद हिमाचल के घर पधारे तो पर्वतराज और मेनका ने पुत्री उमा को बुलाया। उमा ने पर्वतराज और मेनका के कहने से देवर्षि के चरणों पर सिर नवाया। माता-पिता ने कन्या के दोष गुण के बारे में मुनि से प्रश्न पूछा। पहले गुणों की बातें कह कर नारद नें फिर उमा की हस्तरेखा विचार कर दो-चार अवगुण भी कहे :—

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

इन 'अवगुणों' को मिटाने के लिए नारद ने तपस्या का उपदेश दिया। उमा माता को बहुत तरह से समझाकर तप करने के लिए चलीं। "पार्वती मंगल" में भी तदनुरूप

वर्णन है। नारद ने कहा—"मोरेहुं मन अस आव, मिलिहि वर बाउर।" नारद की यह बात सुनकर उमा आप ही माता-पिता को समझाकर तपस्या के लिए चल पड़ीं।

हर-पार्वती के विवाह के अवसर पर बंगाली कवियों ने मेनका और उनकी पड़ोसिनों के मुंह से 'अशुभ' नारद को अच्छी तरह भला बुरा सुनवा दिया है, इस विषय में तुलसीदास ने भी कसर नहीं छोड़ी। वर को देखकर मेनका पार्वती को गोद में बैठाकर अपने 'श्याम सरोज' नेत्रों में आँसू भरकर कन्या के ललाट के दुःख का स्मरण करके बहुत रोईं, फिर बोलीं—

तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महँ परौं।
घर जाउ अपजसु होउ जग जीवन बिवाह न हौं करौं॥

इसी के बाद उन्होंने नारद को गाली दी—

नारद कर मैं काह बिगारा। भवन मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहिं जिन्ह दीन्हा। बौरे वरहि लागि तपु कीन्हा॥
साँचेहुं उन्हके मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव की पीरा॥

'पार्वती मंगल' में हम देखते हैं कि बावले वर और उनके बरातियों को देखकर गाँव के बच्चे बहुत ही डर के मारे भागकर घर में घुस गए और कहने लगे—

प्रेत बैताल बराती भूत भयानक। बरद चढ़ा वर बाउर सबइ सुबानक॥

विवाह के अवसर पर भी स्त्रियों के मुंह से कुछ गाली-गलौज की व्यवस्था किए बिना तुलसीदास नहीं रह सके। पाक-शास्त्र में जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँति की ज्यौनार हुई। बराती लोग भोजन के लिए बुलाए गए। जब वे बड़े चाव से भोजन कर रहे थे, तब "नारि-वृन्द सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारी मृदु बानी।" और "गारी मधुर सुर देहिं सुन्दरि व्यंगवचन सुनावहीं।" 'पार्वती मंगल' में स्त्रियों ने न केवल बरातियों के भोजन करते समय परन्तु जुआ खेलते समय भी उनको गालियाँ दी थीं—"जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं।" माँ-बाप का नाम पुकार कर शिवजी को गाली देने से क्या फायदा क्योंकि उनके बाप-माँ तो हैं ही नहीं—"अपनी ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि।"

विवाह के अनन्तर माँ से पार्वती द्वारा बिदा माँगे जाने का चित्र तुलसीदास ने भी बहुत करुणा-पूर्ण बनाया है। बिदा लेने के पहले उमा बार-बार अपनी माता जी के हृदय से जा लिपटती हैं और उनके चरणों को पकड़ कर गिर पड़ती हैं। वात्सल्य-प्रेम का वह चित्र वर्णन में नहीं आ सकता। उमा सब स्त्रियों से मिल-भेंटकर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

पर उमा को चलना ही पड़ता है। वे फिर माता से मिलकर चलतीं, सब कोई उन्हें आशीर्वाद देती हैं। उमा फिर-फिर कर माता की ओर देखती जाती हैं, तो सखियाँ उन्हें शिवजी के पास ले जाती हैं।

जननी बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दई ।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखी लै सिव पहँ गई ।।

मैथिल लोकगीतों में जैसे हम देखते हैं कि सीता ने देवी-पूजा की सहायता से ही रामचन्द्र जैसा वर पाया था तुलसीदास में भी हम वही देखते हैं। राम लक्ष्मण दोनों भाई मिथिला में पहुँच गये। फिर सवेरे जाग कर गुरु की आज्ञा पाकर उन्होंने फूल लेंने को राजा के सुन्दर बगीचे में प्रवेश किया। वहाँ तरह तरह के अनेक वृक्ष लगे हैं, रंग-बिरंगी उत्तम लताओं के मण्डप छाये हुए हैं। वृक्षों पर नये नये पत्तों, फलों और फूलों की शोभा है। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं और मोर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं। बाग के बीचोंबीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियों की सीढ़ियाँ विचित्र ढंग से बनी हैं। उसके निर्मल जल में अनेक रंगों के कमल खिले हुए हैं, जल के पक्षी कलरव कर रहे हैं। बाग और सरोवर को देखकर दोनों भाई हर्षित हुए। मालियों से पूछ कर वे प्रसन्न मन से पत्र-पुष्प लेने लगे। उसी समय सीताजी वहाँ आईं। माता जी ने उन्हें गौरी की पूजा करने के लिए भेजा था।

संग सखी सब सुभग सयानी । गावहिँ गीत मनोहर बानी ।।
सर समीप गिरिजागृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मन मोहा ।।
मज्जन करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदितमन गौरि निकेता ।।
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग वर माँगा ।।

गौरी पूजा और वर माँगने के अनन्तर सीता ने बाग में राम लक्ष्मण को देख पाया, जिससे उनका शरीर बिह्वल हो गया, आँखों में आँसू आ गए।

ब्रजभूमि में लौकिक देवियों के जो गीत मिलते हैं, उनमें भी गौरी देवी से सीता के वर माँगने की प्रति-ध्वनि सुनाई पड़ती है। ऐसे एक गीत में लड़कियों के "करवा चौथि" व्रत करने का वर्णन है। कार्तिक महीने की कृष्णा चतुर्थी ही "करवा चौथि" है और इस तिथि में लड़कियाँ गौरी-व्रत किया करती हैं। आलोच्य गीत में हम देखते हैं कि लड़कियाँ गौरी-व्रत किया करती हैं। आलोच्य गीत में हम देखते हैं कि लड़कियाँ गौरी-ब्रत कर रही हैं दधि के अर्घ्य से, और वे वर माँग रही हैं—अयोध्या जैसा राज्य, दशरथ जैसे ससुर, कौशल्या जैसी सास, रामचन्द्र जैसे पति, लक्ष्मण के समान छोटा देवर, भरत के समान बड़ा देवर और छोटी बहिन जैसी एक ननद।

में तौ बरतु रही ऊँ करवा-चौथि, दहीन के अरघ दीए ।।
मैंनें मांगौ ऐ अजुध्या कौ राजु, सुसर राजा दसरथ से ।।
मैंनें माँगी कौसल्या सी सासु, सुसर राजा जसरथ से ।।

मैंने वर मांगे ऐं सिरिराँम, दिवर छोटे लछिमँन से ।।
मेरे चरन भरत देवर जेठ, ननँद छोटी भगिनी सी ।।[८]

तुलसीदास की अन्यान्य रचनाओं में भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि वे अपने सामाजिक जीवन से एक शाक्त ऐतिह्य के भी अधिकारी हो चुके थे। उनकी 'विनय पत्रिका' में ऐसी दो देवी-स्तुतियाँ मिलती हैं जिनमें से एक इसप्रकार है—

दुसह—दोष—दुख—दलनि करु देवि ! दाया।
विश्वमूलासि, जन–सानुकूलासि, शर-शूल-धारिणी, महामूल माया।।
तड़ित गर्भांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पट, भव्य भूषण विराजैं।
बाल मृग मंजु–खंजन–विलोचनि, चन्द्र बदनि, लखि कोटि रति मार लाजैं।।

इस स्तुति के अंत भाग में ऐसी प्रार्थना माँगी गई है—"देहि मा ! मोहि प्रण प्रेम, यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा।" इस प्रसंग में यह बात स्मरण रखने की है कि भागवत-पुराण में भी व्रज की गोप-बालिकाओं ने कृष्ण लाभ के लिये कात्यायनी की पूजा की थी। भारतीय धर्मसाधना में यह एक विचित्र धारा दिखाई पड़ती है कि शक्ति की उपासना ही से पुरुषोत्तम का प्रेम पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद इसी चिन्ता धारा से प्रेरित होकर दुर्गा की गोद में कृष्ण को बिठाने का चित्र खींचा गया है। माँ है शक्तिरूपिणी, और उन्हीं के हृदय से होता है पुरुषोत्तम का उद्‌भास !

'विनय पत्रिका' का दूसरा देवी-स्तोत्र इस प्रकार है—

जय जय जगजननि, देवि, सुर-नर-मुनि-असुर सेवि,
भक्ति-मुक्ति-दायिनी, भय हरनि, कालिका।।
मंगल-मुद-सिद्धि सदनि, पर्व-शर्वरीश-बदनि।
ताप-तिमिर-तरुण तरणि-किरण मालिका।। इत्यादि।

यहाँ पर भी अन्तिम प्रार्थना वही है—

तुलसी तब तीर तीर सुमिरत रघुवंश वीर।
विचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका।।

तुलसीदास की लिखी हुई 'कवितावली' में भी देवी-सम्बन्धी चार कविताएँ (पद) मिलती हैं। उनमें से एक में माँ भवानी से करुण आर्ति प्रकट हुई है। लालच की ओर नहीं होती, लालच के मारे दर दर भटकना पड़ता है दीन दुःखी की तरह, बदन मलीन है, मन की आकांक्षा नहीं जाती। श्राद्ध और विवाह के भोजन ही में ताकत होती है, मन सदैव चंचल होता है, सुनाई पड़ती है केवल ढोल और तुरही की आवाज। प्यास तो है पर पानी कहाँ, भूख है पर चना कहाँ, अब केवल भवानी अन्नपूर्णा की शरण लेनी चाहिये[९]। उत्तर काण्ड की १६८ संख्यक कविता (पद) का लक्ष्य है भवानी—

---

८. डॉ० सत्येन्द्र सम्पादित ब्रज का लोकसाहित्य।

९. लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन, बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।

'मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए ।' १७३ से पद में है—

रचत बिरंचि, हरि पालन, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग अगजग पालिके ।
तोहि में विकास विस्व, तोहि में विलास सब,
तोहि में समान मातु भूमिधर बालिके ।।
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुणा तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके ।
रोष महामारी परितोष, महतारी ! दुनी,
देखिये दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ।।

दूसरे एक पद में तुलसीदास जी कहते हैं—"महामारी महेशानि, महिमा की स्वानि, मोद मंगल की रासि, दास कासी वासी तेरे हैं ।" (१७४ सं०) ।

तुलसी के इस उल्लेख के साथ एक 'जानकी विजय' नाम की पोथी की ओर भी ध्यान जाता है । यह पोथी प्रकाशित नहीं हुई है । इसकी शैली को देखकर तो एक महानुभाव को प्रतीत हुआ कि संभवतः यह भी तुलसीदास की ही कृति है । यह पूर्णतः 'शाक्त' भावना से ओत प्रोत है । रावण के संहार के उपरांत जानकी जी ने कहा कि यह कोई बड़ी बात नहीं हुई, अभी तो सहस्रमुखी रावण पलंका में है । तब लक्ष्मण-राम आदि सभी उसे मारने गये, पर असफल रहे, अन्त में स्वयं जानकी जी युद्ध में प्रवृत्त हुईं और उन्होंने उस महारावण को मारा । यही कथा एकलोक-गीत में भी है । लोक-गीत में यहाँ से आगे यह और है कि उसे मारकर देवी जानकी राम को छोड़ कलकत्ते गयीं और वहाँ 'काली' के रूप में प्रतिष्ठित हो गयीं । 'जानकी विजय' की एक सीता स्तुति यों है—

जय जै जग स्वामिनि सीय सती ।
अतिचिन्त अगोचर ज्ञान गती ।।
परमादि अनन्य अनन्द मई ।
थिति पालति लै जग जो करई ।।
मन इन्द्रिय तत्व गुनातम तू ।
बहु रूप रहै परमातम तू ।।
तुम्हरे बल में विधि सृष्टि कृता ।
सम रक्षक विष्णु महेस हता ।।
तुम्हरे बल सेस धरै धरनी ।
तुम्हारे बल तेज तपै तरनी ।।
तुम्हरे बल बारि प्रवाह लहा ।
खल जुद्ध विनासन घोर महा ।।

यह स्तुति 'जानकी विजय' में देवताओं ने की है ।

इधर आज के एक प्रसिद्ध हिन्दी-कवि ने 'उर्मिला' में फिर सीता को शक्ति-रूप में देखा है। विभीषण ने लंका-विजय का श्रेय सीता को दिया है और एक प्रकार से स्तुति करते हुए वे कहते हैं:—

त्वम् धन्यासि अहो जगदम्बे,
जनक सुते, वरदे, सीते,
हे अनिंगिते, अग्नि-शिखे, हे,
राम धनुर्धर-परिणीते,
निष्ठा-पथ-दर्शिके, दीपिके,
रामेन्द्रिय - पति - मनोरमे,
राम - युद्ध - दुर्धर्षनोदने,
प्रतिहिंसे, हे सदा क्षमे,
× ×
रामचन्द्र की विजय नहीं है—
कुछ भी, तव जय के आगे ॥
तुमने तो लंका जीती है।
जननि, अकेले ही आके ॥ आदि

निर्गुणपंथी हिन्दी कवियों की रचनाओं में प्रत्यक्ष रूप से शाक्त प्रभाव का होना स्वाभाविक नहीं है। कबीर के दोहों, पदों और रमैनियों में धर्ममत की उदारता होने पर भी शाक्त धर्म के बारे में कुछ अश्रद्धा का भाव देख पड़ता है। कदाचित् शाक्तों की साधन-पद्धति तथा आचार-अनुष्ठान उन्हें पसन्द नहीं था, जिससे उन्होंने बहुत स्थलों पर साधक के लिये शाक्त-संसर्ग न करने की आज्ञा दी है। कबीर की दृष्टि में हिन्दू धर्म की बहुत सी अन्य देव-देवियों की तरह ही दुर्गा जैसी शक्ति या देवी अत्यन्त मामूली थी। इसीलिये एकाधिक स्थलों पर कबीर का यह कथन मिलता है—'दुर्गा कोटि जा के (राम) मर्दन करें।" अन्यत्र कबीर ने कहा है—"कोटि सकति सिव सहज प्रगास्यो एकै एक समाना।"[१०]

किन्तु परोक्ष रूप से कबीर पर भी शाक्त भाव-धारा का प्रभाव बिलकुल दुर्लक्ष्य नहीं है। कबीर के नाम से प्रचलित एक वाणी है—"निर्गुण है पिता हमारा सगुण महतारी"[११] असल में यह बात शक्तिवाद ही का मूलमंत्र है। श्री रामकृष्ण परमहंस का कहना है कि शक्ति है अचल का 'चल' या अटल का 'टल'। अचल अटल ही निर्गुण है, जिसकी सगुण अवस्था है 'चल' या 'टल'। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है—"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे, मूर्तं चामूर्तं च।" यह अमूर्त ही निर्गुण है, और मूर्त है सगुण। सगुण रूप ही में है माता की मूर्ति, जिससे हम "जात" हुए हैं, जिसमें हम पाले जाते हैं—

१०. कबीर ग्रन्थावली, परिशिष्ट १६२
११. कबीर के नाम से उद्धृत होने पर भी यह पद कबीर ग्रंथावली में नहीं मिलता।

विधृत हैं। वास्तव में सगुण ही माता है। इस दृष्टि से कबीर की वह वाणी बहुत ही सारगर्भित है।

कबीर ने अपनी रचनाओं के बहुत से स्थलों पर 'माया' का उल्लेख किया है। साधारणतया यह माया जगत्-प्रपंच में मोह उत्पन्न करने वाला भ्रम मात्र है। कबीर ने इस माया की विश्वव्यापिनी आदिशक्ति को सामान्यता स्वीकार नहीं किया, जहाँ माया की विश्वव्याकता का वर्णन है वहाँ भी उसके विश्वव्यापी शक्तिरूपत्व का आभास स्पष्ट नहीं है। जैसे—

माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सब ही लोग।
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहुँ पासि॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार॥[१२]

अथवा

माया महाठगिनी हम जानि।
निरगुन पाश लिये कर डोलै बोलत मधुरी वाणी॥ इत्यादि।

किन्तु स्थान-स्थान पर इस माया के वर्णनों में परोक्षरूप से माया की मोहमयी भ्रान्तरूपिता के पश्चात् सांख्य-वर्णित प्रकृतिरूप अथवा शक्तिशास्त्र-वर्णित शक्ति-रूप का द्योतन पाया जाता है। कबीर के ऐसे बहुत से पद हैं जो कि 'सन्धा भाषा' में रचे गये। ये पद साधारणतया 'उलट बाँसियाँ' नाम से अभिहित हैं। इन पदों का वक्तव्य यह है कि दुनियाँ में सर्वत्र ही एक आश्चर्यजनक विपरीत घटना दिखाई पड़ती हैं। 'असंभव' 'संभव' होता है। जीव अपना 'सहज' स्वरूप भूलकर सदैव माया के वशीभूत होकर बंधन क्लेश भोग रहा है। ब्रह्म की शरण न लेकर वह माया की शरण लेता है और उसके हाथ की पुतली बन जाता है। कबीर ने अनेक स्थलों पर इस माया को मोहिनी और चंचल नारी के रूप में चित्रित किया जो कि असावधान उदासीन पुरुष को नाना प्रलोभनों में फँसाकर उसे बंधन में डाल रही है। कबीर ने एक पद में कहा है—

कैसें नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष विचवन नारी।

जीव को 'चंचल पुरुष' और माया को 'विचक्षण नारी' कहना—इप पर परोक्षरूप से सांख्य शास्त्र के प्रकृति पुरुषतत्त्व का जो प्रभाव है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक 'रमैंणी' में कबीर कहते हैं—

---

ताकत सराध कै बिबाह के उछाह कछू, डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना।
प्यासे हू न पावै वारि, भूखे न चनक चारि, चाहत अहार न पहार रारि कूरना।
... ... ... ... ...।
सोक को अगार दुख भार-भरो तौलों जन जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूर्णा॥
उत्तरकाण्ड, १४८

१२. पदावली सं ८४, कबीर ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा।

कहन सुनन कौं जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहूं न चीन्हां ।।
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, आपण मांझै आप छिपाया ।।[13]

अतः हम देखते हैं कि परब्रह्म राम ने स्वयं ही सत, रज, तम से त्रिगुणात्मिका माया को रच कर जगत् को भुला कर अपने में अपने को छिपाये रखने का प्रबन्ध किया है। इसलिए आन्तरिक आकुलता न होने पर जीव कभी माया का अतिक्रमण कर उन तक पहुँच नहीं सकता। फिर देखिये—

सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै बिषम तेरी माया ।।
साखा तीनि, पत्रजुग चारी, फल दोइ पाप पुंनि अधिकारी ।।

... ... ... ...

कहन सुनन कौं कीह्न जग, आपै आप भुलाँन ।।
जिनि नटवै नटसारी साजी, जो खेलै सो दीसै बाजी ।।

जो त्रिगुणात्मिका माया हैं, वे ही तीन शाखाएँ हैं। चारों युगों को व्यापकर जगत् प्रपंच रूप में उसी त्रिगुणात्मिका माया का प्रकटन होता है। फिर देखिये—

एक बिनाँनी रच्या बिनाँन, सब अयाँन जो आपै जाँन ।।
सत रज तम थैं कीन्ही माया, चारिखाँनि बिस्तार उपाया ।।

समग्र विश्वसृष्टि ही जैसे एक निपुण बुननेवाले का बुना हुआ जाल है। और सत्त्व-रज-तम से जिस माया की सृष्टि हुई है, वही चारों युगों में इस 'बुनाई' को फैला रही है। कबीर के इस प्रकार के पदों से जान पड़ता है कि पौराणिक काल में सांख्य की पुरुष-प्रकृति, वेदान्त की ब्रह्म-माया और तंत्र की शिव-शक्ति को लेकर जो समन्वय-भाव दिखाई पड़ा, उस समन्वय का शक्तितत्त्व सामाजिक उत्तराधिकार के रूप में कबीर तक आ पहुँचा। इसलिए माया-वर्णन में कबीर के कविमानस की पृष्ठभूमि पर कभी-कभी माया की आदि-शक्तिरूपता का आभास मिलता है। कबीर ने एक जगह स्पष्ट कहा है—

दुनिया दुह करि जानै अंग ।
माया ब्रह्म रमै सब संग ।।[14]

कबीर तथा मध्यकालीन सगुणपन्थी या निर्गुणपन्थी सभी साधकों पर तंत्रोक्त नाद-विन्दु तत्त्व का गम्भीर प्रभाव देखा जाता है। यह नाद साधन योग ही से मध्यकालीन साधक सम्प्रदायों में फैला हुआ था। हम समस्त साधक सम्प्रदायों के पदों और गीतों ही में अनाहत-नाद का प्रसंग देख सकते हैं। जब समस्त इन्द्रियाँ बाह्यविषयों से हटकर चित्त में समाहित होती हैं एवं श्वास प्रवाह के साथ चित्तप्रवाह भी निरुद्ध होता है, तभी अन्तर्लोक में इस अनाहत-नाद का स्फुरण होता है। इसी अनाहत नाद को अवलंबन कर हमें ध्रुव-विन्दु में पहुँचना है। गुरुनानक और दूसरे सिक्ख गुरुओं के पदों में भी नाना प्रकार

१३. कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा।
१४. कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ३०३।

से इस नाद का उल्लेख पाया जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तन्त्र में यह नाद ही शक्ति है और बिन्दु है शिव। कबीर जैसे प्रमुख साधकों का शब्दतत्त्व इस नाद-तत्त्व का ही नामान्तर मात्र है।

पहले ही कह आये हैं कि शाक्त सम्प्रदाय के प्रति कबीर का एक प्रतिकूल मनोभाव रहा है। परन्तु रामप्रसाद-रामकृष्ण-अरविन्द जैसे सच्चे मातृसाधकों का मत और साधना विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि शाक्त कोई सम्प्रदाय नहीं है, शाक्त सिर्फ एक भाव है। श्री रामकृष्ण का कहना है कि निराकार निर्गुण का घर बहुत ही ऊँचा है, जहाँ मन को ज्यादा देर तक नहीं रखा जाता। इसीलिए उनमें सन्तान भाव दिखाई पड़ा। हम आश्चर्य से लक्ष्य करते हैं कि कबीर में भी यह सन्तान भाव एकाधबार मिलता है। ऐसा एक सुन्दर पद इस प्रकार है—

हरि जननीं मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुंण बकसहु मेरा ।।
सुत अपराध करै दिन केते, जननीं कै चित रहैं न तेते।
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।।
कहै कबीर एक बुद्धि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।[15]

कबीर के पदों में हम माया-सम्बन्धी जो आलोचना देखते हैं, दादू में भी तदनुरूप वर्णन देखा जाता है। वरन् माया ही शक्ति है। यह बात दादू के एकाध पद में कबीर से और भी स्पष्ट रूप में पायी जाती है। इस प्रसंग में दादू का यह पद विशेषरूप से उल्लेखनीय है—

माया आगैं जीव सब ठाढ़ रहे कर जोड़ि।
जिन सिरजे जल बूँदसौं तासौं वइठे तोड़ि ।।
सुर नर मुनियर बसि किये ब्रह्मा विश्न महेस।
सकल लोक के सिर खड़ी साधु के पग देस ।।
माया चेरी संत की दासी अस दरबार।
ठकुराणी सब जगत् की तीनउँ लोक मंझार ।।
माया दासी संत की साकत की सिरताज।
साकत सेंती भांडनी संतों सेती लाज ।।
सकल भुवन भानै घनै चतुर चलावणहार।
दादू सो सूझै नहीं जिसका वार न पार ।।
माया मैली गुणमई धरि धरि उज्ज्वल नांव।
दादू मोहै सबहिँ को सूर नर सब ही ठांव ।।[16]

---

१५. वही, पदावली सं० १११।
१६. पण्डित श्री क्षितिमोहन सेन सम्पादित 'दादू'।

इस पद पर ध्यान देने से पता चलेगा कि दादू के ख्याल में शाक्तों को असली सृष्टिकर्त्ता का सन्धान नहीं मिला, वे माया को ही शक्ति रूप में सारसत्य समझकर भ्रम में डाले गए थे। परवर्ती काल के संत कवि दरिया साहब के अनेक पदों में भी हम माया के बारे में इस प्रकार का वर्णन देख पाते हैं।[१७] दादू की रचनाओं में और भी एक तथ्य का आभास मिलता है। नीचे देखिए उनका एक गीत—

अज्ञा अपरं पार की बसि अम्बर भरतार।
हरे पटंबर पहिरि करि धरती करै सिंगार।।
बसुधा सब फूलै फलै पिरथि अनन्त अपार।
गगन गरजि जल थल भरै दादू जयजयकार।।

इस वर्णन से जान पड़ता है कि दादू के चित्त में एक पुराने ऐतिह्य का प्रभाव रहा। असीम अनन्त अज्ञात भर्त्ता के लिए विश्व-प्रकृति का जो प्रेम-प्रसाधन है उसमें सांख्य और तंत्र का एक मनोहर मेल हुआ है। परवर्ती काल के सांख्य-वादियों में ऐसी एक धारणा बन पड़ी थी कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति जितने काम करती है, वे सब पुरुष के संतोष के लिए हैं। तंत्रवादी भी कहते हैं कि शिव की कामनापूर्ति के लिए ही शक्ति कामेश्वरी है। इन सब पदों में इन भाव धाराओं ने मिलजुल कर मनोहर कवित्वमय रूप ग्रहण किया।

नाद या शब्द के बारे में भी दादू के बहुत से पद हैं। कम्पनात्मक नाद ही सृष्टयात्मक आदि स्पन्दन है। इसी तरह नाद तंत्रशास्त्र की शक्ति रूप में दिखाई पड़ी। दादू के बहुत से पदों में नाद यानें शब्द का यह सृष्ट्यात्मक आदि स्पन्दन रूप बड़े चमत्कारी ढंग से प्रकट हुआ। शब्द के बारे में दादू का यह एक पद है—

ज्ञान लहरी जहँ तें उठै वाणी का परकास।
अनभव जहँ तें उपजै सबद किया निवास।।
जहँ तन मन का मूल है उपजै ओंकार।
तहँ दादू निधि पाइये निरंतर निराधार।।[१८]

चिद्-वृत्ति की सक्रियता है ज्ञान में और वहीं पर है वाणी यानें शब्द का मध्यमा वैखरी रूप। जहाँ ज्ञान नहीं है, सिर्फ़ अनुभव है, वहीं है नाद या शब्द। और आदि नाद या शब्द को ही ओंकार कहते हैं। अन्यत्र दादू ने कहा है—

सबदें बन्धा सब रहै सबदैं ही सब जाइ।
सबदैं ही सब उपजै सबदैं सबै समाइ।।[१९]

जैसे मध्यकालीन बंगला साहित्य में, वैसे मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भी एक बड़ा भाग है वैष्णव-कविता। बंगला वैष्णव-कविता की तरह हिन्दी वैष्णव-साहित्य भी

---

१७. देखिए धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री लिखित 'संतकवि दरिया-एक अध्यन'।
१८. दादू, पण्डित क्षितिमोहन सेन।
१९. वही, प्रश्नोत्तरी।

कृष्णलीला को लेकर रचा गया है। पर बंगाल की कृष्णलीला में राधा को जैसी प्रधानता दी गई है, यद्यपि हिन्दी साहित्य में वैसी प्रधानता नहीं दी गयी फिर भी हिन्दी में भी राधा को एक मुख्य स्थान मिला हुआ है। वस्तुतः यह राधावाद भारतीय शक्तिवाद ही की एक विशेष परिणति है। इस विषय में मेरे "श्री राधा का क्रम विकास" नामक ग्रंथ में विस्तार से आलोचना की गई है। उसी ग्रंथ में मैंने मोटे तौर पर यह दिखाने की कोशिश की है कि हिन्दी वैष्णव साहित्य में भी प्रेम शक्ति रूपिणी राधा का किस तरह विकास हुआ। इस प्रसंग में उत्तर भारत के राधावल्लभ सम्प्रदाय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गोस्वामी हितहरिवंश जी ने सोलहवीं सदी में राधावल्लभी मतवाद का प्रचार किया था, जिसे अवलम्बन कर हिन्दी में बहुत सी वैष्णव कविताएँ रची गई हैं। गोस्वामी हितहरिवंश जी जिस युगल लीला के साधक रहे, उस लीला का मुख्य आश्रय थीं श्री राधा और श्रीकृष्ण का परिचय तो यही है कि वे श्री राधा के बल्लभ थे। इसीलिये यह मत राधावल्लभी मत कहलाता है।

हितहरिवंश जी कहते हैं—

श्री हित जू की रति कोउ लाखनि में एक जाने।
राधाहि प्रधान माने पाछे कृष्ण ध्याइये।।

तत्त्व की दृष्टि से इस राधावल्लभी साधना से बंगाल के "किशोरी भजन" की किंचित तुलना की जा सकती है। 'किशोरी भजन तत्त्व' तथा 'राधावल्लभी तत्त्व'—दोनों ही मूलतः भारत के प्राचीन शक्तिवाद की ही विशेष परिणति हैं, इस विषय पर मेरे "श्रीराधा का क्रम विकास" नामक ग्रंथ के त्रयोदश अध्याय में विस्तृत आलोचना की गई है। यहाँ पर पुनरालोचना की आवश्यकता नहीं।

हिन्दी साहित्य के रीति कालीन प्रसिद्ध कवि भूषण ने अपने अलंकार ग्रंथ 'शिवराज भूषण' का मंगलाचरण भवानी स्तुति से किया है—

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ छलनि देवि जै महिषविमर्दिनि।। इत्यादि

रीति काल के और भी बहुत से कवियों ने इसी तरह अपने अपने काव्यों में शक्ति की स्तुति या उल्लेख किया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "नील देवी" नाटक में "चण्डी" से श्लोक उद्धृत करके भारतीय नारियों को शक्ति का आदर्श ग्रहण करने की प्रेरणा है।

उन्नीसवीं सदी के चतुर्थ पाद के कवि बालमुकुन्द गुप्त की भी देवी-सम्बन्धी कई उल्लेखनीय कविताएँ पायी जाती हैं। उनमें से 'दुर्गा स्तुति'[२०] नामक कविता शंकराचार्य के नाम से प्रचलित "देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र" के अनुसरण में रची गई है। "शारदीय पूजा"

---

२०. कलकत्ते से प्रकाशित गुप्त निबन्धावली।

ही उनकी सब से उल्लेखनीय कविता है। इस कविता में कवि ने शरद् के वर्णन के सहारे "शारदीया देवी" का आविर्भाव जितना सहज और स्वाभाविक बनाया, हिन्दी की दूसरी किसी कविता में वैसा वर्णन नहीं मिलता। शारदीया देवी के आविर्भाव के अवसर पर कवि ने शरत्-प्रकृति का जैसा उपयुक्त वर्णन किया है, शारदीया पूजा को अवलम्बन कर भारतीय चित्त के आशा-उत्साह तथा उत्सव-आनन्द का भी वैसा ही परिचय दिया है। "आगवानी" कविता में देवी का आगमन होता है कैलाश से भारत भवन में—'भारत भवनहि दरस दिखाये आय'। एक वर्ष बाद जब माँ आयी तो—

वह तेरी सन्तान देख, तोहि धावती।
'मा मा' करती मा तेरे, ढिग आवती।।

पिता हिमाचल के गिरिपुर में कन्या रूपिणी पार्वती के आविर्भाव का वर्णन दूसरी कविता में मिलता है—

आज मधुर धुन बजत सैलपति भवन बधाई।
नाचत गावत बहु किन्नरि सुर ताल मिलाई।
बहु विधि फूले फूल पवन सौरभ फैलावत।
बिकसे कमल तड़ागन महँ सोभा सरसावत।।
गिरिपुर वासिन को आनन्द कह्यो नहीं जाई।
आज हिमाचल के महलन एक कन्या आई।। २१

बंगाली कवि रामदुलाल दास दत्त का एक प्रसिद्ध श्यामा-संगीत इस प्रकार है—"श्मशान भालोबासिस् बोले श्मशान कोरेछि हृदि" (तुझे श्मशान पसंद है, इसलिए मैंने अपने हृदय को श्मशान बनाया)। इस संगीत में हम सुनते हैं—

आर कोनो साध नाइ मा चिते,
चितार आगुन ज्वलछे चिते,
ओ मा, चिता भस्म चारि भिते
　　रेखेछि मा आसिस् यदि।।

"माँ, मेरे चित्त में दूसरी कोई साध नहीं है, (अब) मेरे चित्त में चिता की आग जल रही है, माँ (यदि) तू आ सके, इसलिए चारों ओर चिता की भस्म रख दी है।" बाबू बालमुकुन्द गुप्त की "आवहु माय" कविता में भी इस तरह का आकुल आह्वान बार बार सुनाई देता है—"मेरे हिय-मसान महँ मा, करहु निवास", "हिय मसान महँ राखी मा, ठाँव बनाय", "यह हिय मेरे निसिदिन मा घोर मसान। बीतत है या महँ दिन रैन एक समान।" बाबू बालमुकुन्द गुप्त की मातृभक्ति से देशप्रीति और जातीयता बोध का मिश्रण हुआ था। इसमें भी उन दिनों के बंगाली कवि मानस से उनके कवि मानस की तुल्यता है।

---

२१. कलकत्ते से प्रकाशित गप्त निबन्धावली, दुर्गास्तवन।

आठवीं सदी में श्री श्रीचंडी को अवलम्बन कर कई बँगला मंगल-काव्य लिखे गए थे। कहीं कहीं कविस्वातंत्र्य दिखाने पर भी कवि ने मूल कहानी को बिलकुल परिवर्तित नहीं किया। आधुनिक काल में 'कुमार संभव' काव्य के जो दो चार अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, उन पर भी यह बात लागू है। मतलब यह है कि असुरनासिनी चण्डिका अथवा पार्वती उमा का अवलम्बन कर बँगला साहित्य में कोई स्वतन्त्र काव्य नहीं लिखा गया। पर आधुनिक हिन्दी साहित्य में ऐसे कई काव्य पाये जाते हैं।

इस प्रसंग में पहले ही जिसका उल्लेख किया जाता है वह है वर्त्तमान काल के प्रसिद्ध हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त का "शक्ति" काव्य।[२२] मूल चण्डी की जो बात कवि के मन में बैठ गई थी वह है चण्डिका में "सौम्यातिसौम्य" और "अत्यन्त भयंकर" इन दोनों रूपों का अपूर्व समावेश। जैसे एक ओर कवि ने "हिमालय-कृताश्रय" देवी को देखा "परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्"—वैसे दूसरी ओर वही देवी घमंड से कह रही है—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति।।

मैथिलीशरण जी ने भी अपने काव्य में एक ही साथ देवी के सौम्य और भीषण रूप को प्रकट करने के उद्देश्य से कहा है—

कैसा सुन्दर कैसा भीषण था देवी का रूप।
इधर अमृत की चारु चन्द्रिका उधर प्रलय की धूप![२३]

और भी देखिए—

मन में मृदुता कर में दृढ़ता तेरी रहे सदैव;
रोष समय पर किन्तु तोष की धारा बहे सदैव।[२४]

उपर्युक्त काव्य आकार में छोटा है, जिसमें स्वर्गलोक में असुरों का उपद्रव और देवी के हाथों से उनका निधन संक्षेप में वर्णित हुआ है। कवि के काल में भारतवर्ष में विदेशी राष्ट्रशक्ति अन्याय अत्याचार की जो धूम मचा रही थी, कवि के मन में अवश्य ही उसके विरुद्ध विक्षोभ जमा हुआ था। स्वर्गलोक में असुरों के अत्याचार और उनके द्वारा स्वर्गलोक की स्वतन्त्रता का अपहरण इन दोनों विषयों के वर्णन में कवि से उसी विक्षोभ का आभास मिलता है। यह लक्ष्य करने की बात है कि यहाँ शक्ति के जागरण में संघ-शक्ति का उद्बोधन व्यंजित हुआ है। इन्द्र प्रभृति देवताओं से उनकी बुरी हालत की बात सुनकर विष्णु ने कहा था—"संघ शक्ति ही कलि-दैत्यों का मेटेगी आतंक"। काव्य के अन्तिम भाग में भी देखते हैं—

---

२२. साहित्य सदन, चिरगाँव (झांसी) से सं० १९८४ में प्रकाशित।
२३. पृ० १५।
२४. पृ० २८।

पुर देवी से कहा इन्द्र ने, "भद्रे, अब भय छोड़,
हम सब की एकत्र शक्ति ने दिया है दैत्यबल तोड़" ।

इस प्रकार अपने काव्य में दैवी महिमा का वर्णन करने पर भी कवि ने बीसवीं सदी की नई शक्ति-चिन्ता को भी व्यंजित किया है ।

चण्डी की असुर-वध विषयक कहानी को किसी एक विशेष स्थान और काल से कहाँ तक मिलाया जा सकता है, इसकी एक मजेदार मिसाल है मेवाड़ के अन्तर्गत भैंसरोड़गढ़ के रहने वाले साहित्य-रंजन कुंवर हिम्मतसिंह विरचित "महिषासुर वध" काव्य[२५] । इस काव्य को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ स्वर्ग भूमि है । भारतवर्ष खास कर राजस्थान, घटनाकाल है उन्नीसवीं-बीसवीं सदी, देवता है कर्तव्य विमुख डरपोक विलास-व्यसन में निमग्न देशवासी, और असुर हैं विदेशी शासक, जिन्होंने देशवासियों के वैमनस्य से लाभ उठाकर इस स्वर्गभूमि पर हमला किया और इसे छीन लिया । काव्य के प्रारम्भ में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन है । गर्मी की उग्रता के साथ साथ असुरों का उपद्रव भी उग्र हो गया । पर बात यह है कि इस स्वर्ग तुल्य देश पर हमला करने का लालच असुरों को किस लिये हुआ ? कवि का कहना है कि ये दैत्य कुटिल नीतिज्ञ हैं, जिन्होंने जाति की फूट से लाभ उठाकर धीरे धीरे अपने चक्र जाल में उसको फँसा लिया—

जान गये सब भेद हमारे दैत्य कुटिल नीतिज्ञ ।
फैली फूट देखकर हम में आये हैं रणविज्ञ ।।
पतन वहाँ पर होता निश्चय जहाँ घोर है द्वेष ।
पड़ा फूट के चक्रजाल में है यह प्यारा देश ।।[२६]

पर अब बैठे-बैठे रोने पछताने से क्या होगा ? समराग्नि में शत्रुओं को डालकर उन्हें जला देना होगा—

पर अब यों रोना पछताना है नितान्त निस्सार ।
समर-अग्नि में करना सत्वर शत्रु-वर्ग को क्षार ।।
करते सदा वीर वसुधा का भुज विक्रम से भोग ।
राज नहीं मिलता रोने से, हँसते हैं रिपुलोग ।।[२७]

देश के राजा इन्द्र उस समय क्या कर रहे हैं ? राज्य की बात की चिन्ता करने का भी उन्हें अवकाश नहीं । वे राजकाज छोड़कर नन्दन वन चले गये—

किन्तु करें क्या, पथ न दीखता, छोड़ राज का काज ।
नन्दनवन को शक्र सिधारे वहाँ रहे हैं आज ।।

---

२५. इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९३२
२६. १/२४
२७. १/२५

ग्रीष्मातप हरने को सुरपति शचीसंग आनन्द।
जल-यंत्रों से घिरे भवन में करते हैं आनन्द॥
नर्तकियों के नृत्य-निरीक्षण से उनको अवकाश,
नहीं तनिक भी मिलता, इस से हुआ राज्य का ह्रास॥
यह आमोद प्रमोद जहाँ पर बढ़ता है सविशेष।
बना देश को दीन प्रमादी करता है निश्शेष॥[२८]

इसके बाद दूसरे सर्ग में नन्दन-कानन में शची और नर्तकियों के साथ इंद्र के विलास-व्यसन का वर्णन विस्तार से किया गया है। असल में यह है राजस्थान के क्षयिष्णु सामन्त राजाओं के विलास-व्यसन का ही एक यथार्थ चित्र। थोड़ी देर बाद इन्द्र को सुध आगई, देवताओं की बुरी हालत वे जान गये और इस हालत का कारण भी समझ सके। प्रेम का अभाव ही इसका असली कारण है—

प्रेम वारि सब हृदय-सिन्धु का हुआ तिरोहित।
ईर्ष्यानल हो प्रबल किया है तुम को भस्मित॥
इस कारण एकत्व नहीं क्या तुम करते हो।
फूट फन्दे में फंसे विवश हो कर मरते हो॥
कार्य सिद्ध एकत्व बिना है क्या हो सकता।
ऐक्य बिना है कौन कीर्ति जग में हो सकता॥[२९]

तीसरे सर्ग में शची ने स्वयं यथार्थ राजपूती वीरांगना का रूप धारण कर लिया। वे देश और जाति के लिये इन्द्र को संग्राम की ओर प्रवृत्त करने लगीं। उन्होंने कहा—

मम हृदय-प्रेम-नद बहता है,
कर्तव्य किन्तु यह कहता है—
संग्राम करो नृपकर्म यही,
दुख हरो प्रजा का धर्म यही॥[३०]

पंचम सर्ग में बताया गया कि महिषासुर पश्चिमी तरफ से आया है। सुरा और नारी को लेकर उसकी मत्तवा का वर्णन इसी सर्ग में मिलता है। जो हो, अन्त में देवताओं का वैमनस्य मिट गया, वे एकताबद्ध हो गये। तब उनके बीच आविर्भूत हुई शक्तिरूपिणी देवी और महिषासुर का विनाश हुआ।

'चण्डीसप्तशती' में वर्णित चण्डमुण्डवध की कहानी लेकर फिलहाल (सं० २०१४ म) 'चामुण्डा प्राकट्य' अथवा 'चंडमुंड-मथन' नाम का एक छोटा सा काव्य प्रकाशित

२८. १/२६–२७
२९. २/४५–४६
३०. ३/१४

हुआ।[३१] जयपुर के पास अम्बर में स्थापिता देवी अम्बरेश्वरी अम्बिका के महिमा-कीर्तन के उद्देश्य से ही यह काव्य लिखा गया, जिसमें चण्डमुण्ड विमथिनी चामुण्डा के सम्बन्ध में इक्क्यावन गीत हैं।

फिलहाल 'भारती नन्दन' रामानन्द तिवारी रचित एक बड़े काव्य का नाम है 'पार्वती'[३२], जिसमें २३ सर्ग हैं। इसकी विषय वस्तु 'कुमार-संभव' की पार्वती-कहानी होने पर भी इसमें कवि ने जहाँ तक संभव हो अपनी स्वतंत्र कवि-कल्पना का परिचय विस्तार से दिया है। उन्होंने पौराणिक शक्ति को आधुनिक कवि दृष्टि से देखने-दिखाने की कोशिश की है। ग्रंथारम्भ में 'मंगलाचरण' के बाद आदिशक्ति शैलकुमारी की 'अर्चना' में इस भाव-दृष्टि का आभास मिलता है—

जिनकी महिमा से शिव बनकर जीवन का शव जागा,
जिनकी करुणा से सत्ता श्रेय सृजन का माँगा;
जिनकी प्रीति उदार चेतना बन जीवन में छाई।
जिनकी कृपा अपार प्रकृति में कृति गौरव बन आई।

एक ओर कवि ने सामान्यतः विश्वसृष्टि के सब पदार्थों में शक्ति को देखने की चेष्टा की है, दूसरी ओर विशेष कर नारी में—नारी की समस्त सुन्दरता, मधुरता, प्रेम और आकर्षण में—उस शक्ति का आविर्भाव देखा है।

काव्य के प्रथम सर्ग में हिमालय का विस्तृत वर्णन है, जिसमें 'कुमार संभव' का अनुसरण तो है ही, फिर अपनी कल्पना से कवि ने इस में केदार-बद्री, नेपाल और उन स्थानों में जाने के मार्ग का भी विस्तृत वर्णन किया है। दूसरे सर्ग में हिमाचल-कुमारी के वर्णन में 'कुमार संभव' के अनुसरण के अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि राज-कन्या पार्वती—

राज सभा में बैठ पिता के दक्षिण पार्श्व पुनीता,
प्रीति और शासन से संयुत नीति प्रसन्न अभीता।

काव्य की दूसरी घटनाओं के वर्णन में कवि अपनी कल्पना का परिचय देते हुए भी सामान्य रूप से 'कुमार संभव' के पथ पर अग्रसर हुए हैं। 'कुमार-संभव' के पंचम सर्ग के शेष दो श्लोकों का हिन्दी रूपान्तर इस तरह किया गया—

पथ में विवश अचल बाधा से आकुल शैवलिनी सी,
स्थिति गति के असमंजस में बह रही सरित-नलिनी सी,
कहा शंभु ने स्नेह भाव से, "प्रिये! आज से तेरा,
प्रेम और तप-क्रीतदास हैं तन, मन, जीवन मेरा।"[३३]

३१. जयपुर से गोपाल करण द्वारा प्रकाशित।
३२. नयापुरा, कोटा (राजस्थान), १९५५।
३३. सप्तम सर्ग।

विवाह के पश्चात् उमा-महेश्वर के कैलाश आने पर इन नव-दम्पति को अवलम्बन कर कवि ने नर-नारियों के, विशेषकर पति-पत्नी के जीवनादर्श के बारे में बहुत कुछ कहा है। मदन-भस्म के अनन्तर कवि ने नाना प्रकार से विवाह का आशय प्रकट किया है और कभी-कभी दाम्पत्य जीवन के लौकिक वर्णन के बीच-बीच में आदिशक्ति-रूपिणी उमा की अलौकिक महिमा उद्भाषित करने की कोशिश की है। जैसे—

बैठे थे शंकर कुटीर में ध्यान लगाये,
देख रही थीं उमा, पलक में सपने छाये;
चंचल तकली घूम रही श्वासों की गति सी,
विरच रही थी सूत्र सृष्टि का विश्व नियति सी।[३४]

काव्य में कुमार-जन्म के बाद कुमार की दीक्षा, देवोद्बोधन, तारक-वध, जयन्त-अभिषेक प्रभृति और भी अनेक सर्ग हैं। ये सब घटनाएँ कुमारसंभव के अतिरिक्त पुराणादि से ली गई हैं। ग्रंथ-समाप्ति में 'आरती' यह प्रार्थना मिलती है—

बने उमा सी पुण्यवती प्रति प्रकृति-कुमारी,
नर हो शंकर तुल्य तेज-तप संयम धारी,
शक्ति और शिव की गोदी में वीर कुमार पलें।

आधुनिक काल के अन्य प्रसिद्ध हिन्दी कवियों पर भी विभिन्न रूप से शक्तिवाद का प्रभाव दिखाई देता है। जयशंकर 'प्रसाद' के "कामायनी" काव्य के बहुत स्थलों पर हम देखते हैं कि कवि ने पूर्ण नारीत्व में 'भगवती' या 'सर्वमंगला' का रूप देखना चाहा था।[३५] श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के ऊपर शक्तिवाद का प्रभाव और भी स्पष्ट है उन्होंने स्वामी विवेकानन्द "नाचुक ताहाते श्यामा" (नाचे उस पर श्यामा) और शक्ति-सम्बन्धी दूसरी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया। इस अनुवाद में मूल बँगला कविताओं का भाव यथातथ रूप से रक्षित है—

दुःख भार इस भव के ईश्वर,
जिनके मन्दिर का दृढ़ द्वार
जलती हुई चिताओं में है
प्रेत पिशाचों का आगार;
सदा घोर संग्राम छेड़ना
उन की पूजा के उपचार,

---

३४. त्रयोदश सर्ग।
३५. हे सर्वमंगले तुम महती।
सब का दुःख अपने पर सहती॥
कल्याणमयी वाणी कहती।
तुम क्षमा-निलय में हो रहती॥

वीर ! डराये कभी न, आये
अगर पराजय सौ सौ वार ।।
चूर चूर हो स्वार्थ, साध सब
मान, हृदय हो महाश्मशान,
नाचे उस पर श्यामा, घन रण
में लेकर निज भीम कृपाण ।

'निराला' जी की 'आह्वान' कविता भी उसके अनुरूप है—

एक बार बस और नाच तू श्यामा ।
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिये कितने तुझको हार ?
कर मेखला मुंड-मालाओं से बन मन-अभिरामा—
एक बार बस और नाच तू श्यामा ।

एक सौ आठ नीलोत्पलों से रामचन्द्र ने दुर्गा देवी की पूजा की थी—इस आख्यान का निराला जी ने अपने ढंग से "राम की शक्ति-पूजा" नाम की कविता में वर्णन किया। यह एक दीर्घ कविता है जिसमें प्राचीन बंगाली कवि कृत्तिवास से विषयवस्तु लेनें पर भी कवि ने नई सरसता का परिचय भी दिया है। एक सौ आठ कमलों से दुर्गा देवी की पूजा होने वाली थी। पर शेष अंजलि के समय रामचन्द्र को एक फूल कम दीख पड़ा। इसके बाद कवि का वर्णन देखिए—

बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत्-गति हत चेतन
राम में जगी स्मृति स्मृति हुए सहज या भाव प्रमन ।
"यह है उपाय" कह उठे राम ज्यों मंत्रित घन—
"कहती थीं माता मुझे सदा राजीव-नयन ।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन ।"
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त लक लक करता वह महाफलक;
ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन
जिस क्षण बँध गया बेधने का दृग दृढ़ निश्चय
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित् उदय :—
"साधु, साधु, साधक-धीर, धर्म-धन-धन्य राम ।"
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम ।

देखा राम ने सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर स्कंध पर, रहा दक्षिण हरि पर।[३६]

निराला जी के बहुत से गीतों में माँ, जननी अरुणा प्रभृतियों का उल्लेख मिलता है।[३७] यहाँ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि निराला जो बंगाल के मिदनापुर (मेदिनीपुर) जिले के महिषादल में पैदा हुए थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा भी बंगाल में हुई थी। इसलिए उन पर शाक्त प्रभाव रहना बहुत ही स्वाभाविक है।

आधुनिक काल के शक्ति से सम्बन्ध रखने वाले काव्यों में से एक उल्लेखनीय काव्य है—'अनूप' रचित 'शर्वाणी',[३८] जो कि ७०१ पदों (स्टेंजा) में समाप्त है। शायद कवि को "देवी सप्तसती" की याद आई थी। इस काव्य की एक विशेषता यह है कि समूचा ग्रंथ एक ही 'घनाक्षरी' छंद में लिखा गया। कवि ने इसमें देवी की मधुर मूर्ति का भी वर्णन नाना भाव से किया है। इसमें देवी के विश्व सौंदर्यमय रूप का वर्णन है, फिर विश्वात्मिका, सर्वशक्तिरूपिणी, असुरनाशिनी का वर्णन है, तंत्र की नादरूपिणी, मातृकारुपिणी, षट्चक्रवासिनी का वर्णन भी किया गया है। इतना सब होने पर भी कवि का मूल विश्वास था कि देवी ही परमतत्त्व हैं, वे ब्रह्मवादियों का ब्रह्म हैं, कर्मवादियों का कर्म; वे शाक्तों की परमेश्वरी हैं, न्यायवादियों की विश्वकारिणी; वे सांख्यवादियों का दिव्य पुरुष हैं, शैवों का शिव हैं; सौरों का सविता है, कवियों की कविता—

तू ही ब्रह्म-वादियों की ब्रह्म नाम धारिणी है,
तू ही कर्म वादियों को कर्म रूप भाती है।
तू ही शाक्त जन की प्रसिद्ध परमेश्वरी है,
न्यायवादियों को विश्वकारिणी लखाती है।
साँख्य ज्ञानियों को दिव्य पुरुष स्वरूप तू ही,
शैव मानवों को विश्व-सदृश दिखाती है।
सौर प्राणियों का सविता तू अति पावन है,
तू ही कवियों को कविता हो दृष्टि आती है।[३९]

काव्य के प्रथम अध्याय में सौ पदों से देवी की स्तुति रचकर कवि ने दूसरे अध्याय के अस्सी पदों में सिर्फ मातृचरणों का वर्णन किया है। हिन्दी साहित्य में इतना लम्बा चरण-वर्णन और कहीं नहीं मिलता। इस प्रसंग में केवल एक ही ग्रंथ का उल्लेख किया

---

३६. देखिए "अपरा"
३७. दयित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आए
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा।
३८. श्री विश्वनाथ मिश्र एम० ए० साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित।
३९. शर्वाणी, स्तुति, ७१।

जा सकता है। पण्डित रामचन्द्र जी ने अपने प्रसिद्ध 'चरण चन्द्रिका'[४०] में लगभग २५ श्लोकों में चरण-वर्णन किया है। इतने लम्बे चौड़े वर्णन में भक्ति और प्रपत्ति के साथ-साथ अलंकार-बाहुल्य भी नजर आता है। देवी के रूपवर्णन में भी कवि-प्रसिद्धि और अलंकारों की अधिकता है। एक सौ तीस पदों में देवी के 'दृष्टिपात' का वर्णन है, जिसमें बहुत से स्थलों पर कवित्व-प्रकाश होने पर भी वर्णन के अतिरेक से मन थक जाता है। एक सौ श्लोकों में देवी चक्र (अस्त्र) का वर्णन है, एक सौ एक श्लोकों में है देवी के कृपाण का वर्णन। एक सौ सोलह श्लोकों से 'महिषासुर वध' का वर्णन किया गया है। यहाँ पर कवि ने वीर रस की पूर्ति पर ही ज्यादा ध्यान दिया है। कभी कभी हास्यरस तथा शृंगाररस के बल से वैचित्र्य-रचना का प्रयास किया है।

बच्चन ने, जो कि वर्त्तमान काल के दारिद्रय-दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्यों के कवि हैं, देवी को—सर्वभूतेषु प्रचंड क्षुधारूपेण संस्थिता देखा है। उनकी श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह "सोपान" नाम के ग्रंथ में "बंगाल का काल" नाम की कविता में हम देखते हैं—

भूख नहीं दुर्बल, निर्बल है,
भूख सबल है
भूख प्रबल है
भूख अटल है
भूख कालिका है, काली है,
या काली सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमोनमः।
भूख प्रचंड शक्तिशाली है
या चंडी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः।

यहीं श्री मोहनलाल महतो वियोगी की उन पंक्तिओं को भी उद्धृत करना समीचीन होगा जिनमें मृत्यु के समय पश्चात्ताप पीड़ित जयचन्द ने भारत को सिंहवाहिनी के रूप में देखा है—

जयचन्द बोला फिर एक आह भर के
—देखता हूँ, अब देखता हूँ दूर नभ में
माता सिंहवाहिनी हैं, भारत वसुन्धरा
सिर पर हिम का किरीट है लुभावना
मानो हृदयाद्रि पर रम्य शशि-लेखा हो।

४०. भारत जीवन प्रेस, काशी।

छत्र है जलद का, असंख्य इंद्रधनुष से
माता हैं विभूषित—त्रिशूल लिए कर में,
मानो शक्ति केन्द्रित हो सृष्टि, स्थिति, लय को
अंबिका के कर में—नयन तृप्त हो गए
स्नेह भरी आँखें हैं, प्रसन्न है; प्रशान्त हैं,
पुष्प अर्घ्य लेकर उपस्थित त्रिवेद हैं।
गूंजता है 'पृथ्वी सूक्त' मानो वेद भक्ति से
स्वर रूप ले के सामगान में निरत हों।
और और, देखो वह देखो आर्य-सेना के,
वीर जितने हैं मरे इस धर्म युद्ध में,
आरती उतारते है, दिव्य रूप धर के।
आदि

हिन्दी लोक साहित्य में नाना प्रकार के देवी सम्बन्धी गीत मिलते हैं। विभिन्न अंचलों से प्राप्त संगीतों में थोड़ा सा अन्तर रहने पर भी सामान्य दृष्टि से उनमें एक सादृश्य भी दीख पड़ता है। ब्रजभूमि से ऐसे कुछ गीतों का संग्रह करके डॉ० सत्येन्द्र ने अपने "ब्रज का लोक-साहित्य" ग्रंथ में मुद्रित किया है। ब्रज-भूमि में 'करवा चौथि' 'न्यौरता' प्रभृति देवी सम्बन्धी ब्रज-आराधना स्त्री-समाज में प्रचलित है और स्त्रियों की व्रत-आराधना में गीत तो अवश्य रहेगा। 'करवा चौथि' के एक गीत का उल्लेख पूर्व ही किया गया है। ब्रज-भूमि में 'न्यौरता' का प्रचलन अब भी है—आश्विन (क्वाँर) के महीने में सुदी की प्रतिपदा से नवमी तक चलता है। दीवार-दार एक छोटा मिट्टी का घर, छोटी-छोटी सोपानों से युक्त बनाया जाता है, इन सोपानों पर हर रोज सुबह सूर्योदय से पहले गीत गाते हुए कितनी ही मिट्टी को गौरें (गौरी) चढ़ायी जाती हैं। 'न्यौरता' गीत का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

गौरी री गौरी खोलि किवरिया, बाहर ठाड़ी तेरी पूजनहारी।
गौरि पुजतरि बेटी आई सुभद्रा ।।
गौरि पुजंतरि बेटी कहा फलु मांगें।
मातु-पिता कौ राजु जु माँगै, भैअँनु की जोड़ी माँगै,
भाभी-गोद भतीजौ माँगै ।।
गौरि रे गौरा बेटी, खोलि किवरिया, बाहिर ठाड़ी तेरी पूजनहारी।
गौरि पुजंतरि बहू आई ऐं सीता ।
गौरि पुजंतरि बहू कहा फलु मांगे ।
सासु-सुसर कौ राजु जौ माँगें, होरी खिलन छोटे दिवरा माँगै ।

हरी-हरी चुरियाँ, मुतियन भरि माँग जू माँगै ।
अमर बेलि के बिछुआ माँगै, अपनी गोद झंडूला माँगै ।

क्वार और चैत के महीने में ब्रजभूमि में देवी-पूजा के अवसर पर अनेक प्रकार की 'यात्राएं' दिखाई पड़ती हैं जब कि घर-घर में नौदुर्गा, नौदेवी या नवरात्रि के व्रत किए जाते हैं। आश्विनी अष्टमी तिथि में कुमारियों को खिलाया जाता है, उनके साथ कुँआरे बालक भी होते हैं जिन्हें कहते हैं 'कन्या-लांगुरा'। इन सब व्रतों-अनुष्ठानों के अवसरों पर देवी से सम्बन्ध रखने वाले नाना प्रकार के गीत गाये जाते हैं। जैसे मैथिल लोक-संगीत में, वैसे ही ब्रजभूमि के देवीगीतों में भी यही प्रार्थना की जाती है—बन्ध्या को पुत्र दो, रोगी को स्वस्थ करो, अन्धे को आँखें दो, निर्धन को धन दो इत्यादि—

कन्या-रूप भमाँनीं मैंने आजु देखी ।
बरु अगबारें मैया बरु पिछबारें, पीपरु धरम दुआर, मैंने आजु देखी ।।
मैया के द्वारें एक बाँझ पुकारै, मैंने आजु देखी ।।
मैया के द्वारें एक कोढ़ी पुकारै, कोढ़ी की काया करि देउ, मैंने............ ।
मैया के द्वारें एक अँधरा पुकारै, अँधरे की आँखें करि देउ, मैंने............।।
मैया के द्वारें एक निरधँन पुकारै, निरधँन कूं अन्न देउ, मैंने............ ।
तोइ सुमिरूँ मैया तेरे छँदु गाऊँ, असने में होउ सहाई, मैंने............।।[41]

जालिपा देवी के दर्शन पर एक सुन्दर गीत पति-पत्नी के उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में मिलता है। पत्नी तो देवी के दर्शन के लिए आकुल है पर उसके पतिजी तरह तरह के संकट दिखाकर उसे रोकने की फिक्र में है। फिर पत्नी एक एक करके सब आपत्तियों का खंडन कर रही है—

मेरे पिछवारें गैल, गाड़ी-ढरकँन में सुनीं हो माइ ।
चलौ पिया, दोऊ मिलि जाँइ परसैं देवी झालिफा हो माइ ।।
घर घोड़ी, थर भैंसि, बाऊ ऐ छोड़ें नां बनें हो माइ ।
घर दूध, घर पूतु, बाऊ ऐ, छोडें नाँ बनें हो माइ ।।
दूधु गुजरिया देउ, लड़िकँनि धाइ लगाइऐ हो माइ ।।

---

४१. तुलनीय: मैया रहीं ऐ नन्दनवन छाइ, फूलँन की लोभिनियाँ ।।
माता के द्वारें एक आंधरो पुकारै, मैया देउ नैंन घर जाएँ,
फूलन की लोभिनियाँ ।। इत्यादि ।

घर बउअरि, घर धीअ बाऊऐ छोड़ें नाँ बनें हो माइ।
धिअरि पठइ देउ ससुरारि, बउअरि घर-बरु सोंपिए हो माइ ।।"[42]

इन गीतों में यह एक विशेषता लक्ष्य करने की है कि देवी के ये व्रत-अनुष्ठान विशेष रूप से स्त्रियों में प्रचलित है और देवी-दर्शन के लिए जाने का आग्रह अधिकतया उन्हीं का है। पुरुष तो हमेशा बाधा डालने वाले हैं। एक गीत में है कि पंडित जी ने आकर पोथी खोलकर सगुन बता दिया। अब स्त्रियों में तो हलचल मच गई, पर पुरुष लोग बिगड़ गये।

तिरियाँ बिन की अँगनु लिपावैं, माइल चौकु पुरावै,
भैंनि सँजावै उनकी टीकौ।
घर ही में बाबुल बरजन लागे, कठिन पंथु देवी कौ,
देवी कौ मैया, सिंघ दहाड़ें (ढ़हाइ) कजरी कौ।"[43]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आश्विन की तरह चैत के महीने में भी देवी की पूजा होती है और उस अवसर पर गाने भी चलते हैं। एक गीत में है—सुहावन चैत आ गया, पंडित जी ने सगुन बता दिया, पिता जी खर्च बाँधकर चले, उनके साथ माता जी मार्ग को शीतल करते हुए चली, ननद चली ललाट पर केसर लगाए हुए और देवी के गीत गाती हुई भाभी भी चली—

जाती पंडित बोलौरे आपुने, औरु निरमल घड़ी ऐ बताइ,
आयौ लाड़ें चैत सुहाँमनौ ।।
जाती बाबुल बोलौरे आपुने, औरन पूरौ सौ खरचु बँधाइ।
जाती माइल बोलौ री आपनी, सिअरौ सौ पंथु सिराइ,
आयौ लाड़ौ..............।।"[44]

---

४२. तुलनीयः चलि पीया, दोऊ मिलि जाँइ परसें देवी जालिपा ऐ ओ माइ।
घर घोड़ी, घर भैंसि, दोऊन चालें नाँ बनैं ओ माइ ।। इत्यादि
देवी के गीत सं० १२।

और भी तुलनीय :

जाती कौन दिसा ते आमुन भयौ, कोई कौन दिसन कूं जाइ हे।
रानी पुरब दिसा से आमन भयौ, कोई पच्छिम दिसा कूं जाइँ हे।
जाती पच्छिम दिस में को रहे, कोई ब्बाइ परसन कूं जाइ हे।
रानी पच्छिम दिसा में देवी जालिफा, कोई ब्बाइ परसन कूं जाइँ हे।
जाती ऐसौ री देवता कहा देंतियै, तू ब्बाइ परसन कूं जाइ हे।
रानी अंधेनु नेत्तर बेंति ऐ, बाँझन कूं पुत्तर देइ हे। इत्यादि।
डॉ० सत्येन्द्र के संग्रह से।

४३. देवी के गीत, ७ सं०।

४४. वही, १३ सं०।

देवी-मन्दिर जाने के बारे में और भी नाना प्रकार के गीत मिलते हैं। एक गीत नीचे दिया जाता है—

अग्गिम भारी, सो मैया तेरौ पंथु कठिन भारी।
को ज्ञाँ आवै डोली-डोली को ज्ञा असवार।
को ज्ञाँ आवै नंगे पांमन, मैया के दरबार, अग्गिम······ ॥
राँनी आवै डोली-डोली, राजा असवार।
रैअत आवै नंगे पाँमन, मैया के दरबार, अग्गिम······ ॥
को ज्ञाँ चढ़ावै हीरा-मोती, को ज्ञाँ नरियर फूल सुपारी।
को ज्ञाँ चढ़ावै सोने कौ छत्तुरु, मैया के दरबार, अग्गिम······
राजा चढ़ावै हीरा-मोती (औ) रैअत नरियार।
औरु रँनियाँ चढ़ावें सोंने कौ छत्तरु, मैया के दरबार, अग्गिम······ ॥[४५]

दूसरे एक गीत में माता से असुर के वैरभाव का एक अभिनव दृश्य हम देखते हैं:—

एक हरौ लोंगनुं को बागु, मैया लकड़िनि कौ निकरीं।
एक एक लकड़ी बीनि मैया, जूँने गठरी बाँधी ॥
उत ते आयौ असुर, असुर बाकी लकड़ी बखेरी।
सुनि रे लाँगुरिया वीरु, असुर मेरी लकड़ी बखेरी ॥
नौ नौ ठोकौ कील, दरदु नेंकौ मति करिओ।
असुर की चतुरा नारि, असुर समझाइ दए ॥
मैया जू कें चरननि जाउ, सुंदरि जू के चरन पलोटौ।
एक एक लकड़ी बींनि, मैया जू कों गठरी बांधौ ॥
सुनि रे लाँगुरिया बीरु, असुर मेरे चरननु आयौ।
नौ नौ खेंचौ कील, कसरि नेंकौ मति राखौ ॥

निम्नलिखित गीत में साधारण गृहस्थ की तरफ से देवी से प्रार्थना की जाती है कि उसकी सुमत बिगड़ न जाय:—

देखि पराई सुंदरि नारि, मनु न डुलाइऐ हो माइ।
जौ मनु डुगलँन हारु, भेंना कहि कें टेरि ऐ हो माइ ॥
देखि पराए सुंदर लालु, मनु न डुलाइऐ हो माइ।
जौ मनु डुगलँन हारु, गोद लै खिलाइऐ हो माइ ॥

४५. तुलनीय : लें मैया बीरा मैं कब की ठाड़ी ॥
कोंनें चढ़ाए मैया धुजा-नारियर, कोंनें चढ़ाए लाल-हीरा,
मैं कब की ठाड़ी। इत्यादि। देवी के गीत, ८ सं०।

देखि चँननि को खेतु, मनु न डुलाइऐ हो माइ।
जो मनु डुगलँन हारु, मोल लै कें खाइ ऐ हो माइ।।

दूसरे एक गीत में देवी से प्रार्थना की जाती है—'मैया, भुवन में आउ, मेरी आस लगी तेरे दरसँन की! हमारे भुवन में आकर देवीजी कहाँ-कहाँ ठहरी?—

एक बनु कहियतु फूलनि कौ, फूल रहे मेंहकाइ,
देवी जी बिरमि रहीं, बाई बन में।
एक बनु कहियतु लोंगनि कौ, लोंगे रहीं मेंहकाइ, देवीजी...... ।
एक बनु कहियतु संतनि कौ, संत बोलें राधेस्याम, देवीजी...... ।
एक बनु कहियतु भक्तनि कौ, भगत बोलें जै-जैकार, देवीजी...... ।

दूसरे गीत में माँ के लिए अंतर की यह आकुलता प्रकट हुई कि माँ क्यों उसे बरबस बाँधकर अपने पास नहीं ले जाती? प्राण तो उन्हीं पर लगा हुआ है—"मैया, लेजु कसनि कसि डारि, जियरा मेरौ तोही सों लगौ।" माँ के पास जाते वक्त बाप खर्च बाँधते हुए देर करा देता है, भाई देर कराता है रुपये गिनने और घोड़ा सजाने में, पूरी सेकने में देर होती है लौंडी को, सत्तू बाँधने में देर होती है चाची को, बहनें देवी के गीत गाते हुए देर करा देती हैं। पर इतनी देर और सही नहीं जाती, जो लगा हुआ है माता जी पर, इसलिए यही प्रार्थना है कि माँ उसे कस कर अपने पास खींच लें।[४६]

मथुरा में जगदेव नाम से एक देवीभक्त की कहानी प्रचलित है। वहाँ "जगदेव का पंवाड़ा" (एक प्रकार का कहानी-गीत)[४७] नाम से जो गीत प्रचलित है, उसमें बारह 'मवासे' (वीरता की कहानी) हैं, जो कि देवी के जागरण के अवसर पर गाए जाते हैं। मूल कहानी का आरंभ इस प्रकार है:—रंधीर ने देवी के यज्ञ में अपने भाई जगदेव को निमंत्रित किया और जगदेव माता को लेकर उस यज्ञ में शामिल हुआ। पर रंधीर ने माता का अपमान किया, जिससे रुष्ट होकर देवीभक्त जगदेव ने देवी की शरण लेकर रंधीर की सभा को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यही है जगदेव का पहला 'मवासा' और इसी तरह के बारह मवासों को लेकर गीत पूरा होता है। जगदेव एक बार बंगाल में भी आया था और यहाँ की एक तमोलिन ने जादू के बल से उसको तोता बनाया। यह खबर मिलते ही देवी ने आप बंगाल में आकर जगदेव का उद्धार किया। साधारणतया सभी कहानियाँ देवी के निग्रह और अनुग्रह लेकर रची गई हैं। बंगाल में ऐसी किसी कहानी का प्रचलन रहता, तो 'चंडीमंगल' या 'कालिका मंगल' के समान और भी एक मंगल-काव्य मिल जाता। परन्तु हिन्दी में इस कहानी को काव्य रूप नहीं मिला, यह गीत के आकार ही में रह गया। महाकवि डा० मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'सिद्धराज' नामक काव्य में जगदेव का ओजपूर्ण वर्णन दिया है। इसमें जगदेव को चंडी या कालका जैसी देवी का

---

४६. देवी के गीत, ११ सं०
४७. देखिए डॉ० सत्येन्द्र का प्रबन्ध—'जगदेव–एक अध्ययन, भारतीय साहित्य, वर्ष ३, अंक ४ (पृष्ठ ८९-२३४)।

भक्त तो नहीं बनाया पर 'राणक' के सतीत्व रक्षक के रूप में उसे अवश्य चित्रित किया है। 'राणंक' लोक वार्त्ता में देवी का ही अवतार मानी गई है। बस इस प्रसंग से जगदेव देवी या सती स्त्री के भक्त और रक्षक बनकर काव्य में आए हैं। अधिकांश गीतों की टेक इस प्रकार है –'अरी मेरी आदि भवानी'। दूसरे लोक गीतों में भी यह टेक बहुत ही जनप्रिय है। कुछेक गीतों में यह टेक मिलती है –'सीस देवी रहइ'। देवी भवानी हैं, (भमानी) कहीं जालिपा देवी तो कहीं कंकालिनी कालिका (अरे देवी देखी जालपा रे कंकाली); कहीं वे 'भमानी हिंगुलाज की' तो कहीं 'सिंघ असवारी जगदम्बा बैठी'। फिर देखते हैं—

धरती माता तू बड़ी औरु तो ते बड़ौ अगासु।
देवन में दुर्गा बड़ी, या के नगरकोट में राजु ॥

पहले ही कहा जा चुका है कि जगदेव ने जो कुछ किया वह देवी को स्मरण और ध्यान में रखकर (देवी मनाय कै, देवी कौ धरि कै ध्यान)। समग्र गीत में जो देवी-बन्दनाएँ मिलती हैं उनमें से नमूने के लिए एक को उद्धृत किया जाता है—

बंदौ बारंबार,
अरी मात मैं तेरी सरना
भमन में तेरे पड़ा, मात मैं तेरी सरना।
भमन तुम्हारा लगत सुहावना
मैया लागै तेरा भमन सुहावना
... ... ... ...
परवत तिहारौ मोहि लगत सुहावना
परवत तेरौ री अरे लगत।
अरे चोले वाले जी, अरे आदि भमानी।

देवी-जागरण के छोटे छोटे आख्यानों को लेकर बहुत से गीत हैं, फिर छुट्टे गीत भी बहुत से मिलते हैं। युधिष्ठिर, अर्जुन और देवी को अवलम्बन कर "मोरंग दाने कौ जुज्झ" नाम से जो गीत प्रचलित है उसका आरम्भ इस प्रकार है—

खोलो हिर्दे जन के खानि, मैंने यादि करीऐ माई
एक दिन धांधू पीपानें सैरी आजु सैरी मैंने आई
खोलो हिर्दे जन के खानि। मैंने....................
तू नगरकोट ते आवै
भूले ज्ञान बतावै।
माता मैं मूरखि अज्ञानी
दैजा मोइ बुद्धि भमानी—खोलो...... ॥[४८]

४८. यह गीत और परवर्ती समस्त गीत डॉ० सत्येन्द्र जी के संग्रह से मिले; इसलिए मैं उनका आभारी हूँ।

पांडवों के द्वारा देवीपूजा की बात बहुत से लोक गीतों में मिलती है। "देवी के के सोहिले" (सोहिले याने मंगलगीत जो कि साधारणत: बच्चा पैदा होने पर स्त्रियों से गाय जाते हैं) नाम से जो गीत मिलते हैं उनमें बहुत सी छोटी छोटी कहानियों से यही बात सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि केवल देवी की कृपा ही से सन्तान मिलती है। जैसे मैथिल लोकगीत में वैसे दूसरे लोकगीतों में भी फूल-सुपारी, ध्वजा, नारियल, क्षीर खण्ड, मेवा, नगाड़ा-नौबत प्रभृति विभिन्न उपचारों से देवी-पूजा का प्रसंग मिलता है। बहुत से स्थलों पर देवी को हम "नगर-कोट की देवी साँवल माय" के रूप में पाते हैं। बजने के वर्णन के बीच कहीं-कहीं थोड़ी-सी गम्भीरता का आभास मिलता है। एक गीत में है—"नगाड़ा माता जी को संत प्यारा बोलेगा"। दूसरे एक गीत में है— नगाड़ा, वीणा और शहनाई के साथ साथ "तेरे अनहद बाजे बाजे" जिससे ब्रह्मा मोहित होता है, मुरारि भी मोहित होता है, तैंतीस करोड़ देवता भी मोहित हैं। और

संत प्रेमरस पाये।
सुमर चरण ध्यानु जस गावे ।।

दूसरे एक गीत में है—

पुत्र कुपुत्र होते हैं माय कुमाय न होय।
मेरे सिर पर बैठी जालपा मारन वाला कोय ?

देवी से लौकिक जगत् की बिनती करते समय एकाध स्थल पर नितांत भक्ति भाव से कवि ने कहा है —

हमारी सुन लीजिये, हमारी सुन,
अरज लगी दरबार सो तेरे मा, सो हमारी सुन लीजिये।
अर्जी हमारी आगे मरजी तुम्हारी माँ, मन चाहे सोई कीजिये,
हमारी सुन लीजिये।
भवसागर से पार लगा दो।
इतनी अनुग्रह कीजिए, हमारी सुन।
और कुछ में माँगत नाहीं, भक्त दान मोय दीजिये, हमारी सुन।
कालीदास दास अपने की अंत समय सुध लीजिये।

देवी न केवल सर्व-मानव-पूजिता हैं, ब्रह्मा-विष्णु-शिव भी उनकी आराधना करते हैं—कुछेक गीतों में इस भाव को बड़े कौतुकप्रद ढंग से व्यक्त किया है। एक गीत में कहा गया है—

जागो जागो जागो देवी राजा हरीचंद होम रचाइया
ब्रह्मा जगावे तेनू वेद सुनावें बंसी बजाके जगावे नन्द जी के लाला ।।

फिर—

देव रूप विसाल देवन मन धीरज आया,
नारद धारे ध्यान, ब्रह्मा ने वेद सुनाया,

अस्तुति लागे करन इन्द्र तेरी आरति लीया ।
अस्त्र शस्त्र देवन हिये जी दीना सिंघ मगाय,
बीस भुजि शशि धारियाँ, तेरा रूप न वरना जाय ।

दूसरे एक सुन्दर गीत में देखते हैं—पर्वत पर माई का राज बैठ गया—

बनो बनो तेरा मोरी : झमारे शब्द करै ।
सब पर्बत पै राज तुम्हारा बैठि हुकम करै ।
जरी चोलना अंग बिराजै केसर तिलक धरै ।
लंगर वीर भवन तेरे आसे भैरों चँवर करै ।
सिह चढ़ी माई अम्बिका गाजे खाँड़ा हाथ धरै ।
सेवक दास कहे हाथ जोड़ी शरणी आन पड़े ।।

और एक गीत में माई के चारों ओर घिरते हुए बादलों का वर्णन बड़ा ही सुहावन लगता है—

रंग रंगीली बादलिया ने लाई है बहार, भवन पर लाई है बहार,
निक्की निक्की बुँदा बरसे माता के दरबार ।।
माता के भवन पर छाई घटा घनघोर,
बादला नू देख देख नाचे दादूर मोर,
दादूर मोर पपीहा बोले कोयल शब्द उचार,
जै जगदीश्वर, जै जगदम्बे, जै देवी आदि कुमार, ।। रंग रंगीली...
लता बेलकुंज फूले बूटे रंग रंग,
मंद मंद पवन चलत लिये है सुगन्ध;
चंपा, मरुआ केवड़ा, मौला मोतिया गुलनार,
मालिन दिया हार गूंद लाई, पहनो आदि कुमार ।। रंग रंगीली···

देवीशंकर द्विवेदी

# सामाजिक वर्गों के अनुसार बैसवाड़ी शब्द-संपत्ति की समीक्षा

## (क) सामाजिक स्थिति के अनुसार

मनुष्य की सामाजिक स्थिति का निर्माण अनेक आधारों पर होता है; जैसे—व्यवसाय, वय, धन, पद तथा स्वभाव आदि। व्यवसायों की समग्र शब्दावली का अध्ययन एक स्वतंत्र ग्रंथ का विषय है। वय के अनुसार बैसवाड़ी शब्द-संपत्ति पर हम आगे विचार करेंगे। धन, पद तथा स्वभाव के योग से मनुष्य किन्हीं विशेष शब्दों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करता है; उसके बोलने के ढंग में एक प्रकार का गौरव रहता है। किन्तु ऐसे शब्दों को किसी एक ही वर्ग की सम्पत्ति कहना उचित न होगा। धन और सुविधाओं के कारण कुछ लोग शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और कुछ लोग अशिक्षित ही रह जाते हैं। शिक्षितों की भाषा इस सुविधा के कारण अन्य स्रोतों के शब्द भी ग्रहण कर लेती है और उन्हें कुछ शब्द गँवारू प्रतीत होने लगते हैं। शब्दावली का वर्गगत भेद यहाँ स्पष्ट हो जाता है। इस भेद को दृष्टि में रखते हुए फर्थ ने भाषा के तीन 'कुलकों' की स्थिति का संकेत किया है।[1] डा० विश्वनाथ प्रसाद ने भोजपुरी का अध्ययन करते समय इन तीनों वाक्शैलियों (१. सामान्य २. शिक्षितों की ३. संस्कृतनिष्ठ) पर विचार किया है और चौथी वाक्शैली ग्रामीणों की निर्धारित की है।[2] वाक्शैलियों के ये भेद प्रमुखतः शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर ही आधारित हैं। बैसवाड़ी शब्दावली पर विचार करते समय निम्नलिखित वर्गीकरण सुविधाजनक रहेगा :—

**(१) सामान्य वाक्शैली**—इसमें वे शब्द आएँगे जिनका प्रयोग सभी बैसवाड़ी-भाषी करते हैं। ये शब्द संस्कृत के वे तत्सम, अर्धतत्सम या तद्भव शब्द हो सकते हैं जो बैसवाड़ी को परम्परागत रूप में मिले हैं। फारसी, अरबी तथा अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के वे शब्द भी इसमें सम्मिलित हैं जिन्हें यहाँ की जनता ने पूरी तरह अपना लिया है।

---

१. फ़र्थ, टंग्ज़ ऑव मेन, पृ० १०५।

२. प्रसाद, ए फोनेटिक एंड फ़ानोलॉजिकल स्टडी ऑव भोजपुरी, पृ० ६ भूमिका।

(२) **शिक्षितों की वाक्शैली**—इसमें वे शब्द सम्मिलित हैं जो शिक्षित जन-समुदाय में यदा-कदा व्यवहृत हो जाते हैं। एक परिमित समूह में ही ये शब्द घूमते रहते हैं। इस शब्दावली में भी उपर्युक्त सभी स्रोतों का योग होता है।

(३) **व्यावसायिक वाक्शैली**—यह शैली विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित है। तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों की प्रचुरतावाली वाक्शैली को डा० प्रसाद ने संस्कृतनिष्ठ शैली माना है। बैसवाड़ी में इस प्रकार की किसी शैली का इतना समृद्ध रूप नहीं निखर पाता कि उसे शिक्षितों की शैली से पृथक् एक स्वतन्त्र कोटि देने की आवश्यकता हो। संस्कृतनिष्ठ शैली के आधार रूप में जिन सांस्कृतिक और धार्मिक चर्चाओं का उल्लेख डा० प्रसाद ने किया है, बैसवाड़ी में नहीं मिलतीं। काव्य में अवश्य ही इस प्रकार की शैली दिखती है। रामचरित-मानस ( यदि उसे बैसवाड़ी काव्य मानें तो ) और 'कृष्णायन' के अतिरिक्त श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा की प्राय: प्रसारित होने वाली फुटकर बैसवाड़ी कविताएँ इस शैली के उदाहरण के रूप में विज्ञापित की जा सकती हैं।

हाँ, सामाजिक और धार्मिक संस्कारों में अवश्य ही एक भिन्न गद्यशैली का व्यवहार मिलता है। किन्तु इसे मैं 'पंडिताऊ शैली' कहना चाहूँगा क्योंकि इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के प्रयोग का आग्रह नहीं होता, केवल वाक्य-गठन भिन्न होता है और मुख्यत: क्रिया-पद की रचना सामान्य बैसवाड़ी से भिन्न होती है। 'सत्यनारायण व्रत कथा' का हिंदी अर्थ इसी 'पंडिताऊ शैली' का उदाहरण है। सामान्य बैसवाड़ी की क्रियाएँ 'चलेगे' और 'कहेनि' इस शैली के अनुसार 'चले जाति भे' और 'कहति भे' हो जायँगी। इस शैली को सुविधापूर्वक 'व्यावसायिक वाक्शैली' के अंतर्गत रक्खा जा सकता है। चूँकि 'पंडिताऊ शैली' में गठन का भेद मिलता है, शब्दावली का भेद विशेष नहीं है, इसलिए 'व्यावसायिक शब्द-विचार' में इस शैली के समावेश की आवश्यकता नहीं है।

(४) **ग्रामीण वाक्शैली**- शब्दावलियों के इस वर्गीकरण में यह ध्यान रखना चाहिए कि इनकी सीमाएँ न तो भौगोलिक अथवा राजनैतिक सीमाओं की भाँति निश्चित हैं, न स्थिर ही। ऐसे शब्द मिलेंगे जो एक ही वाक्शैली के अंग नहीं कहे जा सकते। कुछ शब्द एक वर्ग से विस्तृत होते हुए दूसरे वर्ग की ओर बढ़ रहे हैं। कुछ का संकोच भी हो रहा है। इसी प्रकार यह बात भी ध्यान देने की है कि किसी एक वाक्शैली के अंगभूत शब्द भी प्रसार-क्षेत्र की दृष्टि से व्याप्ति में समान नहीं हैं। ग्रामीण शैली में वे शब्द आते हैं जिनका प्रयोग अपेक्षाकृत निम्नस्तर के व्यक्ति करते हैं। किन्तु इन शब्दों के अनुसार भी 'ग्रामीण वाक्शैली' के अनेक भाग किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, सिर के लिए शिक्षितों की शैली में 'सिर' शब्द का ही प्रयोग होगा। ग्रामीण शैली में इसे 'मूड़' कहेंगे और 'मूड़ी' शब्द इसी शैली में और भी निम्न स्तर का शब्द है। इस प्रकार एक शब्द के इन दो रूपों के आधार पर 'स्वल्प ग्रामीण' या 'ईषत्ग्रामीण' और 'ग्रामीण' या 'अतिग्रामीण' इन दो स्तरों में 'ग्रामीण-शब्दावली' का विभाजन किया जा सकता है। 'स' को 'ह' कर देने की प्रवृत्ति का उदाहरण 'महट्टर' ( < मास्टर ) शब्द या वर्ण-विपर्यय द्वारा प्राप्त 'बेराम' ( ∠ बीमार ) शब्द भी ग्रामीण वाक्शैली का है। किन्तु इन दोनों में दूसरा कुछ अधिक व्यापक और उन्नत है। इनकी आनुपातिकता का सम्बंध देखते हुए 'मूड़' और 'मूड़ी' के वर्गों से भिन्न किन्हीं

अन्य कोटियों की स्थापना करनी पड़ेगी। 'स' को 'ह' करने की प्रवृत्ति का ही दूसरा उदाहरण 'निहचै' ( ∠ निस्चै ∠ निश्चय ) पहले उदाहरण से व्याप्ति में भिन्न है। और वर्ण-विपर्यय का दूसरा उदाहरण 'रगदा' ( ∠गरदा ) जो कहीं-कहीं ही भ्रांतिवश सुनाई देता है, आंशिक रूप में भी पहले उदाहरण की तुलना में नहीं खड़ा हो सकता। इसके लिए कदाचित् 'परमग्रामीण' जैसे किसी शब्द की रचना करनी पड़े।[1]

विश्लेषण और वर्गीकरण की प्रक्रिया अध्ययन को सुगम और सुविधा-पूर्ण बनाती है; किन्तु यह विश्लेषण-वर्गीकरण एक सीमा तक ही हो सकता है। उपर्युक्त वर्गों के अंगों के परस्पर-भेद के अनुसार यदि यह वर्गीकरण और बढ़ाया जाय तो कठिनता और अस्पष्टता बढ़ेगी, साथ ही अध्ययन में उलझाव आएगा। इसलिए उपर्युक्त वर्गीकरण व्यावहारिक कार्य के लिए पर्याप्त है। हाँ, यह स्मरण रखना चाहिए कि इस वर्गीकरण की प्रवृत्ति क्या है और इसकी अपनी सीमाएँ क्या हैं। इन पर थोड़ा प्रकाश ऊपर डाला जा चुका है।

प्रस्तुत निबंध बैसवाड़ी क्षेत्र में उल्लिखित प्रसंगान्तर्गत प्रयुक्त होने वाले शब्दों के एक अंश-मात्र पर आधारित है। उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार शब्द-समृद्धि का अध्ययन करने के लिए 'कोश' उपयुक्त स्थान है। शिक्षितों द्वारा व्यवहृत होने वाले आदत्त अथवा आगत शब्दों का समावेश भी इसमें बहुत कम संभव हो सका है। अधिकतर शब्द सामान्य वाक्शैली के हैं। अन्य शब्दों के सम्बन्ध में, जहाँ कहीं आवश्यकता का अनुभव हुआ है, संभव होने पर वर्गों की सूचना दे दी गई है।

शब्दों के प्रयोग की दो प्रवृत्तियाँ स्तर या जाति-भेद पर आधारित हैं। 'तुइ' (तू) का प्रयोग ऊँची जातियों में नौकरों के लिए या गाली में होता है, जब कि छोटी जातियों (प्रायः अछूतों) में यह माँ-बाप-भाई आदि बड़ों के लिए भी सामान्य भाव से प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अर्थ-भेद न करने वाले विकल्पों में निरनुनासिक रूप ऊँची जातियों में प्रचलित हैं और सानुनासिक रूप प्रायः छोटी जातियों में। उदा० हाड़ ↪ हाँड़, ट्याढ़ ↪ ट्याँढ़, टाठ ↪ टाँठ।

सामाजिक स्थिति का एक आधार लिंग-भेद है। स्त्रियों और पुरुषों की बोली में शब्दों के भेद पाये जाते हैं। चतुर गृहिणी को पाकशास्त्र का ज्ञान होने के

---

१. "विभिन्न वाक्शैलियों की अपनी-अपनी निजी विशेषताएँ हैं और किसी भी जीवित भारतीय भाषा के गठन के सांकालिक तथा व्यापक विवरण में भाषा की व्यवस्था या समग्र रूप से व्यवस्थाओं की अपरिहार्य विशेषताओं के रूप में उनका उल्लेख अनिवार्य है।"

—प्रसाद, वही, पृ० १० भूमिका;

फ़र्थ, साउंड्स एंड प्रासोडीज़, ट्रैंजैक्शन्स ऑव फ़िलालॉजिकल सोसाइटी, १९४८, पृ० १२७; चार्ल्स सी० फ्राईज़ और केनेथ एल० पाइक, कन्सिस्टेंट फ़ोनेमिक सिस्टम्स, लैंग्वेज, जिल्द २५, संख्या—१, जनवरी-मार्च : १९४९, पृ० २९–५०।

कारण जितने खाद्य पदार्थों का ज्ञान होता है, पुरुषों को नहीं होता। दाँव-पेंच के विभिन्न नामों का ज्ञान कुश्ती लड़ने वाले पुरुषों को होता है, स्त्रियों को नहीं। किन्तु कुछ शब्दावली ऐसी भी है जिसका ज्ञान स्त्री-पुरुष दोनों को होता है, लेकिन जिसका प्रयोग केवल एक ही पक्ष करता है। यह प्रवृत्ति मुख्य रूप से गालियों में पायी जाती है। पुरुष जो गालियाँ देते हैं, उनमें अधिकतर गाली पाने वाले पुरुष की माँ, बहन आदि कोई निकट की 'मान्य' स्त्री लक्ष्य बनती है। वस्तुतः ये गालियाँ इन स्त्रियों के प्रति ही होती हैं और जिस व्यक्ति को लक्ष्य करके गालियाँ दी जाती हैं, उसका संबंध इन गालियों से केवल इतना ही होता है कि ये गालियाँ उसकी किसी निकट सम्बन्धी स्त्री पर जाती हैं। इन गालियों में प्रयुक्त होने वाले शब्द अत्यन्त अश्लील और अशिष्ट होते हैं, उनका प्रयोग स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं इसलिए, और ये गालियाँ अन्ततः उन्हीं पर जाती हैं इसलिए, इन गालियों पर पुरुषों का एकाधिपत्य है। 'सार' शब्द सूक्ष्म और अस्पष्ट रूप से गाली देता है। एक विशेष सम्बन्ध ("साला") की सूचना देने के लिए जब इस शब्द का प्रयोग हो तब की बात भिन्न है; किन्तु गाली के रूप में प्रयुक्त होने पर यह शब्द प्रच्छन्न रूप से बहन की गाली देता है। इसीलिए यह शब्द भी स्त्रियों में प्रचलित नहीं है। जब कोई पुरुष किसी स्त्री को गाली देता है तो प्रायः उसके अश्लील और भद्दे शब्द उसी स्त्री को लक्ष्य करके कहे जाते हैं, उसके संबंध की किसी अन्य स्त्री को सम्मिलित नहीं किया जाता। इस भाँति गाली देते समय पात्र के लिंग-भेद के अनुसार पुरुषों की शैली में भी भेद हो जाता है। किन्तु इन दोनों शैलियों में आने वाली शब्दावली पुरुषों द्वारा ही व्यवहृत होती है, स्त्रियों द्वारा नहीं। इस नियम के कहीं-कहीं कुछ अपवाद भी मिल सकते हैं, किन्तु ये अपवाद केवल निम्न स्तर की स्त्रियों में मिलेंगे और इसका कारण यह है कि नीच जातियों में स्त्री-पुरुष का कार्य और संपर्क-गत भेद बहुत कम है। बचपन से ही लड़कियाँ वे सारे कार्य करती हैं जो लड़कों के समझे जाते हैं, उदाहरणार्थ, पशु चराना और उनकी देखभाल करना। चरागाहों में ये लड़कियाँ गालियों का अर्थ जानने के पहले ही लड़कों के मुँह से सुनकर उन्हें सीख लेती हैं। अर्थ जानने के बाद इनका प्रयोग छूटता जाता है; किन्तु संस्कारवश कुछ स्त्रियों के पास ये शब्द देर तक टिके रह जाते हैं।

पुरुषों की शब्दावली में जिस प्रकार 'सार' पुरुषों को गाली देने का शब्द है, उसी प्रकार 'ससुरी' स्त्रियों को गाली देने का। ये दोनों शब्द गाली की अश्लीलता की प्रच्छन्नता और सूक्ष्मता की दृष्टि से, व्यापकता और प्रयोग-बहुलता की दृष्टि से लगभग एक ही कोटि के हैं। गाली देने में इन शब्दों का प्रयोग अनायास होता है और इनके अर्थ की ओर किसी की दृष्टि नहीं रहती है। फिर भी, पूछने पर या सोचने से 'सार' शब्द का आशय तुरन्त समझ में आ जाता है; क्योंकि वह ऐसे सम्बन्ध का व्यंजक शब्द भी है जिसका प्रयोग या विस्तृत वर्णन गाली अथवा विनोद की वस्तु है; किन्तु 'ससुरी' शब्द से जिस सम्बन्ध की ध्वनि निकलती है, वह सम्बन्ध बताने के लिए बैसवाड़ी में 'सास' शब्द प्रचलित है। इस प्रकार 'ससुरी' केवल गाली का शब्द है जिसका पुंलिंग रूप 'ससुरी' के लिए वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त होने वाले अनुक्रम 'ससुरा केरि' में मिलता है। यह 'ससुरा' भी केवल गाली का शब्द है।

'सार' की भाँति ही 'ससुर' शब्द का प्रयोग भी गालियों में होता है। केवल परेशानी व्यक्त करने के लिए भी इसका व्यवहार होता है; जैसे—का कही ससुर, हमते यू कामु नहीं होत। कुछ लोग इसका प्रयोग तकियाकलाम के रूप में करते हैं।

इन शब्दों के अतिरिक्त और बहुत-से अश्लील तथा गन्दे[1] शब्द पुरुषों की गाली-सम्बन्धी शब्दावली में हैं, जिनका प्रयोग पात्र के लिंगानुसार दो शैलियों में होता है।

स्त्रियों की अपनी विशिष्ट शब्दावली में उनके द्वारा प्रयुक्त होने वाली गालियाँ और कुछ आवेगी शब्द हैं। उपरिलिखित कारणों से पुरुषों की गालियों की प्रवृत्ति का परित्याग इन्हें करना पड़ता है और नयी पद्धति अपनानी पड़ती है, क्योंकि रोष-क्षोभ तो स्त्रियों को भी होता है और उसे व्यक्त करने की आवश्यकता भी पड़ती है। स्त्रियों की गालियों की विविधता बड़ी रोचक है, किन्तु अर्थ की स्पष्टता यहाँ नहीं है। स्त्रियों की इस विशिष्ट शब्दावली में से कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :—

## १. गालियाँ

**१·१ दहिजार**—यह शब्द 'दाढ़ीजार' का तद्भव रूप है और दाढ़ी केवल पुरुषों को होती है इसीलिए यह गाली केवल पुरुषों को दी जा सकती है; 'दहि' शब्द ने अपने जनक 'दाढ़ी' शब्द का इतना लिहाज अभी रक्खा है। अन्य बातों में उसने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर लिया है। उदाहरणार्थ, 'दहिजार' शब्द बिना दाढ़ी-मूँछ के बालकों के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है।

**१·२ धिगरा**—'लुच्चा' अर्थ देने वाला हलका कुत्सार्थक शब्द है। घर के लोगों के लिए भी इसका व्यवहार संभव है। कहावत है—देइ न देउता, धिगरन[2] नेउता। इसका प्रयोग माँ-बहनें त्यौहारों के दिन उस समय सहज भाव से करती हैं, जब विशिष्ट रूप से बनाये गये खाद्यान्नों का भोग देवी-देवताओं को लगाये बिना उन्हें बच्चों या वयस्कों को देना पड़ता है या ऐसा प्रसंग आता है।

**१·३ नठिया**—(क) कुत्सार्थक शब्द है। अन्य पुरुष के सर्वनामों के अनन्तर प्रयुक्त होने पर यह शब्द अर्थ की दृष्टि से उनके विशेषण का कार्य करता है, यद्यपि रूप और स्थिति की दृष्टि से इसका प्रयोग संज्ञावत् है। अन्यत्र वह स्वतन्त्र रूप से अव्यय की भाँति प्रयुक्त होता है और वाक्य के बीच में आकर भी उसके किसी अंश से संबंध न रखता हुआ केवल मन का क्षोभ-रोष प्रकट करता है।

---

१. शब्दों के पहले लगाये गये विशेषणों का संबंध वस्तुतः 'शब्दों' से कितना है, इसके सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण रहना चाहिए। यहाँ 'गन्दे' विशेषण वस्तुतः शब्दों के लिए नहीं है क्योंकि शब्द तो ध्वनियों के समूह-मात्र हैं, उनकी अपनी गन्दगी कैसी ! यहाँ यह समझना चाहिए कि परंपरानुसार इन शब्दों से जो अर्थ और प्रक्रियाएँ संबंधित हैं, वे गन्दी हैं और ये प्रक्रियाएँ भी 'गन्दी' इसी आशय में कही जा सकती हैं कि परम्परानुसार इन्हें गन्दा माना जाता है।

२. इस कहावत में 'धिगरन' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'छिनरन' या 'छिनरा' (चरित्रहीन) का प्रयोग होता है।

(ख) इससे बननेवाले अन्य शब्द हैं—नठियइला, नठियइली, नठियागाड़ा, नठियागाड़ी। इनका प्रयोग संज्ञापदों की भाँति ही होता है।

१·४ **नासिकाटा**— (क) यह शब्द 'नठियागाड़ा', 'बरिगइला' आदि की भाँति व्यवहृत होता है; किन्तु इसमें रोष की मात्रा की कहीं अधिक व्यंजना होती है।

(ख) इसका स्त्रीलिंग 'नासिकाटी' है। इस शब्द का सम्बन्ध 'नाश' के साथ है, इसलिए इसका व्यवहार भी पारिवारिक व्यक्तियों के लिए कम ही होता है।

१·५ **बटोन्ना**—(क) सब 'बटोर लेने' (नष्ट कर देने) का भाव इसमें है, अतएव अपने परिवार के व्यक्तियों के लिए इसका प्रयोग अशुभ माना जाता है। दूसरों के लिए भी यह तीखा शब्द है। इसका प्रयोग प्रायः बालकों के लिए होता है।

(ख) स्त्रीलिंग शब्द 'बटोन्नी' भी प्रचलित है।

१·६ **बरिगइला**—(क) यह शब्द भी रोष-क्षोभ प्रकट करने के लिए संज्ञा की भाँति प्रयुक्त होता है।

(ख) 'बरिगइली' इसका स्त्रीलिंग रूप है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस शब्द की रचना 'बरब्' क्रिया (जलना) में स्वार्थे 'इल्ल' प्रत्यय[1] के योग से हुई है। इस शब्द का अर्थ है—जो 'जल गया है' और इसलिए मूल्यहीन हो गया है। 'बरैं जाय'[2] अनुक्रम से भी इसी भाव की अभिव्यक्ति होती है, यद्यपि इसका स्वरूप अधिक व्यापक है। इस अनुक्रम से रोष, क्षोभ, दुःख, घृणा, आश्चर्य और सहानुभूति के अतिरेक की व्यंजना होती है। पश्चात्ताप तथा भावुक उदासी में भी इसका व्यवहार होता है। 'बरैं जाय' का वैकल्पिक रूप 'बरिगा जाय' है, यद्यपि रूप की दृष्टि से इनमें काल-भेद प्रतीत होता है। संक्षेप में केवल 'बरैं' का प्रयोग भी मिलता है। उदा० यू कामु बरैं हमते नहीं होत।

१·७ **बेढ़उना**—(क) कुत्सार्थक शब्द है। इसका प्रयोग भी संज्ञा की भाँति होता है।

(ख) 'बेढ़उनी' इसका स्त्रीलिंग रूप है।

व्याकरणिक प्रयोग-भेद के साथ इस भाव की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप होता है—'ब्याढ़ैं जाय'। इसका वैकल्पिक रूप 'ब्याढ़न के जाय' भी मिलता है।

१·८ **भतारकाटी** —'भतार' शब्द का अर्थ पति है; किन्तु यह सम्मानपूर्ण[3] शब्द नहीं (स्त्री के पक्ष में; पुरुष के पक्ष में नहीं) है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री को गाली देते हुए स्वयं को उसका 'भतार' घोषित करता है तो यह गाली और असम्मान स्त्री के लिए ही है। इस प्रकार की गाली स्त्री-पुरुष दोनों दे सकते हैं; किन्तु 'भतारकाटी'

---

१. डा० बाबूराम सक्सेना, द सफिक्स—वाला इन एन० आई० ए०।

२. बरैं जाय जानैं बरि आयू तुम कहिका।

—चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका', फुहार, पृ० ११।

३. 'भतार' की भाँति 'खसम' शब्द भी असम्मानजनक है और अर्थ उसका भी 'पति' ही है।

केवल स्त्रियों का शब्द है। इसमें 'काटी' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभवतः इसका अर्थ होगा—'जिसने भतार को काट डाला है'। इस प्रकार की दूसरी गाली 'राँड़' है। या 'भतार के द्वारा काटी गयी' भी अर्थ हो सकता है जिसका तात्पर्य होगा 'जिसका कौमार्य भतार द्वारा खंडित किया जा चुका है'।

**१·६ मरिगइला**[1]—(क) यह शब्द भी 'बरिगइला' की भाँति प्रयुक्त होता है।

(ख) 'मरिगइली' इसका स्त्रीलिंग रूप है। इसका अर्थ है—'जो मर गयी है'।

अप्रसन्न होने पर स्त्रियाँ अपने पारिवारिक व्यक्तियों के लिए उपर्युक्त गालियों का व्यवहार करती हैं; किन्तु इस गाली का व्यवहार नहीं करतीं। इसका कारण यह है कि मुँह से 'मरना' शब्द का उच्चारण अपने लिए या अपने संबंधियों के लिए अशुभ माना जाता है। 'नठियइला' और 'अरिगइला' शब्द का अर्थ भी बहुत-कुछ यही है; किन्तु इनके अर्थ की चेतना लोगों को नहीं है। दूसरे, इन शब्दों का प्रयोग उतना अशुभ माना भी नहीं जाता। मामा-मामी और भांजे-भांजी इस गाली का व्यवहार परस्पर करते हैं क्योंकि उनमें मरने की बात लेकर विनोद करने की प्रथा है।

## २. संबोधन

**२·१ ओ͡री, वरी**—(क) यह समवयस्क स्त्रियों में परस्पर व्यवहृत होने वाला शब्द है। इसका प्रयोग घनिष्ठता का द्योतक है। समीपस्थ स्त्री के लिए ही इसका व्यवहार होता है। इस शब्द के बाद संबोधित व्यक्ति की सूचना देने वाली किसी संज्ञा का प्रयोग नहीं होता; यह शब्द अकेले ही आता है। उदा ओ͡री, तुम तौ कहती रहौ कि······।

(ख) जब इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता, बाद में संबोधित व्यक्ति की सूचना देने वाली किसी संज्ञा का प्रयोग भी होता है तब यह शब्द केवल स्त्रियों की संपत्ति नहीं रहता। यहाँ केवल संबोधन अभीष्ट नहीं होता वरन् उद्दिष्ट व्यक्ति का ध्यान वस्तुतः खींचना होता है। इसीलिए इस रूप में इसका व्यवहार किसी दूरस्थ व्यक्ति को पुकारने के लिए हो सकता है। उदा० ओ͡री बिटेवा !

**२·२ गो͡इयाँ**—किशोरावस्था तक लड़कियाँ अपनी घनिष्ठ सहेलियों को 'गो͡इयाँ' कहती हैं।

**२·३ बच्ची**—(क) यह समवयस्क स्त्रियों में परस्पर व्यवहृत होने वाला शब्द है। इसका प्रयोग घनिष्ठता का द्योतक है। समीपस्थ स्त्री के लिए ही इसका व्यवहार होता है।

(ख) 'ओ͡री' शब्द जीवन भर चलता रह सकता है, किन्तु 'बच्ची' वृद्धावस्था में व्यवहृत नहीं होता।

---

१. 'मरगिल्ला' और 'मरगिल्ली' रूप की दृष्टि से 'मरिगइला' और 'मरिगइली' के संकुचित तथा संक्षिप्त रूप प्रतीत होते हैं; किन्तु अर्थ की दृष्टि से इनमें भेद है। 'मरगिल्ला' का अर्थ है—'मरने के निकट' या 'मरा-मरा-सा' अर्थात् 'अत्यंत क्षीण और कृश'।

(ग) 'बच्ची' के स्थान पर 'बच्ची लउवा' शब्द का प्रयोग भी होता है। इसका पुंल्लिग रूप 'बच्चा लउवा' तो प्रचलित है, किन्तु 'बच्ची' के उपर्युक्त अर्थ के समानान्तर अर्थ में 'बच्चा' शब्द नहीं प्रयुक्त होता।

### ३. आवेगी शब्द

३·१ **अइ**—(क) 'अरे' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु 'अरे' अकेले आ सकता है, जब कि 'अइ' के बाद एक शब्द अनिवार्य रूप से और जोड़ना पड़ता है। 'अरे' शब्द से जिस विस्मय की सूचना मिलती है, उसकी व्यंजना के लिए स्त्रियाँ या तो 'अरे !' शब्द का ही प्रयोग करती हैं या 'अइ' में एक शब्द का योग करके 'अइ दइया !' कहती हैं। अन्यत्र 'अइ' शब्द अपने बाद 'हाँ'—'नाहीं' ले सकता है या कोई स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द।

(ख) भय, हर्ष, सहानुभूति, आश्चर्य में यह शब्द आता है। शोक में 'अरी' का प्रयोग होता है; जैसे—अरी मोरी बिटिया !

(ग) पुरुषों की बोली में 'अइ' का स्थान सर्वत्र 'अरे' (कुछ स्थलों पर वैकल्पिक रूप से 'अरी') शब्द ले लेता है।

३·२ **दइया**—(क) शोक, भय, आश्चर्य, जुगुप्सा आदि अनेक भावों की अभिव्यक्ति इस शब्द से होती है। इसके पहले और बाद सहायक शब्दों का प्रयोग भी संभव है; जैसे—अइ दइया ! दइया रे ! हाय दइया रे !

(ख) 'दइया' का आवृत्तिमूलक प्रयोग भी इन्हीं स्थितियों में होता है; किन्तु 'दइया दइया' के बाद में बिलकुल, और पहले प्रायः, सहायक शब्दों का व्यवहार नहीं होता। हाँ, बीच में 'रे' का योग हो सकता है, जिससे इस शब्द का उच्चरित रूप 'दइयर दइया' हो जाता है। कभी-कभी इसके पहले 'अरे' लग जाता है। आश्चर्य और जुगुप्सा में 'यद्दइया' का प्रयोग भी मिलता है।

(ग) विशेषण के रूप में इसका प्रयोग एक ही प्रकार से होता है, 'बड़ी मुश्किल से' के अर्थ में व्यवहृत अनुक्रम 'दइया दूखन क' में।

(घ) पीड़ा में, विशेषतः किसी बीमारी में पुरुषों[1] के मुंह से भी जब-कब 'दइया' शब्द का प्रयोग सुना जा सकता है; यद्यपि ऐसे अवसरों पर भी वे अधिकतर 'अरे राम !' का प्रयोग ही करते हैं।

४. कुछ गालियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों कर सकते हैं, किन्तु जो लक्ष्य स्त्रियों को ही बनाती हैं।

४·१ कुछ गालियों में ऊपर के कुछ उदाहरणों के अनुसार ही किसी प्रकार की हानि-कामना की प्रवृत्ति होती है। 'राँड़' शब्द गाली के रूप में प्रयुक्त होकर किसी स्त्री

---

१. मुल्ला दाऊद के काव्य 'लोरकहा' (पृ० ३२) में लोरिक विलाप में 'दइया' कहता है। यह आजकल स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। देखिए—कउन पाप दइया हउँ पाएउँ !

को विधवा करने की कामना प्रकट करता है। इसका संबोधन का रूप 'रंडो' हलकी गाली है जो दुलार में छोटी लड़कियों के लिए प्रयुक्त होती है।

४·२ दूसरी प्रवृत्ति तुलना की है। गाली देकर हम किसी व्यक्ति की समता कल्पित या यथार्थ कुरूप, अपवित्र और भोंडे जीवों या पदार्थों से करते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

(क) **चकत्ता**—आराम-पसन्द स्त्री या बालिका के लिए प्रयोज्य जो घूमती-फिरती रहती हो या काम से जी चुराती हो। उदा० बइठी हौ चकत्ता अइसी ! घूमि आई चकत्ता असि !

(ख) **चुड़ैल**—यह गाली बहुत उग्र नहीं मानी जाती। दुलार में सम्बन्धी तथा अपनी बेटियों के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। संबोधन का रूप 'चुड़ैलो' तो ऐसे ही प्रसंगों में आता है। सामान्य रूप से वाक्य में प्रयुक्त होने पर यह शब्द संबंधित बालिका के प्रसाधन की अस्त-व्यस्तता अथवा (उससे अपना कोई निकट संबंध न हो तो) शारीरिक कुरूपता का द्योतन करता है।

(ग) **डाइनि**—यह गाली उग्र है। कर्कशता और बुरे स्वभाव के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'डाइनि' का कल्पित स्वरूप भी 'चुड़ैल' से भयानक माना गया है।

(घ) **भूतिनि**—'चुड़ैल' के समकक्ष ही है; किन्तु इस शब्द का व्यवहार अपेक्षाकृत कम होता है।

४·३ हानि-कामना तथा तुलना की प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ गालियों में स्त्रियों के चरित्र एवं व्यक्तित्व पर आक्षेप करने की भावना रहती है।

(क) **छुतेहर**—नाश-जैसे आशय से संबद्ध न होने के कारण इसे अशुभ नहीं माना जाता; फिर भी यह अपेक्षाकृत तीखी गाली है, इसलिए इसका प्रयोग परिवार में अधिक नहीं होता। इसका अर्थ है 'छूत लगाने वाली'।

पुंल्लिग रूप 'छुतिहा' परिवार में इसकी अपेक्षा अधिक मिलता है।

(ख) **छोलहँट**—यह भी छुतेहर-जैसी तीखी गाली है।

(ग) **सरख्याल**—उतनी तीखी गाली नहीं है। चरित्रगत चंचलता का संकेत इससे मिलता है।

(घ) **हरजाई**—अनेक व्यक्तियों से अनैतिक संबंध रखने वाली।

५. उपर्युक्त गालियाँ स्त्रियों के लिए हैं। पुरुषों को तुलनात्मक आधार पर 'गदहा' कहा जाता है। यह शब्द सामान्य रूप से मूर्खता की सूचना देता है; किन्तु गाली देने में उसका पूरा-पूरा आशय यही नहीं होता। 'ढोरु' (पशु) दूसरा गाली का शब्द है। शिक्षित लोग 'बे', 'साले', 'बेवकूफ', 'सुवर', 'नालायक' आदि शब्दों का व्यवहार भी अपनी गालियों में करते हैं।

६. गालियों के बाद कभी-कभी कुछ सहायक शब्द भी जोड़ दिये जाते हैं। इनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—नहिं तै, कहूँ क्यार, कहूँ केरि, कहूँ कै आदि।

७. यह बात ध्यान रखने की है कि गालियाँ गालियाँ ही हैं, किसी अर्थ को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त सोद्देश्य साधन नहीं। कुछ भावों की अभिव्यक्ति के लिए ये शब्द परम्परानुसार प्रचलित हैं, अतः इनका प्रयोग होता रहता है। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से अधिकांश शब्दों के अपने अर्थ हैं; किन्तु गाली देते समय कोई व्यक्ति इनके अर्थ पर ध्यान नहीं देता। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें गाली देने वाला व्यक्ति दूसरे को गाली देता हुआ भी अज्ञानवश अपने आपको गाली दे रहा होता है। कुछ गालियों में अर्थ पर ध्यान दिया जाता है, जैसे मामा-भांजे में अथवा साले-बहनोई में। किन्तु ये गालियाँ उस कोटि की गालियाँ नहीं हैं। इनमें किसी मनोभाव की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति नहीं होती। केवल विनोद करने के उद्देश्य से इन्हें अपनाया जाता है। इसलिए ये व्यंग्य-वार्तालाप का ही एक अंग बन जाती हैं।

८. शौच जाने के लिए 'बहिरे जाबु' और 'झाड़े जाबु' का प्रयोग स्त्रियों के प्रसंग का है। पुरुषों के संदर्भ में 'बहिरे' और 'झाड़े' नहीं आते।

## (ख) वय के अनुसार

बैसवाड़ी क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र है। यहाँ जीवन-प्रवृत्तियों में विशेष परिवर्तन नहीं होता। लोग बचपन से ही अपना व्यवसाय सीखने लगते हैं और मृत्युपर्यन्त उसी में लगे रहते हैं। ऐसी कल्पना हो सकती है कि आशीर्वादात्मक शब्दावली वयस्कों की होगी और इस विषय में आयुगत भेद होगा, किन्तु ऐसा नहीं है। 'पाँय छुई', 'पाँय लागी', 'खुस रहौ', 'बने रहौ' का व्यवहार वय का नहीं, जाति का बोध कराता है। अभिवादन के प्रथम दोनों उदाहरण ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त होते हैं जिन्हें किसी इतर जाति के वृद्ध व्यक्तियों के मुँह से नवयुवकों के लिए भी सुना जा सकता है। यह शब्दावली केवल ब्राह्मणों के अंदर वय का अनुसरण करती है। अन्य जातियों में अपने जातीय बंधुओं और संबंधियों में इनका व्यवहार नहीं होता। हाथ से पैर छूने की पद्धति भी अपवाद रूप से मिलती है। इन जातियों में 'राम-राम' और 'जै रामजी की' अत्यंत व्यापक अभिवादन हैं। गालियों या ईश्वर-भक्ति के संबंध में भी बैसवाड़ी शब्दावली वय का अनुसरण नहीं करती। हाँ, संबोधन के संबंध में एक बात उल्लेखनीय है। प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में पति-पत्नी एक-दूसरे को प्राय: 'बुढ़ऊ' और 'बुढ़ेऊ' या 'बूढ़ा' कहकर संबोधित करने लगते हैं। इस अर्थ और प्रसंग में इन शब्दों का प्रयोग युवावस्था तक नहीं होता।

बचपन में अवश्य ही दो प्रवृत्तियाँ ऐसी मिलती हैं, जिनका सम्बन्ध वयस्कों से नहीं होता। पहली प्रवृत्ति बच्चों के अपने खेलों की है और दूसरी प्रवृत्ति है पढ़ने की। वयस्कों की पढ़ाई में बच्चों की पढ़ाई के उपकरण नहीं रहते। इन दोनों प्रवृत्तियों से संबंधित शब्दावली पर नीचे विचार किया जायगा।

### १. खेल तथा उनसे संबंधित शब्द

#### १·१ खेलों के नाम

(क) **कनबुच्ची, कानबुच्ची**—एक दूसरे के कान पकड़कर हिलाना।

**(ख) गुच्चीपारा**—एक छोटा-सा गड्ढा (गुच्ची) बनाकर और एक रेखा (पारा) खींचकर खेला जाने वाला खेल।

**(ग) गुलहा**—इस खेल में पेड़ के नीचे खड़ा हुआ लड़का इस बात का प्रयत्न करता है कि वह पेड़ पर चढ़े हुए किसी लड़के को छू ले और वे कूदकर नीचे रक्खे हुए डंडे को न छू पावें। 'डंडहल' शब्द भी मिलता है।

**(घ) गोली**—इसमें पत्थर या लाख की गोलियाँ खेली जाती हैं।

**(ङ) चाईं माईं**—बच्चे को हाथों से उठाकर चारों ओर चक्कर खिलाना या बच्चे का स्वयं ही नाचना।

**(च) चूँघोड़ा**—एक लड़का 'घोड़ा' बनता है और दूसरा 'चूँ' करता हुआ दौड़ता है।

**(छ) छुई छुवल्ला**—दौड़कर एक-दूसरे को छूने का खेल। इस संज्ञा में 'छुवबु' क्रिया के परिवर्तित रूप का आवृत्तिमूलक प्रयोग हुआ है। ऐसे उदाहरण बैसवाड़ी में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जैसे—'बइठी-बइठा' 'नहाई-नहावा' 'चली-चला' आदि। किन्तु 'छुई-छुवल्ला' में जुड़े हुए अंत्य प्रत्यय के दूसरे उदाहरण नहीं मिलते।

**(ज) डुडुवा**—इसका दूसरा नाम 'कबड्डी' है। इसमें एक ओर के खिलाड़ी दूसरी ओर जाने पर 'डुडुवा-डुडुवा' 'डू-डू-डू' या 'कबड्डी-कबड्डी' कहते जाते हैं। 'छैल कबड्डी आल-ताल; मेरी मुच्छै लाल-लाल' तथा 'छैल कबड्डी बड्डी बड्डी······' भी कहा जाता है।

**(झ) तासैं**—ताशों का खेल। ताशों को 'पत्ता' भी कहते हैं।

**(ञ) पड़री**—इस खेल में एक लड़का 'पड़री-पड़री······' बोलता रहता है।

**(ट) बजल्ला** १. इस खेल में दो खिलाड़ी परस्पर हाथ जोड़े स्थान पर नाचते रहते हैं।

२. चाँदनी रात में जुते खेत में खेला जाने वाला कबड्डी-जैसा खेल।

**(ठ) लुकी लुकउवलि**—इस खेल में बच्चे छिपते ('लुकबु') हैं।

**१·२　खेलों में व्यवहृत होने वाले शब्द**

**(क) अंडोस**—भगे हुए लड़कों को एक लड़का छूकर 'चोर करना' चाहता है। ये लड़के उससे बचकर किसी पूर्वनिश्चित स्थान को छूकर 'अंडोस' कह देते हैं। इसके बाद उन्हें छूना व्यर्थ हो जाता है। इस स्थान को भी 'अंडोस' कहा जाता है। 'अंडोस' दीवाल पर बनाया जाता है और उसकी आकृति अंडाकार होती है।

**(ख) अक्खा**—गोली के खेल में जिस बार मुँदी 'आँख' पर गोली रखकर फेंकी जाती है, उसे 'अक्खा' कहते हैं।

**(ग) अड्डा**—अँगूठे को ऊपर उठाने और हाथ के बाहर की ओर झुकाने से उसके पास एक गड्ढा-सा बन जाता है। जिस बार इसमें गोली रखकर फेंकी जाती है, उसे 'अड्डा' कहते हैं। जिस स्थान पर गोली गिरती है, यदि उसे वैध मानना हो तो

गोली फेंकने के पहले 'गुद्' कह दिया जाता है। गिरने के बाद गोली 'बहकर' जहाँ तक जाय, यदि उसे वैध मानना हो तो पहले 'बहो' कह देते हैं।

(घ) **आँट**—गोली को टीपने के पहले बच्चे उँगलियाँ चिटकाते हैं। इसे 'आँट चिटकाव्बु' कहते हैं। यदि गोली निशाने पर होती है तो कहते हैं कि गोली 'आँट पर' है।

(ङ) **ओद्दा झुर्रा**—'वाद' (गीला) और 'झूर' (सूखा) के परिवर्तित रूपों के योग से यह संज्ञा बनी है। किसी गिट्टी को, एक ओर गीला करके और दूसरी ओर सूखा छोड़कर, उछाल दिया जाता है। दोनों खिलाड़ी-दल इसका एक-एक पक्ष अपने लिए निर्धारित कर लेते हैं। गिट्टी गिरने पर जो भाग ऊपर होता है, उसे अपने लिए निश्चित करने वाले दल को पहले खेलने का अवसर मिलता है।

इस प्रकार यह शब्द अपने संघटक अंशों के अर्थ की समग्र व्यापकता स्वीकार न करके उन्हें इस विशेष प्रक्रिया तक सीमित कर देता है।[1]

(च) **कोट पीस**—ताश के जिस खेल में 'कोट' और 'पीस' होती है।

(छ) **गोइयां**—खेल में प्रत्येक खिलाड़ी अपने दल के प्रत्येक दूसरे खिलाड़ी का 'गोइयाँ' होता है।

(ज) **चाली**—गोली चलने या गोटी बढ़ाने की बारी।

(झ) **च्वार होबु**—हारना या भाग्य आजमाने पर फिसड्डी रह जाना। कबड्डी आदि खेलों में जो लड़का छू जाने पर अलग कर दिया जाता है, उसके लिए 'च्वार होबु' या 'मरबु' का प्रयोग होता है।

(ञ) **छाँड़ी**—'छाँड़बु' क्रिया से साधित संज्ञा है। शब्द-रचना के ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे, जिनमें इस प्रत्यय का योग हो।[2] यह शब्द केवल खेल में प्रयुक्त होता है।[3] जब कोई खिलाड़ी 'पारनिकरवलि' में पकड़ा जाता है और शक्ति लगाकर अपनी असमर्थता से अवगत हो जाता है तो शरीर की दुर्दशा न होने देने के लिए 'छाँड़ी' कहता है। यह अपनी पराजय की स्वीकृति है।

(ट) **छुवाई**—'छुवाव्बु' क्रिया का संज्ञा-रूप। इसका प्रयोग एक ही प्रकार से होता है—'छुवाई न दीन्ह्यों'! जिसका भावार्थ है—अपने आपको दूसरे के द्वारा छू लिए जाने का अवसर न देना!

(ठ) **टंप**—ट्रंप कार्ड। इसे 'रँग' भी कहते हैं।

---

१. इसी वजन का विकार 'घम्माँ-छँइयाँ' में है, किन्तु इसके अर्थ की दिशा दूसरी है। यह शब्द किसी विशेष प्रक्रिया की सूचना नहीं देता बल्कि ऐसे मौसम या ऐसी स्थिति की सूचना देता है जब 'धूप' और 'छाँह' दोनो सुलभ हों।

२. 'कहा-सुनी' के 'सुनी' संघटक में भी 'ई' प्रत्यय है, किन्तु वह ('छाँड़ी-छुट्टा' की भाँति) 'कहा' के साथ ही प्रयोज्य है।

३. सामान्य व्यवहार में यह शब्द 'छुट्टा' के साथ ही ('छाँड़ी-छुट्टा') आता है। 'छाँड़ी-छुट्टा' का अर्थ है—'संबंध-विच्छेद'।

**(ड) टीपबु**—निशाना लगाकर पीट देना। इस प्रक्रिया में दक्ष बालक को 'टिपारी' या 'टिपारू' कहते हैं। किसी गोली या गोटी आदि को टीपने के लिए 'लगबु' तथा 'मारबु' क्रियाओं का प्रयोग होता है।

**(ढ) ठहबु**—(गोली को) जोर से मारना। इसी अर्थ में 'ठहिकै' मारबु' का भी प्रयोग होता है।

(ण) **ठेन**—फेंकी हुई गोली को जाने-अनजाने 'अंड़िया' पर रखी गोली से टकरा देना 'ठेन मारबु' और उसका टकरा जाना 'ठेन लागबु' है। जिससे 'ठेन' लगती है, उसका दाँव छिन जाता है; किन्तु 'ठेन' लगते ही 'ठेन-मेन की चंगै गोली' कह देने से ऐसा नहीं होता।

**(त) डोकरी**—छूने के लिए चुनौती का शब्द।

**(थ) थुड़ू**—जिस हैसियत में कोई बच्चा खेल रहा है, उसे थोड़ी देर छोड़ने के लिए वह 'थूड़ू' या 'हमरी थुड़ू हैं' कहता है। यदि छू लिए जाने पर उसके 'चोर' बन जाने की संभावना हो तो यह शब्द कह देने पर छूने का उक्त प्रभाव न होगा। आपत्ति में (काँटा आदि चुभने) या घर में किसी के बुलाने पर अथवा विरोधी दल के किसी कार्य के औचित्य की जाँच-पड़ताल आदि के लिए यह पद्धति अपनायी जा सकती है, यों नहीं।

'थूकच्ची' शब्द का प्रयोग भी इसी अर्थ में होता है।

**(द) थूपक्की**—'थुड़ू' का प्रभाव समाप्त करने के लिए, खेल में पुनः सक्रिय होते समय इसका या 'हमरी पक्की हैं' (या 'हमारि पक्की') का प्रयोग होता है।

**(ध) दाँव देबु**—जिस बालक या समूह की खेलने की बारी होती है, उसे विपक्ष का इसके लिए लिए अवसर देना।

**(न) पदबु**—हारा हुआ लड़का जीते हुए लड़के को खिलाता है। इसे 'पदबु' कहते हैं। बहुत पदने, हारने या पीछे रह जाने वाला लड़का 'फुसड्डी' कहलाता है।

**(प) पदाब्बु**—उक्त प्रक्रिया जीते हुए लड़के के पक्ष में 'पदाब्बु' है। यह प्रेरणार्थक रूप दो क्रियाओं का है, इसलिए 'पदबु' की अपेक्षा अधिक व्यापक है। पदबु / पादबु > पदाब्बु

**(फ) पारनिकरवलि**—यह संज्ञा दो धातुओं के योग से बनी है—'पार' और 'निकरबु'। कबड्डी में 'सँकटुरवलि' की पूरक व्यवस्था यह है। यदि कोई खिलाड़ी दूसरे दल में पकड़ा जाय तो उसे अपनी शक्ति लगाकर पार निकलना होता है। 'सँकटुरवलि' और 'पारनिकरवलि' के प्रथम संघटक शब्द व्याकरणिक कोटि की दृष्टि से परस्पर भिन्न हैं; किन्तु संघटित शब्दों का गठन एक ही प्रकार का है।

**(ब) पारा उतरबु**—कुछ खेलों में कोई दल जितनी बार हारता है, उस पर उतने ही 'पारा चढ़े' कहे जाते हैं। पराजित होकर विजयी दल को खिलाना, स्वयं 'पदबु' ही 'पारा उतरबु' है।

---

१. पूर्वी अवधी में (रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', अवधी शब्दकोश, पृ० १०८) यह रूप इसी अर्थ में प्रचलित है; किन्तु वहाँ इसका क्रिया-रूप नहीं मिलता।

**(भ) पीस**—'पीसबु' क्रिया से संबंधित संज्ञा है। ताश के खेल में जो खिलाड़ी हारता है, वह ताश बाँटता है। ताश बाँटने के पहले उन्हें 'फेंटने' और 'मिलाने' को 'पीसबु' कहते हैं। 'पीसबु' के केवल इसी अर्थ का वहन यह संज्ञा करती है।

**(म) पोस**—कोई ताश भूल से चल जाय तो उसे उठाने के लिए 'पोस' कहा जाता है। इसका रूप 'पत्तापोस' भी है।

**(य) बिकबु**—बाजार में अनेक वस्तुएँ बिकती हैं; किन्तु खेल का बिकना दूसरे प्रकार का होता है। यहाँ खिलाड़ी बिकते हैं और साधारण दृष्टि से देखा जाय तो उन्हें खरीदने वाला कोई नहीं होता। दो खिलाड़ी अलग जाकर अपने-अपने लिए कल्पित नाम 'हाथी' 'घोड़ा' आदि रख लेते हैं और आकर कहते हैं—'हम बिकि आएन'। इस प्रकार उनके 'बिक चुकने' के बाद उनकी खरीददारी (!) होती है और वह भी बिना मूल्य के। ऐसा कहा जा सकता है कि कल्पित नाम रखकर वे वस्तुतः बिक गये, अब निश्चय केवल इतना करना है कि कौन खिलाड़ी किसे दिया जायगा।

इस क्रिया का एक संज्ञा रूप है 'बीक'। यह बैसवाड़ी में अपने ढंग का अनोखा शब्द है। इस प्रकार की शब्द-रचना अन्यत्र नहीं मिलती।[1] इस शब्द का प्रयोग भी खेल के अतिरिक्त अन्य सामान्य प्रसंगों में 'बिकबु' के लिए नहीं हो सकता। इस शब्द का दूसरा अनोखापन है इसका परतंत्र और सीमित प्रयोग। यह समास में आश्रित रूप की भाँति ही प्रयुक्त होता है और व्यवहार में केवल 'गोइयाँ' शब्द के बाद (गोइयाँबीक) इसका योग मिलता है।

**(र) बिलबु**—'अँड़िया' में या उससे चार अंगुल की दूरी के भीतर आ जाने पर गोली 'बिलि गै' मानी जाती है।

**(ल) बिसबु**—खेल की गोलियों या गोटियों को वांछित स्थान पर रखना। 'बिटबु' तथा 'बिड़बु' इसके वैकल्पिक रूप हैं।

**(व) बेधरमान**—जो लड़का ईमानदारी से नहीं खेलता। 'बेधरमंटा' इस विशेषण का दूसरा रूप है जिससे लघुता, स्नेह या बालोचित रोष की आपेक्षिक अधिकता प्रकट होती है। 'बेधरमंटी' इसका स्त्रीलिंग विशेषण और भाववाचक संज्ञा है। स्त्रीलिंग विशेषण-रूप में वह 'बेधरमंटिन' और भाववाचक संज्ञा-रूप में 'बेधरमंटई' भी हो जाता है। 'बेधरमानी' 'बेधरमान' का भाववाचक संज्ञा-रूप है; स्त्रीलिंग विशेषण 'बेधरमान' या 'बेधरमानिन' होगा।

**(श) मनउना**—गोली को पीट-पीटकर अपने पाले तक ले आना। यह क्रिया 'गोली मनाउब' है। 'अँड़िया' वाले खेल में जो लड़के सात बार प्रयत्न करना चाहते हैं, वे पहले ही कह देते हैं—अँड़िया पर के सात मनउना।

---

१. 'पीस' संज्ञा भी ऐसी ही है, किन्तु 'बिक 7 बीक' की भाँति इसमें मात्रा-वृद्धि नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त, 'बिक' व्याकरणिक कोटि-परिवर्तन के साथ 'बेंच' या 'ब्यांच' भी बनता है।

(ष) **महन्तुर**—कुछ खेलों में दो पक्षों के दो खिलाड़ी किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए बिठा दिये जाते हैं, ये 'महन्तुर' कहलाते हैं। 'गोइयाँबीक' में ये लोग ही क्रेता होते हैं, और सारे खिलाड़ी बिक-बिककर इनके पास आते हैं। 'पड़री' खेल में ये लोग बैठकर अपनी लम्बी साँस से अपने-अपने खिलाड़ियों को दूर तक भागने का अवसर देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर 'हत्थी' भी इन्हीं की ली जाती है।

(स) **रँउतियाँ**—खेल में की जानेवाली बेईमानी।

(ह) **लँगड़ी**—एक पैर उठाकर दूसरे पैर से उछल-उछलकर चलनेवाला खेल। इस खेल के लिए तैयार होने में एक पैर को उठा लेने की स्थिति के लिए भी 'लँगड़ी' शब्द भाववाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है। इस स्थिति को भंग करना 'लँगड़ी टूरबु' है।

(क्ष) **लेंड़ु**[1]—मल का पिंड। किसी बच्चे पर जितनी हारें होती हैं, कुछ खेलों में उस पर उतने ही 'लेंड़' चढ़े कहे जाते हैं।

(त्र) **सँकटूरवलि**—यह संज्ञा दो धातुओं के योग से बनी है—'साँक' (साँस) और 'टूरबु' (तोड़ना)। कबड्डी में सामान्यत: एक साँस के रहने तक ही विरोधी दल में ठहरा जा सकता है; किन्तु 'सँकटूरवलि' की व्यवस्था होने पर यह बन्धन नहीं रहता।

(ज्ञ) **साँस होबु**—कुछ खेलों में एक बालक कुछ बोलता है। जब तक वह एक ही साँस में सतत बोलता रहता है, तब तक कहा जाता है कि उसके 'साँस है'।

(श्र) **हत्थी**—यह संज्ञा शब्द 'हाथ' का परिवर्तित रूप है। कई क्रियाओं के साथ इसका प्रयोग होता है। 'हत्थी लेबु' खेल का अनुक्रम है। कुछ खेलों में 'अंडोस' के स्थान पर अपने किसी निश्चित खिलाड़ी का हाथ छुआ जाता है, जो एक निश्चित स्थान पर बैठा रहता है। यह क्रिया 'हत्थी लेबु' है।[2]

### १.३ खेलों में व्यवहृत होनेवाली वस्तुएँ

(क) **गिप्पल**—यह सिक्कों की आकृति का होता है और किसी वस्तु (गोली आदि) को टीपने के काम आता है। गिप्पल अधिकतर गिट्टी (मिट्टी के पक्के बर्तन

---

१. हारे हुए लड़कों के लिए इस प्रकार के गंदे शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति खेलों में मिलती है। 'पदबु' क्रिया का सम्बन्ध 'अपान वायु' से है। 'बावनियाँ कोटु' का वैकल्पिक शब्द 'गूँहाँ कोटु' है।

२. 'हत्थी मिलाव' या 'हत्थी देव' का प्रयोग छोटे बच्चों या सिखाये हुए कुत्तों को हाथ मिलाने के लिए प्रेरित करते समय होता है। 'हत्थी मारबु' एक व्यक्ति के हाथ पर दूसरे व्यक्ति का 'हाथ मारना' है। यह प्रक्रिया किसी बात की शर्त लगाने का एक ढंग है इसलिए 'हत्थी बदबु' का प्रयोग भी इसके लिए होता है।

का टुकड़ा) का होता है। कभी-कभी सिक्कों से भी काम चला लिया जाता है। इस प्रकार इस शब्द के अर्थ की दो प्रवृत्तियाँ हैं—

१. उक्त विशेष आकृति की गिट्टी जिसे खेल के प्रसंग के अतिरिक्त भी बच्चे 'गिप्पल' कहेंगे।

२. अन्य कोई भी वस्तु जो खेलते समय टीपने के काम आयगी और केवल उसी समय 'गिप्पल' कही जा सकेगी।

गोप्पल, बित्तल, मिर्रा, मीरा, लग्गा वैकल्पिक शब्द हैं।

**(ख) गुड़वा**—गुड्डा। लड़कियाँ खेलती हैं। 'गुड्डा' भी प्रचलित है।

**(ग) गुड़िया**—लड़कियाँ खेलती हैं।

**(घ) गुल्ली, अटई**—लकड़ी का टुकड़ा जिसके दोनों सिरे नुकीले होते हैं। यह 'गुल्ली-डंडा' के खेल में प्रयुक्त होती है।

**(ङ) गेंद**

**(च) गोटी, गोटं**—सुरबग्घी, सोरही, पचीसी आदि खेलों में रक्खे जानेवाले टुकड़े।

**(छ) गोट्टा**—छोटे-छोटे कंकड़ या पत्थर जिन्हें उछाल-उछालकर खेला जाता है। 'गिटका' वैकल्पिक रूप है। सम्बन्धित खेल की सूचना भी इसी शब्द से मिलती है। यह खेल लड़कियों का है।

कुछ लोग 'च' और 'छ' में भेद नहीं करते।

**(ज) गोली**—लाख, पत्थर या मिट्टी की गोली, जो खेली जाती है। गोली के विविध प्रकार इस भाँति हैं—

१. पथरउटी—पत्थर की गोली।

२. लखउटी—लाख की गोली। रंगीन और नक्काशीदार होने के कारण इसे 'चिरँउजी गोली' या 'चिंजा' भी कहते हैं।

३. ढोसु—लाख की बहुत बड़ी गोली। कुछ बच्चे इसे 'भंडोसु' कहते हैं।

४. बुल्ला—काँच को छोटी-सी गोली। अत्यन्त छोटा बुल्ला 'कंचा', 'किचा' या 'दंचा' भी कहलाता है।

**(झ) फिरंगी, बंगी**—चुटकी से मसलने पर नाचनेवाली फिरकी।

(ञ) हप्पा—हाकी की आकृति का लकड़ी का टुकड़ा। दक्षिण में प्रचलित शब्द है।

**१.४ खेलों में प्रयुक्त होनेवाले स्थान**

(क) **अँड़िया**—गोली खेलने के लिए 'एँड़ी' रखकर और पंजा घुमाकर भूमि पर बनाया हुआ 'अंड'।

(ख) गड़वा, गढ़वा—सामान्य प्रसंगों पर यह शब्द किसी प्रकार के गड्ढे के लिए प्रयुक्त हो सकता है। गुल्ली-डंडा खेलते समय एक विशेष प्रकार के गड्ढे की आवश्यकता होती है, अतः इस प्रसंग में इस शब्द से उसी का बोध होता है।

(ग) गुच्ची—खरिया के टुकड़े या पैसे आदि खेलने के लिए बनाया गया छोटा-सा गड्ढा। 'गुचिया' और 'गोचिया' वैकल्पिक रूप हैं। दक्षिण की ओर 'गोपिया' भी मिलता है।

(घ) घेरँउदा—घरौंदा।

(ङ) पारि—जमीन पर खींची हुई लकीर। खेल का नाम या प्रकार बताने में किसी अन्य शब्द के साथ इसका रूप 'पारा' मिलता है; जैसे—अँड़ियापारा, गुच्चीपारा।

(च) 'लेंगड़ी' खेल में जमीन पर खींच कर कुछ खाने बना लिये जाते हैं। इनके नाम क्रमशः निम्नलिखित होते हैं:—

१. एकला—पहला खाना।

२. दोकला—दूसरा खाना। 'एकला' में अन्तिम आबद्ध तत्व 'ला' है; किन्तु इसमें 'एकला' के सादृश्य पर 'कला' जोड़ा गया है।

३. सँकरी—तीसरा खाना। यहाँ से इन खानों का नामकरण क्रम के आधार पर नहीं किया जाता। 'सँकरी' का आकार सँकरा (पतला) होता है।

४. सँहितनवाँ—इस खाने में 'सँहिताने' (सुस्ताने='लेंगड़ी' तोड़ने) की सुविधा है।

५. गंगा—पाँचवाँ खाना। गंगा नदी के आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

६, जमुना—छठा खाना। यमुना नदी के आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

७. भंघोटना: सातवाँ खाना। यह शब्द 'भाँग घोटने' से बना है। इस क्रिया का खेल से या इस खाने से कोई संबंध नहीं है।[1] गंगा और यमुना नदी पर पहुँचकर भंग घोटकर पीने के दृश्य प्रायः दिखाई देते हैं, संभवतः इस तथ्य ने ऐसे नामकरण की प्रेरणा दी होगी।

८. बहिरी—यह अंतिम स्थान है जहाँ 'गिट्टी' फेंकी जाती है। 'बाहर' होने के कारण अथवा खिलाड़ी के 'बाहर' निकलने का साधन होने के कारण इसे 'बहिरी' कहा जाता है। इसे 'समुद्र' भी कहते हैं। 'समुद्र' की भाँति ही यह असीम होता है क्योंकि इसे अन्य खानों की भाँति चारों ओर से घेरा नहीं जाता। 'समुन्द्र' इसका वैकल्पिक रूप है।

### १.५ खेलों के क्रमसूचक शब्द

कौन खिलाड़ी सबसे पहले खेलेगा, यह तय करने के लिए कभी-कभी क्रम निश्चित करने की आवश्यकता पड़ती है। जो लड़का सबसे जल्दी 'पहिलि' कहता है, उसे सबसे

---

१. कभी-कभी बड़े और मोटे डंडे को 'भंघोटना' कहा जाता है।

पहले खेलने का अवसर मिलता है। क्रम-निर्धारण के लिए शीघ्रतापूर्वक बोले जाने वाले ये शब्द हैं :—'पहिलि, दोहोलि, तेहेलि, चौहलि' आदि। इनका प्रयोग 'हमारि पहिलि', 'पहिली हमारि'—जैसे अनुक्रमों में भी होता है, और 'हम दोहोली हन'–जैसे अनुक्रमों में भी।

इन शब्दों के कई वैकल्पिक रूप मिलते हैं। जैसे—द्वाली, दोल्ली तथा त्याली, तेल्ली।

**१·६ खेलों के पद्य**

इन खेलों में से कुछ के लिए पद्यात्मक रचनाएँ भी हैं जिनमें केवल दो बातें प्रमुख हैं—प्रवाह और तुक। इनके पूर्वांश प्रायः अर्थ-संगति से शून्य होते हैं, किन्तु अन्तिम भाग में सांकेतिक अर्थ की व्यंजना रहती है। यहां दो उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

(क) अक्को बक्को तीनि तिलक्को, लउवा लाठी बन कै टाठी, मेघ झूलैं मेघनियाँ झूलैं, सावन मास करँउदा फूलैं ॥ बाबा गेहें डिल्ली, सात कटोरा लाये हैं एक कटोरा फूटिगा, बाबा कै टाँग टूटिगै।

(ख) कच्छू की गंगा मँ बकबलिया।

इनमें से पहले पद्य का पूर्वांश कोई अर्थ-संगति प्रकट नहीं करता। उत्तरांश में अर्थ की सांकेतिक व्यंजना है, अत: उसमें तुक का निर्वाह नहीं किया जा सका। इससे प्रकट होता है कि तुक और अर्थवत्ता इन दोनों का युगपद निर्वाह अपेक्षाकृत कठिन है।

बच्चे अपने हाथों को पोला करके औंधे कटोरों की भाँति जमीन पर रखते हैं। इतने कटोरे (निश्चयात्मकता के भाव के लिए 'सात' संख्या दे दी) तभी आ सकते हैं जब बाबा 'डिल्ली' से खरीदकर लाएँ। जिस प्रकार कटोरा फूटता है और जिस प्रकार बाबा की टाँग टूटती है (विनोद के लिए), उसी प्रकार एक लड़के का हाथ जमीन पर टूटा-सा फैल जाय, इसके लिए अंतिम शब्द के साथ किसी लड़के के हाथ पर धीरे से घूंसा मार दिया जाता है।

इस पद्य के पूर्व भाग में आये हुए शब्द 'अक्को' और 'तिलक्को' का संबंध क्रमश: 'एक' और 'तीन' से है। अत: 'बक्को' दो का रूप[1] होना चाहिए। 'अकड़म पकड़म पड़ी जँजीर' में भी 'अकड़म' एक से आया हुआ प्रतीत होता है। 'पकड़म' का

१. हिन्दी तथा उसकी बोलियों में 'द्वि' का 'द्' भाग सबल हुआ और बैसवाड़ी में भी 'दुइ' बना। किसी-किसी भाषा में 'व्' भाग ने शक्ति पायी; जैसे गुजराती में 'बे' (दो) बना। संभव है 'बक्को' और 'बकड़म' का 'ब' किसी अन्य क्षेत्र से आया हो अथवा यहीं पर उस समय से सुरक्षित हो जब बैसवाड़ी-क्षेत्र में 'द्वि' के उक्त दोनों अंश शक्ति अर्जित करने के लिए स्पर्धा कर रहे हों। पूर्वी अवधी (रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', अवधी शब्दकोश, पृ० २८) में उक्त पद्य भिन्न रूप में मिलता है, लेकिन 'ब' उसमें भी विद्यमान है। देखिए—ओंका बोंका तीन तिलोका, लैया लाती, चंदन काती। 'बारह' (∠ द्वादश) इत्यादि में तो खड़ी बोली में भी 'व'–तत्व सुरक्षित है।

वैकल्पिक रूप कुछ स्थानों पर 'बकड़म' मिलता है जो कदाचित् अपेक्षाकृत पुराना रूप है ।[१] 'पड़ी' के 'प' ने 'ब' को प्रभावित करके अघोष बना दिया होगा, जिससे 'पकड़म' उपलब्ध हुआ है । स्वयं 'पड़ी' में 'ड़' की उपस्थिति पूर्ववर्ती 'ड़' ध्वनि की आवृत्ति का फल है । यह दोहरा प्रभाव न होता तो बैसवाड़ी क्रिया-रूप 'परी' का प्रयोग होता, 'पड़ी' का नहीं ।

दूसरे पद्य में बैसवाड़ी काव्य की सामान्य प्रवृत्ति मिलती है, जिसके अनुसार शब्दों के ऐसे परिवर्तित रूप बन जाते हैं जिनका प्रयोग बोलचाल में नहीं होता । 'कच्छू' 'कछुवा' शब्द का ऐसा ही रूप ('कच्छप' से इसकी निकटता देखिए । क्या यह भी प्राचीनता का द्योतक है ?) है । 'बकबलिया' अनुकरणात्मक शब्द है, जो पानी में डुबकी लगाने पर उत्पन्न होने वाली ध्वनि पर आधारित है ।

## २. पढ़ाई के शब्द

(क) घोंट्टा—'घ्वाटबु' से बनी संज्ञा है । जिस काँच से पाटी घोटते हैं, उसे 'घोंट्टा' कहा जाता है । 'घोटु' इसका वैकल्पिक रूप है ।

(ख) घ्वाटबु—काँच के सुडौल टुकड़े या शीशी को पाटी पर रगड़ना ताकि वह चिकनी हो जाय ।

(ग) छूही—खरिया मिट्टी । 'छुइहा' वैकल्पिक रूप है । इसे 'खड़िया-खढ़िया-खड़िहा-खढ़िहा' भी कहा जाता है ।

(घ) पोतना[२]—जिस कपड़े को तरल पदार्थ में भिगोकर पाटी (या दीवाल) आदि पोती जाती है ।

(ङ) पोतु, पोत्ता—पाटी पोतने के काम में आने वाली कोई वनस्पति ।

(च) प्वातबु—पाटी पर पानी में घुला पिसा कोयला या कोई वनस्पति रगड़ना ।

(छ) बुदिका, बुदिक्का, बोरका—जिस पात्र (प्रायः 'चोकरिया') में खरिया मिट्टी या कोयला घोला जाता है ।

(ज) भंडु—'शून्य' के लिए व्यवहृत विनोदात्मक शब्द ।

(झ) मंतरै—मात्राएँ ।

---

१. 'ब'-तत्व का संबंध 'दो' से मानने का एक प्रमाण और है । 'बासी' शब्द बैसवाड़ी में खाने के प्रसंग में खड़ी बोली की भाँति सामान्यतः 'पुराने' का अर्थ देता है; किन्तु 'बासी-तेवासी' में वह 'दूसरे दिन का पुराना' बन जाता है, तभी 'तेवासी' 'तीसरे दिन का पुराना' बनता है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी 'बासी' का 'ब' 'द्वि' के 'व' का रूप (बासी < द्विदिवसीय) है । कहीं-कहीं 'अगड़म-बगड़म' रूप भी मिलता है ।

२. मिट्टी में (सामान्य प्रसंग में) भीगते रहने के कारण यह मैला रहता है, इसलिए किसी के मैले-कुचैले और फटे-पुराने कपड़ों को गंदगी की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए 'पोतना' कहा जा सकता है ।

### ३. बचपन के अन्य शब्द

**(क) क्वाँप**—'कोंपल' के समानार्थी शब्द के रूप में इसका व्यवहार प्रौढ़ों की भाषा में होता है।[1] बच्चों की भाषा में यह 'इमली की कोंपल' का अर्थ देता है, जिसे खाना उन्हें बहुत पसन्द है।

**(ख) खुट्टी**—मित्रता-भंग। बच्चों में इस मित्रता-भंग की अपनी एक पद्धति है। अपनी-अपनी कनिष्ठिका अँगुली को पास ले जाकर फिर 'टूँग' लेने से 'खुट्टी' हो जाती है। इस प्रक्रिया के लिए 'खुट्ट करबु' या 'खुट्ट होबू' आदि क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं।

**(ग) भूँठीमूठी**—भूँठमूठ। अन्य वयों में भी इसका प्रयोग संभव है।

**(घ) टूँगबु**[2]—किसी वस्तु को ओठों के पास लाकर टिटकारी की आवाज करना। मित्रता करने और उसे भंग करने के लिए इस प्रक्रिया का प्रयोग होता है।

**(ङ) सच्चीमुच्ची**—सचमुच। अन्य वयों में भी इसका प्रयोग संभव है।

**(च) सींगु**—यह मूल रूप में संज्ञा शब्द है। इस शब्द का उच्चारण करते समय अँगूठे को टेढ़ा और कड़ा करके सींग की आकृति भी बनाई जाती है। इस प्रकार, इस शब्द का प्रयोग मत-वैषम्य या निषेध का द्योतक है। 'तुमका सींगु द्याब' का अर्थ इस संदर्भ में देखा जाय तो यह प्रकट होगा कि 'सींगों की मार पड़ेगी' अर्थात् बड़ी विपरीत स्थिति आएगी। किन्तु वस्तुतः प्रयोग होते-होते यह शब्द संज्ञा का मूल्य खो चुका है। 'सींगु न द्याब' में वह केवल 'न' पर बल देता है। नकारात्मक शब्द का प्रयोग न होने पर वह स्वयं 'नकार' प्रकट करता है, जैसे—सींगु द्याब।

अँगूठे की उक्त स्थिति को भी 'सींगु' कहते हैं, अतः 'सींगु देखाकै चलेगे'–जैसे वाक्य व्यवहृत होते हैं। 'सिगट्टा' 'सींगु' का दूसरा रूप है।

इन शब्दों और स्थितियों का प्रयोग अन्य लोग भी कर सकते हैं; किन्तु बच्चों में इनकी प्रचुरता है। बड़ों में 'ठचाँगरु' या 'ठचाँगा' शब्दों का प्रचलन इसके लिए अधिक है।

### ४. बच्चों के प्रसंग की शब्दावली

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग प्रायः वयस्कों के द्वारा लाड़ में बच्चों के बीच होता है। बच्चे स्वयं भी इन्हें सीख लेते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) आँख का कीचड़ ( कीचरु ) बच्चों के प्रसंग में **'कीचो'** ( **कीची-कीची** कउवा खायँ[3] ) बन जाता है अथवा 'काची-कूची' (काची-कूची कउवा खायँ)[3]।

(ख) 'चिरइया' के लिए 'चिर्रो' और 'बिलारी' के लिए 'बिल्लो' का प्रयोग।

---

१. पलइयन नये क्वाँप अँगुस्यानि।
—चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' बौछार, पृ० १७।

२. सामान्य व्यवहार में दुलार में यह व्यक्त करने के लिए कि कोई व्यक्ति बहुत कम खाता है ( जैसे कि वह खाता न हो, खाद्य-पदार्थ को ओठों के पास ले जाकर टिटकारी की आवाज भर कर देता हो ), इस क्रिया का प्रयोग होता है।

३. पूर्वी अवधी ( रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', अवधी शब्दकोश, पृ० ४३ ) में इसका निम्नलिखित रूप मिलता है :—

काची-कूची कौआ खाय।
दूध-भात मोर ( बतासा ) भैया खाय॥

(ग) बच्चों के आकर्षण की (प्रायः खाने-पीने की) 'चीज' के लिए 'चिज्जी' का प्रयोग।

(घ) खड़े होने के लिए 'ठाढ़ी-बुड्डी' का प्रयोग।

(ङ) दूध के लिए 'दुद्धू', 'दुद्धा' और 'दुधुवा' का प्रयोग।

(च) पाँव के लिए 'पंइयाँ' और बाँह यानी हाथ के लिए 'बँहियाँ' का प्रयोग, जिसके कारण क्रियाविशेषणात्मक अनुक्रमों के रूप मे 'पँइयाँ-पँइयाँ' या 'पँइयन-पँइयन' और 'बँइयाँ-बँइयाँ' (इस स्थिति के लिए 'बकइयाँ' शब्द का भी प्रयोग होता है) या 'बँइयन-बँइयन' का प्रयोग होता है।

(छ) पेट के लिए 'पेटनियाँ', 'धोंधकी' और 'धोंधू' का प्रयोग।

(ज) 'हगबु' के लिए 'हग्गी' संज्ञा और 'मूतबु' के लिए 'मुत्ती' का प्रयोग। बार-बार पाखाना जाने वाले बच्चों के लिए 'हगना-हगनी' और 'हगंटा-हगंटी' का प्रयोग।

(झ) ओमबा— बच्चे के डकार आने पर उसके साथ ही वयस्क लोग इस शब्द का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग स्वयं डकार आने पर इसका उच्चारण करते हैं।

(ञ) छतंजू—बच्चे को छींक आने पर वयस्क लोग इस शब्द का प्रयोग करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह 'शतंजीव' का तद्भव रूप है, जिसका व्यवहार छींक से संकेतित किसी संभाव्य अशुभ-अप्रिय भवितव्य के निवारण की कामना से किया जाता है। कुछ लोग इसके पूरे रूप का व्यवहार करते हैं—छतम जिव छतायु बलू; मारकंडे आयु बलू।

(ट) जूजू—एक कल्पित भयोत्पादक वस्तु। बच्चों को डराकर चुप करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। कुछ बच्चे कुछ वस्तुओं को (जैसे, कीड़े-मकोड़े) 'जूजू' के रूप में पहचान लेते हैं और उनसे डरने लगते हैं।

(ठ) लूलू—'जूजू' से अधिक भयोत्पादक वस्तु।

(ड) हाऊ—एक कल्पित तथा और अधिक भयोत्पादक वस्तु।

### ५. बच्चों की वस्तुएँ

कुछ वस्तुएँ बच्चों की हैं, अतः उनसे संबंधित हैं, यद्यपि उनके व्यंजक शब्दों का प्रयोग सभी लोग करते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(क) कथा[१]—कहानी।

(ख) करगता—'काला तागा' का समस्त रूप है, जिसमें 'तागा' का वर्ण-विपर्यय हो गया है। 'करगता' काले तागे का ही होता है, किन्तु यह विशेष आकृति का ही होता है और केवल कमर में बाँधा जाता है। अन्यत्र बाँधे जाने वाले 'काले तागे' को 'करगता' नहीं कहते।

---

१. विशेष प्रसंगों पर प्रयुक्त होने पर यह शब्द 'सत्यनारायण व्रत कथा' का अर्थ देता है।

इस अर्थ में व्यवहृत 'कथा' के साथ आने वाली क्रिया 'बाँचबु' की स्थिति बड़ी रोचक है। यह शब्द उक्त 'कथा' के साथ तो सभी व्यक्तियों की भाषा में (वैकल्पिक रूप से 'कहबु' भी) प्रयुक्त होता है, किन्तु सामान्य रूप से 'पढ़ने' (पुस्तक, पत्र आदि) के अर्थ में यह शब्द केवल साधारण स्तर के व्यक्तियों का रह जाता है।

बूझबु,

(ग) किहानी—पहेली। इन पहेनियों के उत्तर देना 'किहानी बूझबु' है। पहेलियाँ कहना 'किहानी बुझाव्बु' है। प्रेरणार्थक क्रिया के इस रूप में दो भिन्न क्रियाएँ समाहित हो जाती हैं।

बुझाव्बु (एकाभिध) / बुझाबु \ बूझबु

(घ) खेलनियाँ—बच्चों के नीचे बिछाने की कथरी।

(ङ) घुनघुना —'घुनघुन' करके बजने वाला बाजा।

(च) चटुई—'चाटने' के लिए बनाया गया लकड़ी का खिलौना।

(छ) बेन—मुँह से बजाया जाने वाला एक छोटा बाजा।

(ज) भोंपाड़ा —एक 'पिपिहरी' जिससे 'भों'-जैसी ध्वनि निकलती है। सस्ता बाजा।

डा० माताप्रसाद गुप्त

# 'संदेश रासक' के पाठ और अर्थ संशोधन के कुछ सुझाव

अब्दुल रहमान रचित 'सन्देश रासक' भारतीय साहित्य के मध्य युग की एक अत्यन्त सरस और महत्वपूर्ण रचना है। इसे प्रकाश में लाने का श्रेय अपभ्रंश के अन्यतम विद्वान् मुनि श्री जिनविजय जी को है। तीन प्रतियों की सहायता से, जिन्हें उन्होंने ए० बी० और सी० कहा है, उन्होंने इसका संपादन कर इसे सं० २००१ में भारतीय विद्याभवन, बंबई से प्रकाशित किया था। मूल पाठ और पाठांतरों के अतिरिक्त उन्होंने इस संस्करण में रचना को दो संस्कृत टीकाएँ भी प्रकाशित हैं, जिन्हें टिप्पणक और अवचूरिका कहा गया है। इस संस्करण में उन्होंने एक संक्षिप्त प्रस्तावना भी दी है, जिसमें रचना और उसके समय आदि से संबंधित अनेक प्रश्नों पर बड़ी योग्यतापूर्वक विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संस्करण में डॉ० हरिवल्लभ भायाणी के द्वारा लिखित एक भूमिका है जिसमें रचना के व्याकरण तथा छंद-विधान आदि पर बड़ी पूर्णता और वैज्ञानिकता के साथ विचार किया गया है। संस्करण के अन्त में डॉ० भायाणी ने रचना का एक शब्दकोष भी दिया है, जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनका अर्थ देने का उन्होंने एक संक्षिप्त प्रयास किया है। इस प्रकार रचना के महत्व के अनुरूप ही इस संस्करण में उसे अधिक से अधिक आलोचनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का एक अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया गया है।

इधर उसका एक अन्य संस्करण भी प्रकाशित हुआ है, जिसका श्रेय डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी को है। इसे अभी-अभी हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बंबई ने प्रकाशित किया है। डॉ० द्विवेदी को इसकी एक अन्य प्राचीन प्रति आमेर शास्त्र भंडार से जयपुर के प्रसिद्ध जैन साहित्य-सेवी श्री कस्तूरचंद कासलीवाल के द्वारा प्राप्त हो गई थी, जो पूर्ववर्ती प्राप्त प्रतियों से किंचित् भिन्न परम्परा की थी। उसका उपयोग करते हुए डॉ० द्विवेदी ने आवश्यक विस्तार के साथ रचना के पाठ और अर्थ के अनेक स्थलों पर संशोधन के मौलिक सुझाव नागरी प्रचारिणी पत्रिका के कुछ अंकों में प्रकाशित किए थे। इस संस्करण में उनके वे समस्त सुझाव प्रस्तावना के रूप में आ गए हैं और इन सुझावों से लाभ उठाते हुए श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ने रचना का पाठ और अर्थ भी सम्पादित किया है। यह कहना अनावश्यक होगा कि डॉ० द्विवेदी के द्वारा प्रस्तुत किए गए इन सुझावों से रचना के पाठ और अर्थ से सम्बन्धित अनेक अंधकारपूर्ण स्थलों

पर अत्यन्त उपयोगी प्रकाश पड़ा है। और साहित्य-प्रेमियों को इन सुझावों पर भली भाँति विचार करना चाहिए।

रचना को तीन-चार वर्ष पूर्व जब मैंने पहली बार पढ़ा था तभी इसी प्रकार मुझे भी इसके पाठ और अर्थ के कुछ स्थलों के सम्बन्ध में लिखने की इच्छा हुई थी, किन्तु उस समय जब ज्ञात हुआ कि द्विवेदी जी उसके पाठ और अर्थ पर कार्य कर रहे हैं, उसके प्रकाशन की प्रतीक्षा में मैं रुक गया और अब रचना के पाठ और अर्थ के सम्बन्ध के अपने उन सुझावों को प्रस्तुत कर रहा हूँ जो फिर भी विचारणीय लगे। फलतः इस लेख में मैं रचना के उन्हीं स्थलों को ले रहा हूँ जहाँ पर उपर्युक्त दोनों संस्करणों का ही पाठ अथवा अर्थ संतोषप्रद नहीं प्रतीत हुआ है।

इस लेख में पा० स० म० संकेत 'पाइअसद्द-महण्णवो' नामक प्रसिद्ध प्राकृत कोश के लिए है, जो हरगोविन्द दास त्रिकमचंद सेठ द्वारा सं० १६६५ में संपादित और प्रकाशित हुआ था। रचना के विभिन्न स्थल छंद अथवा छंद तथा चरण-संख्या द्वारा निर्दिष्ट किए गए हैं। शेष प्रस्तावनादि का निर्देश पृष्ठ—संख्या द्वारा किया गया है।

## पाठ संशोधन के सुझाव

(१)

रयणायर धर गिरि तरुवराइँ गयणं गणंमि रिक्खाइं।
जेणऽज्ज सयल सिरियं सो बुहयण वो सिवं देउ ॥१॥

संस्कृत टीकाकारों ने उद्धृत द्वितीय चरण के 'अज्ज' का रूपान्तर 'इत्यादि' किया है, जो भाषा के नियमों के अनुसार संभव नहीं है। इसलिए डॉ० द्विवेदी ने अज्ज ∠ आर्याः = श्रेष्ठ जन अर्थ लगाकर शब्द का प्रयोग संबोधन के रूप में माना है (प्रस्ता० २) किन्तु 'बुहयण' (∠ बुधजन) संबोधन के रूप में आता ही है। इसलिए मेरा सुझाव है कि इसे 'अज्झ' होना चाहिए जो कभी पुल्लिग में 'यह' के अर्थ में प्रयुक्त होता था और जिस का स्त्रीलिंग रूप 'अज्झा' है (पा० स० म०)। 'ज्झ' का भूल से 'ज्ज' होजाना पुरानी लिखावट में सुगमता से संभव था।

(२)

पंडित्त पवित्थरणु मणुजणंमि कोलिय पयासिउ।
कोऊहलि भासिअउ सरल भाइ संनेह रासउ ॥१६॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'मणुजणंमि' का रूपान्तर टिप्पण में 'मनसि ज्ञात्वा' और अवचूरिका में 'मनुष्य लोके' किया गया है। डॉ० द्विवेदी ने अवचूरिका वाले अर्थ को स्वीकार करते हुए सुझाव दिया है कि पाठ 'मणुयजंमि' = 'मनुष्य जन्म में' होना चाहिए। (प्रस्ता० २)। किन्तु ये दोनों अर्थ प्रसंग में पूर्ण रूप से जमते नहीं प्रतीत होते हैं। मेरा सुझाव है कि मूल पाठ मणुज्जणंमि' ∠ मनोज्ञ + नर्मन् = 'मनोज्ञ विनोद' था, जिसका पाठ लेखन-प्रमाद से 'मणुजणंमि' हो गया। द्वित्व के स्थान पर एक वर्ण से काम चलाने की प्रथा मध्ययुग में बहुत व्यापक थी, जिसके कारण यह भूल संभव हुई लगती है।

( ३ )

उत्तंग थिर थोरथणि विरुडलक्क धयरट्ठ पउहर।
दीणाणण पहु णिहइ जल पवाह पवहंति दीहर ।।२४।।

उद्धृत प्रथम चरण के 'विरुडलक्क' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'भ्रमरी मध्य मध्या' और 'विरुडलक्कि' पाठ के साथ उसका अर्थ हिन्दी टीका में 'जिसकी कटि भिड़ के समान पतली है' किया गया है।

हिन्दी संस्करण में 'लक्क' के स्थान पर 'लक्कि' पाठ संभवतः रचना की जयपुर की प्रति के आधार पर किया गया है, यद्यपि यह स्पष्ट कहा नहीं गया है। रचना के संपादक मुनि जिनविजय जी ने नाहटा जी की एक खंडित प्रति में 'लक्क' के स्थान पर 'लंक' पाठ होने का उल्लेख किया है (भूमिका १०६)। मेरी समझ में 'लंक' से पाठ बिगड़ कर 'लक्क' हुआ है। मध्य युग में विन्दु से जिस प्रकार अनुस्वार का कार्य लिया जाता था, वैसे ही उससे व्यंजन द्वित्व का भी कार्य लिया जाने लगा था, कदाचित् इसीलिए इस प्रकार का पाठ-प्रमाद संभव हुआ।

( ४ )

ऊपर उद्धृत द्वितीय चरण के 'णिहइ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'पश्यति' और हिन्दी टीका में 'निहार रही है' किया गया है। प्राकृत में 'देखना' के अर्थ में 'णिअ' और 'णिहा' आते हैं, 'णिह' नहीं (देखिए पा० स० म०)। डॉ० द्विवेदी ने 'णिअ' से 'णिह' की संभावना मान ली है; किन्तु मेरी समझ में 'णिहाइ' का 'आ' की मात्रा के भूल से छूट जाने के कारण 'णिहइ' हो गया हो, यह संभावना भी विचारणीय है।

( ५ )

णेवर चरण विलग्गिवि तह पहि पंखुडिय ।।२७।।

संस्कृत टीकाओं में इस चरण में आए हुए 'पंखुडिय' का अर्थ 'पतिता' और हिन्दी टीका में 'छितरा गया' किया गया है। किन्तु 'पंखुडिय' का एक ही अर्थ मिलता है पंख या पत्र। वांछित अर्थ के लिए शब्द होना चाहिए 'पक्खुडिअ' ∠ प्रखण्डित (पा० स० म०)। सी० प्रति का पाठ 'पक्खडिअ' है जो 'पक्खुडिअ' के अधिक निकट है। इस भूल का कारण भी विन्दु का अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन-द्वित्व-लेखन के लिए प्रयुक्त होना ज्ञात होता है।

( ६ )

पडि उट्ठिय सविलक्ख सलज्जिर संझसिय ।।२८।।

टिप्पणक में इस चरण के 'संझसिय' का अर्थ 'संभ्रमिता', अवचूरिका में 'संझसिता' और हिन्दी टीका में 'उत्क्षिप्ता' किया गया है। 'संझसिता' प्राकृत शब्द का संस्कृताभास मात्र है। मेरा अनुमान है कि शब्द है 'सज्झसिय' = भीत। सज्झस ∠ साध्वस = भय, डर है (पा० स० म०)। पाठ-विषयक यह भूल भी विन्दु के अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन-द्वित्व-लेखन के लिए प्रयुक्त होने के कारण हुई ज्ञात होती है: सज्झसिय →

सम्भ्फसिय→ संभसिय । डॉ० द्विवेदी ने 'झसिय' = 'पर्यस्ता' के द्वारा 'संभसिय' का अर्थ लगाया है (प्रस्ता० २३), किंतु पर्यस्तता गिरने तक के प्रसंग में जितनी संगत लगती है, गिर कर उठने के प्रसंग में उतनी संगत नहीं लगती है । यहाँ प्रसंग गिर कर उठने का है ।

( ७ )

तुच्छं रोम तरंगं उव्विन्नं कुसुम नलएसु ।।३६।।

इस चरण के 'उविन्न' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'उद्भग्न' किया गया है; हिन्दी टीका में पाठ 'उब्बिन्न' मानते हुए रूपातंर 'उद्भिन्न' किया गया है । किन्तु 'उद्भग्न' का प्राकृत रूप कदाचित् 'उब्भग्ग' होना चाहिए : 'उद्भिन्न' का तो 'उब्भिन्न' होता ही है (पा० स० म०) । 'उव्विन्न' ∠ उद्विग्न = खिन्न, भीत, घबड़ाया हुआ है (पा० स० म०) और इसी अर्थ में यह इस रचना में भी अन्यत्र प्रयुक्त हुआ है:—

झिज्जंती णिरु दीसहि उव्विन्न मिय नयण ।।६८।।

किन्तु प्रसंग 'उव्विन्न' या 'उद्विग्न' का नहीं है । सी० प्रति में पाठ 'उव्विल्ल' है । 'उव्विल्ल' = फैलना, पसरना (पा० स० म०) के अर्थ में क्रिया-रूप में प्रयुक्त मिलता है । उसका विशेषण के रूप में प्रयोग होने पर अर्थ 'फैला' या 'पसरा हुआ' होना चाहिए । यहाँ पर ठीक पाठ कदाचित् 'उव्विल्ल' है, जो 'फैला' या 'पसरा हुआ' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । यह भूल 'न्न' और 'ल्ल' के किंचित् आकृति-साम्य से उत्पन्न हुई ज्ञात होती है ।

( ८ )

कहव ठाइ आसीयि चाइहि दयवरिहिं ।
रामायणु अहिणविअइ कत्थविकयवरिहिं ।।४४।।

उद्धृत प्रथम चरण के 'दयवर' का रूपान्तर संस्कृत में टीकाओं 'द्विज वर' तथा अर्थ हिन्दी टीका में 'ब्राह्मण' किया गया है । 'द्विज' का प्राकृत रूप 'दिअ' मिलता है (पा० स० म०), इसलिए पाठ संभवतः 'दियवरिहि रहा होगा, जो कि 'दि' की इकार की मात्रा के छूट जाने से 'दयवरिहिं' हो गया होगा, अथवा परवर्ती चरण के 'कयवरिहिं' के अनुकरण में 'दयवरिहि' बना लिया गया होगा ।

( ९ )

आयण्णहि सुसमत्थ पीण उन्नय थणिय ।
चल्लहि चल्ल करंतिय कत्थवि णट्टणिय ।।४५।।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'चल्लहि चल्ल करंतिय' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने 'चल चल शब्द कुर्वन्त्यः' किया है । किंतु 'चल चल' शब्द करना नृत्य में कोई चमत्कार नहीं रखता है, इसलिए डॉ० द्विवेदी ने सुझाव दिया है कि 'चल्ल' का अर्थ कटी वस्त्र लेते हुए 'चल्लहि चल्ल करंतिय' का अर्थ लेना चाहिए 'जघनांशुक् को चालित करती हुई' । किन्तु मेरा अनुमान है कि 'चल्ल' के स्थान पर पाठ 'चल्लि' होना चहिए, जो

नृत्य की एक गति होती है (पा० स० म०) और इसी 'चल्लि' का इकार की मात्रा के छूटने से 'चल्ल' हो गया होगा। 'चल्लि' के साथ चरण का अर्थ होगा : कहीं पर 'चल्लि' करती हुई नर्तकियों को।

( १० )

तुह विरह पहर संचूरिआइं विहडंति जं ∠ अंगाइँ।
तं अज्ज कल्ल संघडण ओ सहे णाह तग्गंति ।।७२।।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'ओसहे' का अर्थ संस्कृत टीककारों ने 'औषध प्रभावेन' किया है। डॉ० द्विवेदी का सुझाव है कि 'ओसहे' के स्थान पर पाठ 'आसहे' होना चाहिए, क्योंकि विरह-प्रहार-संचर्णित अंगों का जोड़ने वाला मिलन नहीं, मिलन की आशा ही हो सकती है। किंतु 'आसहे' जैसे अति परिचित शब्द के स्थान पर एक अपेक्षाकृत कम परिचित शब्द 'ओसहे' का हो जाना कम संभव लगता है। मेरी समझ में पाठ 'उसहे' रहा होगा, जो कि ए० प्रति में आया भी है। 'उसह' का एक अर्थ 'वेष्ठन-पट्ट' होता है (पा० स० म०)। प्रसंग यहाँ पर टूटी हुई हड्डियों को किसी प्रकार जोड़ रखने का है। 'वेष्ठन-पट्ट' ही इस कार्य में समर्थ होता है, औषध नहीं। 'मिलन' से आशय 'मिलन की संभावना' या 'मिलन की आशा' का ही लिया जाना चाहिए, यह प्रकट है। उ और ओ का यह भ्रम मध्य युग की लेखन-शैली की एक अति सामान्य त्रुटि रही है, कारण यह है कि दोनों के लेखन में अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म था, और पीछे तो कभी-कभी 'उ' से ही 'ओ' के लिखने का भी काम लिया जाने लगा था।

( ११ )

भरवि नवयरंगे इक्कु कुंभो धंरती।
हियउ तह पडिल्लो बोलियंतो विरत्तो ।।१००।।

'पडिल्लो' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'क्षिप्त्वा' और हिन्दी टीका में 'डालकर' किया गया है। किन्तु शब्द मूलत: 'पडिअलि <प्रतित्वरिन्=त्वरित, वेगयुक्त (पा० स० म०) है, जो कि 'पडिल्ली', 'पडिल्लिउ' और 'पडिल्लिय' रूपों में रचना में अन्यत्र भी आया हुआ है:—

जं सित्तउ थोरं सुयहि जलइ पडिल्ली झत्ति ।।८९।।
विरह हुयासि झलक्कि पडिल्लिउतं झडइ ।।१०६।।
गय जलरिल्लि पडिल्लिय तित्थिहिं ।।१९२।।

ऐसा लगता है कि पाठ 'पडिल्ली' था, जिसकी 'ई' की मात्रा लेखन या पाठ-प्रमाद से 'ओ' की मात्रा हो गई; अथवा पाठ 'पडिल्लिउ' था जो क्रमशः पडिल्लउ >पडिल्लु >पडिल्लो बन गया।

( १२ )

जइ पिम्म विग्रोइ विसुंठलयं हिययं ।।११५।।

समस्त टीकाकारों ने इस चरण के 'विसुंठलयं' को 'विसंस्थूलम्' का प्राकृत रूप माना है, किन्तु प्राकृत में विसंस्थूल > विसंठुल हुग्रा है (पा० स० म०) । ग्रन्यत्र रचना में भी यह इसी प्रकार ग्राया है :—

वलिवि पत्त णिय भुवणि विसंठुल विहलमणु ।।१३०।।

इसलिये मेरा सुझाव है कि पाठ 'विसुंठलयं' के स्थान पर 'विसंठुलयं' होना चाहिए। ऐसा लगता है कि कभी भूल से 'उ' की मात्रा 'ठ' से हटकर 'स' पर लग गई, जिससे यह भूल हो गई।

( १३ )

पंक कड क्खिहि तिक्खिह मयणा कोयणिहि ।
भणु वट्टहि कइ दियहि झुरंतिहिं लोयणिहिं ।।१२३।।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'झुरंतिहिं' का ग्रर्थ टिप्पणक में 'वर्षन्ती', ग्रवचूरिका में 'क्षरद्भ्यां' ग्रौर हिन्दी टीका में 'जल बरसा रही' किया गया है। किन्तु इस ग्राशय के लिए शब्द होना चाहिए 'झरंतिहि', जैसा इसके पूर्ववर्ती छंद में ही ग्राया है :—

सरय रयणि पच्चक्खु झरंतउ ग्रमिय भरु ।।१२२।।

'झुर' विलप् के ग्रर्थ में प्रयुक्त होता है (पा० स० म०) ग्रौर रचना में ग्रन्यत्र भी इसी ग्रर्थ में प्रयुक्त हुग्रा है :

पिय विरह विग्रोए संगम सोए दिवस रयणि झूरंत मणे ।।६५।।

'झरंतिहिं' के 'झ' में उकार की मात्रा स्मृतिभ्रम से लगने के कारण यह भूल हुई ज्ञात होती है।

( १४ )

सलिलिहि वर सालूरिहि फरसिउ रसिउ सरि ।।१४४।।

उद्धृत चरण के 'फरसिउ' का रूपान्तर समस्त टीकाग्रों में 'परुष' किया गया है। किंतु 'परुष' के लिए प्राकृत रूप 'फरुसउ' होना चाहिये (पा० स० म०) । संभवतः ग्रधिक परिचित 'फरिसिय' < स्पृष्ट के भ्रम से यह भूल हुई है। 'संदेश रासक' में ही ग्रन्यत्र फरिसु ग्रौर 'फरिसिउ' 'स्पर्श' ग्रौर स्पृष्ट्वा के ग्रर्थों में ग्राए हैं:—

ग्रंगिहिं तुह ग्रलहंत धिट्ठ करयल फरिसु ।।१६१।।
तं झंखरु विरहिणिहि ग्रंगु फरिसिउ दहइ ।।१३२।।

( १५ )

इम विलवंती कहव दिण पाइउ ।
गेउ गिरंत पढंतह पाइउ ।।१५७।।

उद्धृत प्रथम चरण के 'कहव दिण पाइउ' का अर्थ टिप्पण ६ में 'वर्षा प्रान्त दिन समाप्तम्', अवचूरिका में 'वर्षा प्रान्त दिन प्राप्तम्' और हिन्दी टीका में 'कुछ दिन बिताए' किया गया है। 'कहव' शब्द निरर्थक है; होना चाहिए 'कहवि' < कहंपि < कथमपि = किसी प्रकार से (पा० स० म०), जैसा वह रचनाएँ में अन्यत्र भी आया है—

ता किं वाडि विलग्गा मा विअसउ तुंबिणी कहवि ।।१४।।
आसासिज्जइ कह कहवि सइवत्ती रसिएहिं ।।१८।।

ऐसा लगता है कि 'कहवि' के 'इ' की मात्रा कभी भूल से छूट गई।

( १६ )

गोसुय रंत मिल्हि सिज्जासणु ।
मणि सुमिरंत विरहणिआसुण ।।१५८।।

उद्धृत प्रथम चरण के 'रंत' को समस्त टीकाकारों ने छोड़ दिया है। शब्द 'रत्त' < रक्त = लोहित है। यह अन्यत्र भी इसी प्रकार आया है—

सिय सावर रत्त पुप्फंवरेति ।।२०२।।

यह भूल भी विन्दु के अनुसार तथा व्यञ्जन-द्वित्व दोनों के लिखने के लिए प्रयुक्त होने के कारण हुई लगती है।

( १७ )

दारय कुंडवाल तंडव कर ।
भमति रच्छि वायंतय सुंदर ।।१७५।।

प्रथम चरण में आने वाले 'कुंडवाल तंडव' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'कुंडलं' किया गया है, और हिन्दी टीका में 'कुंडलाकार नृत्य'। किन्तु 'कुंडवाल' न 'कुंडल' से व्युत्पन्न हो सकता है और न 'कुंडलाकार' से। 'कुंडवाल' का कोई अन्य अर्थ यहाँ संभव भी नहीं लगता है। 'कुंड' संभवतः 'कुड्ड' है जिसका अर्थ आश्चर्य, कौतुक, कुतूहल होता है (पा० स० म०)। 'कुड्ड' को विन्दु के साथ 'कुंड' के रूप में लिखने के कारण यह भ्रम संभव हुआ लगता है। जैसा कहा जा चुका है, विन्दु से अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन-द्वित्व लिखने की एक व्यापक परम्परा रही है। इस 'कुड्ड' का प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में 'कोड' के रूप में प्रायः मिलता है—'पद्मावत' में ही कम से कम सात स्थलों पर यह शब्द आया है; यथा—

कीन्हेसि सुख औ कोड अनंदू । पद्मावत ३·६
रहस कोड सों आवहिंजाहीं । वही ३२·६
कतहूं नाच कोड भलि होई । वही ३९·४
रहस कोड सों रैनि बिहानी । वही ५२·१

( १८ )

लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमंत तुसार भरु ।।१८६।।

इस चरण में आए हुए 'कोसिल्लि' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'कुशलेन' किया गया है। डॉ० द्विवेदी ने 'देशी नाममाला' के आधार पर इसका अर्थ 'प्राभृतम्' = भेंट, उपहार किया है (प्रस्ता० ४५), और वही हिन्दी टीका में भी ग्रहण हुआ है। किन्तु 'देशी नाममाला' में आया हुआ शब्द 'कोसल्लिय' है (२·१२), जो 'कौशलिक' से बना है (पा० स० म०)। मेरे विचार से यहाँ पर पाठ 'कासिल्ल' < कासिक = खाँसी रोग [लाने] वाला (पा० स० म०) होना चाहिए जो बी० प्रति में 'कासिल्लि' के रूप में मिलता भी है। 'ले ढुक्कउ' की ध्वनि के साथ 'उपहार' की कल्पना यों भी मेल नहीं खाती है।

( १९ )

मत्तमुक्क संठविउ विवह गंधक्करिसु ।।१९५।।

इस चरण में आए हुए 'विवह' का अर्थ समस्त टीकाओं में 'विविध' का किया गया है, किन्तु 'विविध' का प्राकृत रूप 'विविह' है, 'विवह' नही (पा० स० म०) और रचना में अन्यत्र भी 'विविह' ही इस अर्थ में आया है :—

पिक्खिवि विविह उज्जाणु भुवणु तहि वीसरइ ।।५४।।
ठविय विविह विलवंतिय अह तह हार लय ।।१३५।।
णव कुसुम पत्त हुय विविह वेसि ।।२०१।।

अतः पाठ 'विविह' ही होना चाहिये, जो इकार की मात्रा छूटने की भूल से 'विवह' हो गया है।

( २० )

ऊपर उद्धृत चरण में आए हुए 'गंधक्करिसु' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'गन्धोत्कर्ष' किया गया है। किन्तु 'गंधोत्कर्ष' के लिए पाठ 'गंध + उक्करिस'-'गंधुक्करिस' होना चाहिए। डॉ० द्विवेदी का सुझाव है कि पाठ 'गंधक्करस' होना चाहिए, जिसका अर्थ होगा 'गंधों से सुगंधित किए हुए रस' (प्रस्ता० ४६)। हिन्दी टीका में भी यही पाठ और अर्थ ग्रहण किया गया है। किन्तु 'गंधक्करस' पाठ कवि का अभिप्रेत नहीं लगता है, क्योंकि 'गंधक का रस' जैसा भी कुछ अर्थ इससे बनता हुआ लगता है, जो भाव के चमत्कार को नष्ट कर देता है। 'गंधोत्कर्ष' उस सुगंधित रस को कहते हैं जो उत्कर्ष अर्थात् भपके की प्रक्रिया से खींच कर निकाला जाता है, जिस प्रकार गुलाब जल या केवड़ा जल, और वही यहाँ पर अभिप्रेत लगता है। 'गंधुक्करिस' का 'गंधक्करिस' बन जाना सुगम ही है और 'धु' के उकार की मात्रा के छट जाने से हुआ लगता है।

( २१ )

कुंद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नयथणिय।
णिय सत्थरि पलुटंति केवि सीमंतिणिय ।।१९५।।

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'बरच्छणि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'वरोत्सवे' किया गया है। किन्तु 'उत्सव' से प्राकृत 'उच्छअ' या 'उच्छव' होता है (पा० स० म०)। मेरी समझ में शब्द 'वरच्छिणि'='सुंदर आंखों वाली' था और भूल से 'च्छि' की इकार की मात्रा के छूट जाने से 'वरिच्छिणि' का 'वरच्छणि' हो गया। बी० प्रति में पाठ 'वरित्थिणि' है; वह कदाचित् 'च्छ' को 'त्थ' पढ़ लेने के कारण हुआ है जो मध्य युग की लिखावट में प्राय: एक से होते थे। डा० द्विवेदी ने संस्कृत टीकाओं का अर्थ स्वीकार करने में कठिनाई का अनुभव कर 'वरत्थिणि' < वरार्थिनी पाठ का सुझाव दिया है (प्रस्ता० ४६), और हिन्दी टीका में यही पाठ और अर्थ ग्रहण किए गए हैं। किन्तु कुंद-चतुर्थी (माघ शु० ४) का व्रत पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं, वर की कामना करने वाली नहीं। इसलिए 'वरत्थिणि' पाठ को स्वीकार करने में कठिनाई प्रतीत होती है।

( २२ )

णिय वल्लहकर केलि जंति सिज्जासणिहि ॥१६६॥

इस चरण में आए हुए 'करकेलि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'केल्यर्थे' और हिन्दी टीका में 'केलि करने' किया गया है। किन्तु इस अर्थ के लिए पाठ 'केलि करि' अथवा 'करि केलि' होगा : करि < कृते। 'करि' के 'रि' की मात्रा के छूट जाने से 'कर' हो गया है। 'कर' अथवा 'करि' का यह प्रयोग अपभ्रंश के इतिहास में बहुत परवर्ती अवश्य प्रतीत होता है।

( २३ )

मरु सियलु वाइ मति सीयलंतु।
णहु जणए सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥

समस्त टीकाओं में द्वितीय चरण में आए हुए 'तंतु' का अर्थ 'तप्त' किया गया है। किन्तु 'तप्त' का प्राकृत रूप 'तत्त' है (पा० स० म०) जो रचना में भी अन्यत्र आया है:—विद्धी काम तत्ति णं दीयइ ॥ १८२ ॥ 'तत्त' का तंतु विन्दु के अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जनद्वित्व के लिखने के लिए प्रयुक्त होने के कारण हुआ लगता है। किंतु इस पाठ को मान लेने पर उद्धृत चरणों का तुक अवश्य अच्छा नहीं बैठता है।

जिन शब्दों के पाठ—संशोधन के सुझाव ऊपर दिए गए हैं, उनकी विकृतियों का कारण-मूलक विश्लेषण करने पर स्थिति कुछ इस प्रकार की ठहरती है।

(१) द्विधा प्रयोग जनितभ्रम :—वर्णों के ऊपर विन्दु का प्रयोग एक तो अनुस्वार की ध्वनि सूचित करने के लिए किया जाता था और दूसरे बाद में आए हुए वर्ण के द्वित्व—सूचन के लिए। इस भ्रामक लेखन-प्रथा के कारण निम्न-लिखित भूलें हुई ज्ञात होती हैं :—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| छंद | २४ | : | लक्क | ∠ लंक |
| | २७ | : | पंखुडिय | ∠ पक्खुडिय |
| | २८ | : | संझसिय | ∠ सज्झसिय |

१५८ : रंत ∠ रत्त
१७५ : कुंडवाल ∠ कुड्डवाल
२१० : तंतु ∠ तत्तु

इसी प्रकार उ, पहिले एक सूक्ष्म अन्तर के साथ किंतु बाद में बिना किसी अन्तर के भी उ तथा ओ दोनों ध्वनियों के लिए प्रयुक्त होने लगा था, जिसके कारण निम्नलिखित भूल हुई ज्ञात होती है :—

छंद ७२ : ओसहे ∠ उसहे

(२) आकृति-साम्य जनित भ्रम :—निम्नलिखित भूलें वर्णों की किंचित् समानता के कारण हुई लगती हैं :—

छंद १ : अज्ज ∠ अज्झ
३९ : उव्विन्नं ∠ उव्विल्लं

(३) अनवधानता जनित मात्रा-लोप :—निम्नलिखित भूलें पढ़ने या लिखने में अनवधानता के कारण हुई मात्रा-त्रुटियों की ज्ञात होती हैं :—

छंद २४ : णिहइ ∠ णिहाइ
४४ : दय ∠ दिय
४५ : चल्लि ∠ चल्लि
१५७ : कहव ∠ कहवि
१९५ : विवह ∠ विविह
१९५ : गंधक्करिसु ∠ गंधुक्करिसु
१९५ : वरच्छणि ∠ वरच्छिणि
१९६ : कर ∠ करि

इसी प्रकार द्वित्व-सूचक विन्दु या वर्ण के छूटने से निम्नलिखित भूल हुई ज्ञात होती है :—

छंद १९ : मणुजणम्मि ∠ मणुंजणम्मि/मणुज्जणम्मि

(४) अनवधानता जनित मात्रा-व्यत्यय :—अनवधानता से एक वर्ण के साथ लगने वाली मात्रा के दूसरे वर्ण के साथ लग जाने से निम्नलिखित भूल हुई ज्ञात होती है :—

छंद ११५ : विसुंठलयं ∠ विसंठुलयं

(५) स्मृति-भ्रम जनित मात्रा-विपर्यय :—स्मृति-भ्रम से एक मात्रा के स्थान पर दूसरी मात्रा को लिख उठने के कारण हुई निम्नलिखित भूलें ज्ञात होती हैं :—

छंद १०० : पडिल्लो ∠ पडिल्ली
१२३ : झुरंतिहि ∠ झरंतिहि
१४४ : फरिसउ ∠ फरुसउ
१८६ : कोसिल्लि ∠ कासिल्लि

## अर्थ-संशोधन के सुझाव

( १ )

माणुस्स दिव्व विज्जाहरेहिं णह मग्गि सूर ससि बिंबे ।
आएहिं जो णमिज्जइ तं णयरे णमह कत्तारं ॥२॥

इस छंद के दूसरे चरण के 'णयरे' शब्द की व्याख्या संस्कृत टीकाओं में 'नागरिकाः' और हिन्दी टीका में 'नागर जनो' करके की गई है । किन्तु 'नागरिक' का प्राकृत रूप 'णायरिय' होता है (पा० स० म०) । यदि व्याख्या 'नागर' करके की जाए तो उसका भी प्राकृत रूप 'णायर' होता है (पा० स० म०), जो 'संदेश रासक' मे भी आया है —

णायर जण संपुन्नु हरिस ससिहर वयणि । ४२·२

मेरी समझ में 'णयरे' संभवतः 'णय रे' है : णय ∠नत = जिसको नमस्कार किया गया हो वह (पा० स० म०) और यह कत्तार के विशेषण के रूप में आया है; 'रे' केवल पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त संबोधन का पद है ।

( २ )

पच्चाएसि पहूओ पुव्व पसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि ।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीर सेणस्स ॥३॥

प्रथम चरण में आए हुए 'पच्चाएसि' की व्याख्या संस्कृत टीकाओं में 'प्रतीच्यां' करके की गई है । डा० भायाणी ने ग्रंथ के शब्द-कोष में इसे 'प्रत्यग् देश' से निष्पन्न किया है । मेरी समझ में 'पच्चाएस' ∠पश्चात् + देश है । 'पच्चा' और 'पच्छा' दोनों 'पश्चात्' के प्राकृत रूप हैं (पा० स० म०) और दोनों का अर्थ 'पश्चिम दिशा' है । इसी प्रकार 'एस' और 'देस' दोनों 'देश' के प्राकृत रूप हैं (पा० स० म०) । इसलिए 'पच्चाएसि' का अर्थ होगा 'पश्चिम दिशा के देश मे' । डॉ० द्विवेदी ने कहा है कि शब्द को नियमानुसार होना चाहिए था 'पच्छाएस', किन्तु कवि को एक अन्य अर्थ भी अभिप्रेत था जिसके कारण उसने 'पच्छाएसि' को 'पच्चाएसि' करने की स्वतंत्रता बरती है (प्रस्ता० ४) । किन्तु ऊपर बताया जा चुका है कि 'पच्चा' का प्रयोग प्राकृत में 'पश्चात्' के लिए होता रहा है ; कवि ने इसके-प्रयोग में अतः कोई स्वतंत्रता बरती है, यह कदाचित् नहीं कहा जा सकता है ।

( ३ )

ऊपर उद्धृत छंद ३ के दूसरे चरण का अर्थ संस्कृत टीकाओं में किया गया है : तत्र विषये आरद्दो देशीत्वात् तन्तुवायो मीरसेनाख्यः संभूतः—उत्पन्नः । डॉ० द्विवेदी ने इस अर्थ पर ठीक ही आपत्ति की है कि 'मीर सेणस्स' षष्ठयन्त पद है, उसकी व्याख्या 'मीर सेनाख्यः' प्रथमान्त पद के रूप में नहीं होनी चाहिए (प्रस्ता० ३) । इसलिए डॉ० द्विवेदी ने 'आरद्द मीरसेणस्स' की संगति 'मीरसेन का आरद्ध' (मीरसेन के गृहागत) अर्थ करके लगाई है । किन्तु मेरी समझ में चरण का सीधा अर्थ होगा: 'उस विषय

(प्रदेश) में आरद्द हुआ जो मीरसेन का (पुत्र) था। परवर्ती छंद में अद्दह माण ने जो 'तह तणग्रो' कहा है, उसमें 'तह' ∠तस्य से उसका आशय 'आरद्दस्य' से है। 'आरद्द' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में जो 'देशीत्वात् तन्तुवाय:' किया गया है, वह निराधार लगता है। आगे कवि ने अपने को 'कोलिय' कहा है (छंद १९); कदाचित् इसी के सहारे 'आरद्द' के इस अर्थ की कल्पना इन टीकाओं में कर ली गई है।

( ४ )

तंतीवायं णिसुयं जइ किरि कर पल्लेवेहि अइ महुरं ।
ता मद्दल करडि रवं मा सुम्मउ राम रमणेसु ॥१०॥

द्वितीय चरण के 'राम रमणेसु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'स्त्री क्रीडासु' और हिन्दी टीका में 'साधारण स्त्रियों के क्रीड़ा-विनोद में' किया गया है। किन्तु यहाँ पर अभिप्रेत अर्थ है 'स्त्रियों के गान–वाद्य में'। इसलिए मेरा अनुमान है कि मूलतः शब्द 'रामा रवण' रहा होगा जो धीरे-धीरे लोक में 'राम-रमण' बन गया। इसमें 'रवण > रमण = गान-वाद्य है। अवधी की एक लोकोक्ति में भी यह शब्द आता है:—

कहाँ राम रमौवल औ कहाँ कुकुर-काट !

अवधी क्षेण में सालार मसऊद ग़ाज़ी के उपासक जो 'रवन्ना' या 'रवन्ना' बजवाते हैं, उसमें भी 'रवण' अपने पूर्ववर्ती रूप में सुरक्षित है।

( ५ )

जइ सरवरंभि विमले सूरे उइयंमि विअसिआ णलिणी ।
ता किं वाडि विलग्गा मा विअसउ तुंबिणी कहवि ॥१४॥

संस्कृत टीकाओं में 'वाड' की व्याख्या 'वृत्ति' करके की गई है, जिसे डॉ० द्विवेदी ने ठीक ही कहा है 'वृति' होना चाहिए (प्रस्ता० ६)। किन्तु 'वाड' ∠वाट (पा० स० म०) है और 'वाट' 'वट' से बना हुआ माना गया है (मोनियर विलियम्स); इसी 'वाट' से 'वाटक' [> हि० बाड़ा] और 'वाटि' [> हि० बाड़ी] भी बने माने गए हैं (मोनियर विलियम्स)।

( ६ )

ऊपर के छंद के द्वितीय चरण में आए हुए 'कहवि' का अर्थ समस्त टीकाकारों ने छोड़ दिया है। यह है: कहवि < कहंपि < कथम् + अपि = किसी प्रकार (पा० स० म०)।

( ७ )

लोयण जुयं च णज्जइ रविंद दल दीहरं च राइल्लं ।
पिंडीर कुसुम पुंजं तरुणि कवोला कलिज्जंति ॥३४॥

द्वितीय चरण में आए हुए 'कलिज्जंति' का अर्थ टिप्पणककार ने 'जिग्यत:' किया है, जिसके स्थान पर रचना के विद्वान् संपादक मुनि जिनविजय जी ने 'जयत:' का सुझाव दिया है; अवचूरिकाकार ने इसका अर्थ 'दृश्येते' किया है; हिन्दी टीका में

'—की भाँति सुन्दर हैं' अर्थ किया गया है। किन्तु ये समस्त अर्थ अनुमान से किए गए लगते हैं। शब्द 'कलय्' से व्युत्पन्न है, जिसका एक अर्थ 'जानना' होता है (पा० स० म० तथा मोनियर विलियम्स)। अतः 'कलिज्जंति' का अर्थ होगा 'जान पड़ते हैं'। रचना में अन्यत्र भी यह शब्द ठीक इसी प्रकार और इसी अर्थ में आया है:—

अवर कपोल कलिज्जहि दाडिम कुसुम दल ।।५१।।

( ८ )

णयर णामु सामोरु सरोरुह दल नयणि ।।४२।।

'सामोर' को संस्कृत टीकाकारों ने मुल्तान नगर बताया है। किंतु मुल्तान के इतिहास में उसका एक अन्य नाम मिलता है, यह नाम नहीं मिलता है (दे० इम्पीरियल गजेटियर ऑव् इंडिया में 'मुल्तान')। स्पष्ट ही यह 'साम्बपुर' है, जैसा अन्य विद्वानों ने भी माना है। किन्तु यह साम्बपुर देश के मानचित्र में कहाँ है, यह नहीं ज्ञात होता है। मोनियर विलियम्स ने 'साम्ब', 'साम्बपुर' और 'साम्बपुरी' नाम देते हुए अपने कोश में लिखा है, साम्ब कृष्ण और जाम्बुवती के पुत्र थे, जिन्हें कहा गया है नारद ने सूर्योपासना और व्यास ने मगों के धार्मिक कृत्यों की दीक्षा दी थी; कहा जाता है कि चंद्रभागा के तट पर साम्ब ने एक नगर की स्थापना की थी, जिसका नाम साम्बपुर या साम्बपुरी हुआ। चन्द्रभागा और चेनाब एक ही हैं। मुल्तान भी चेनाब पर स्थित है और वह भी किसी समय एक प्रसिद्ध आदित्य-तीर्थ था। किन्तु इतने साम्य के होते हुए भी यह असंभव नहीं है कि साम्बपुर चन्द्रभागा पर ही स्थित एक अन्य स्थान रहा हो। 'मूलस्थान' रचना में बाद में, सम्भवतः एक भिन्न नगर के रूप में, आता है:—

तवण तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि वखाणियइ ।
मूलत्थाणु सुवसिद्धउ महियलि जाणियइ ।।६५।।

( ९ )

ऊपर उद्धृत छंद का ही दूसरा चरण है :—

णायर जणसंपुन्नु हरिस ससिहर वयणि ।।४२।।

टीकाकारों ने इसके 'हरिस' का अर्थ नहीं किया है। यह 'हरिस' < हृष् = हर्ष करना, प्रसन्न होना है। इसका कर्त्ता 'ससिहर वयणि' = चन्द्रवदनी स्त्रियाँ हैं।

( १० )

विविह विअक्खण सत्थिहि जइ पवसिइ णिरु ।
सुम्मइ छंदु मणोहरु पायउ महुरयरु ।।४३।।

प्रथम चरण के 'णिरु' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने नहीं किया है। हिन्दी टीका में 'नरु' पाठ है जो 'विअक्खण' का विशेष्य मान लिया गया है किन्तु विशेषण और विशेष्य परस्पर इतनी दूरी पर नहीं रक्खे जाते हैं। 'णिरु' अव्यय है, जिसका अर्थ है 'निश्चित' ० स० म०)। अन्वय में यह द्वितीय चरण के साथ जायेगा।

( ११ )

अवर कहव णिवडब्भर घण तुंगत्थणिहिं ।
भरिण मज्भु णहु तुट्टइ ता विंभिउ मणिहिं ।।४७।।

प्रथम चरण में आए हुए 'णिवडब्भर' की व्याख्या टिप्पणककार ने 'निविडोत्तर' और अवचूरिकाकार ने 'निविडोद्धुर' करके की है। डॉ० द्विवेदी के अनुसार यह परवर्ती हिन्दी के निपट+उब्भर के संयुक्त शब्द का पूर्वरूप जान पड़ता है (प्रस्ता०)। किन्तु चरण में इस शब्द के बाद ही 'घन तुंग' शब्द आते हैं, जिससे 'निपट+उब्भर' पाठ संभव नहीं लगता है। इसलिए मेरी समझ में यह 'णिवड+भर=निविड और भारी के अर्थ में आया है और 'स्तन' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

( १२ )

तह मह अच्छइ णाहु विरह उल्हावयरु ।
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु ।।६७ ।।

उद्धृत प्रथम चरण के 'उल्हावयरु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'स्फेटक' है और हिन्दी टीका में 'विध्मापक' से व्युत्पन्न कर 'धौंक कर आग को प्रज्वलित करने वाला' किया गया है। किन्तु 'उल्हव' है<विध्मापय्=आग को बुझाना (पा० स० म०)। इसलिए संस्कृत टीकाओं में भावार्थ तो आ गया है, शब्दार्थ नहीं आया है। हिन्दी टी[का] में शब्द को व्युत्पन्न ठीक किया गया है किन्तु अर्थ देने में भूल हुई है। 'उल्हव' का प्रयोग 'आग बुझाना' के ही अर्थ में रचना में अन्यत्र भी हुआ है :—

उन्लहवइ ण केण विरहज्झल ।।१३७।।
पुणवि पिएण व उल्हवइ पिय विरहग्गि निभंति ।।१३८।।
उल्हवियं गिम्ह हवी धारा निवहेण पाउसे पत्ते ।।१४६ ।।

( १३ )

ल्हसिउ अंसु उद्धसिउ अंगु विलुलिय अलय ।
हुय उब्बिंबिर वयण खलिय विवरीय गय ।।८७।।

'ल्हसिउ' की व्याख्या, जो उद्धृत प्रथम चरण में आता है, टिप्पणक में 'गतम्' अवचूरिका में 'झसितम्' और हिन्दी टीका में 'ह्रास हो गया है जिसका' द्वारा की गई है। किन्तु किन्तु 'ल्हस'<स्रंस्=खिसकना, सरकना, गिर पड़ना है (पा० स० म०)। 'अंसु' का अर्थ समस्त टीकाओं में 'तेज' किया गया है, किन्तु अंसु<अंस=कंधा है। अतः 'उल्हसिउ अंसु'<स्रस्तांस है और 'स्रस्तांस'=झुके हुए कंधे (मोनियर विलियम्स)।

( १४ )

ऊपर उद्धृत प्रथम चरण के 'उद्धसिउ' को संस्कृत टीकाकारों ने 'उद्धषित' बताया है और हिन्दी टीका में उसका 'धँसा हुआ' अर्थ किया गया है। 'उद्धषित' संस्कृत का शब्द नहीं है, यह 'उद्धसिउ' से बना लिया गया लगता है, क्योंकि 'धँसना' के

लिए 'घस्' क्रिया का प्रयोग संस्कृत और प्राकृत दोनों में होता है। 'उद्धसिउ' है <उद्ध्वस्त और हिन्दी रचनाओं में भी यह शब्द इसी अर्थ में आया है:—

उर ही हार हरावलि टूटी।
उधसी माँगि बेनि गै छूटी ॥ मंझन: मधुमालती ॥ छंद १३६॥

( १५ )

ऊपर उद्धृत द्वितीय चरण के 'उव्विंबिर' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'फिक्क' तथा हिन्दी टीका में 'फीका' किया गया है। 'उव्विंबिर' को देशज कह कर इसका अर्थ 'खिन्न' या 'उद्विग्न' बताया गया है (पा० स० म०)। मेरी समझ में 'उव्विंब' और उव्विंबर' सम्भवत: 'उद्विग्न' से व्युत्पन्न हैं। अतः 'फिक्क' और 'फीका' अर्थ कदाचित् अनुमान मात्र से किए गए हैं।

( १६ )

पाइय पिय वडवानलहु विरहग्गिहि उप्पत्ति।
जं सित्तउ थोरंसुयहि जलइ पडिल्ली झत्ति ॥८९॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'पाइय' का कोई अर्थ संस्कृत टीकाओं में नहीं किया गया है। डॉ० भायाणी ने ग्रंथ के शब्द कोष में इसे <पादिक=पदचारिन् से व्युत्पन्न बताया है, जो कि प्रसंग में जमता नहीं है। किन्तु यह <प्राकृत है और 'प्रकृति से उत्पन्न' के अर्थ में 'वडवानल' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ लगता है। प्रथम चरण का आशय यह है कि विरहानल प्राकृत वडवानल से उत्पन्न है, उस पर इसीलिए मनुष्य की कोई युक्ति काम नहीं करती है।

ऊपर उद्धृत छंद के द्वितीय चरण में आए हुए 'पडिल्ली' शब्द का अर्थ समस्त टीकाओं में 'अधिक' किया गया है, और टिप्पणक और अवचूरिका में इसे देशी शब्द बताया गया है, किन्तु यह ∠'पडिअलि'=त्वरित, वेगयुक्त है (पा० स० म०), जो सम्भवत: 'प्रति त्वरिन्' से व्युत्पन्न है। रचना में यह शब्द अन्यत्र भी आया है, किन्तु टीकाकारों ने प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं:—

हियउ तह पडिल्लो बोलियंतो विरत्तो ॥१००॥
विरह हुयासि झलक्किउ तं पडिलिउ झडइ ॥१०६॥
गय जल रिल्लि पडिल्लिव तित्थिहिं ॥१६२॥

( १८ )

ते पावहि सुविर्णतरि धन्नउ पियतणु फरसु।
आलिगणु अवलोयणु चुंबणु चवणु सुरय रसु ॥९४॥

उद्धृत द्वितीय चरण में आए हुए 'चवणु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'दशन खंडन' किया गया है। हिन्दी टीका में 'चवणु' को मूल पाठ में नहीं स्वीकार किया गया है। 'चव' का अर्थ 'बोलना' होता है (पा० स० म०)। इसलिए मेरी समझ में 'चवणु' का अर्थ 'वार्तालाप' होना चाहिए। 'दशन खंडन' अर्थ अनुमान से लगाया हुआ लगता है।

( १६ )

तसु सुयण निवेसिय भाइणपेसिय मोहवसण बोलंतखणे ।
मत साइय वक्खरु हरि गउ तक्खरु जाउ सरणि कसु पहिय भणे ।।६५।।

संस्कृत टीकाकारों ने उद्धृत प्रथम चरण के 'सुयण' का अर्थ 'हृदये' किया है; डॉ० द्विवेदी अर्थ 'सुयण' ∠ सुतनु = सुन्दर शरीर करते हैं (प्रस्ता० ३०) । डॉ० भायाणी ग्रंथ के शब्द कोष में इसे 'स्वप्न' से व्युत्पन्न करते हैं । 'सुइण' 'स्वप्न' से व्युत्पन्न है (पा० स० म०), और 'इ' का 'य' प्रायः हो जाता है, इसलिए 'सुयण' ∠ सुइण ∠ स्वप्न सर्वथा सम्भव है। प्रसंग भी 'स्वप्न-दर्शन का है (छंद ६४), इसलिए 'स्वप्न' अर्थ अधिक संभव प्रतीत होता है ।

( २० )

जं पिय आसासंगिहि अंगिहिं पलु चडइ ।
विरह हुयासि झलक्किउ तं पडिलिउ झडइ ।।१०६।।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'पडिलिउ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'द्विगुण' और हिन्दी टीका में 'शीघ्र' किया गया है । इसका अर्थ, जैसा ऊपर छंद ८६ की 'पडिल्ली' के सम्बन्ध में बताया जा चुका है, 'त्वरित', अथवा 'वेगयुक्त' है और यह संभवतः 'प्रतित्वरिन्' से व्युत्पन्न है ।

( २१ )

हिउय पउक्कु पडिउ दीवंतरि ।
णाइ पतंगु पडिउ दीवंतरि ।।१११।।

उद्धृत प्रथम चरण के 'पउक्कु' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने छोड़ दिया है । डॉ० भायाणी ग्रंथ के शब्दकोष में शब्द को 'प्रमुक्त' से व्युत्पन्न करते हैं, किन्तु प्रमुक्त 7 पमुक्क होता है। जो 'संदेश रासक' में भी आया है:—

कद्दम भारु पमुक्किउ सलिलिहिं

डॉ० द्विवेदी इस पाठ के स्थान पर सी० प्रति में आए हुए 'पडिक्कु' को स्वीकार करने का सुझाव देते हैं (प्रस्ता० ३४) और 'पडिक्कु' का अर्थ 'फड़क कर' करते हैं । वास्तव में 'पउक्क' ∠ प्रयुक्त है और इसी प्रकार रचना में अन्यत्र भी आता है :—

कारुन्न पउक्कउ तह कुणाइ ।।२१७।।

( २२ )

गयउ दिवसु थिउ सेसु पहिय गमु मिल्हियइ ।
गिसि अत्थमु गिलेवि दिवसि पुणु चल्लियइ ।।११३।।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'अत्थमु बोलेवि' वो अर्थ संस्कृत टीकाओं मे 'निशा अथवा निश्यस्तमनं निर्गमयित्वा' और हिन्दी टीका में 'रात्रि बिताकर' किया गया है । किन्तु

'बोल' या 'वोल' ∠व्यति + क्रम् = उल्लंघन करना है (पा० स० म०), और इसी अर्थ में रचना में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है:—

सुरहि गंधु रमणीउ सरउ इम वोलियउ ।।१८४।।
सिसिर फरसु वुल्लीणु कहव रोवंतियइ ।।२०४।।

( २३ )

तसु अणुअंचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु ।
वलिविपत्तणिय भुयणि विसंठुल विहल मणु ।।१३०।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'विहलमणु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'विहलंघल मनसा' और हिन्दी टीका में 'विह्वल मना' किया गया है। विहलंघल' ∠ विह्वलांङ्ग ( पा० स० म० ) शब्द 'मनसा' के साथ संभव नहीं है, और 'विसंठुल ∠ विसंस्थूल = विह्वल इस शब्द के ठीक पहले आ चुका है, इसलिए 'विह्वलमना' अर्थ भी संभव नहीं लगता है। 'विहल' ∠ विफल = निष्फल है (पा० स० म०)।

( २४ )

अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं वहइ ।
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ।।१३२।

उद्धृत द्वितीय चरण में आए हुए 'झंखरु' को 'डंडुयालकनामा पवन' कहा गया है, और हिन्दी टीका में इसे पवन का एक प्रकार मान कर ज्यों का त्यों रख दिया गया है। किन्तु वह 'झंखड' है और रचना में भी आया हुआ है :—

उट्ठिउ झंखडु गयणि खर फरसु पवणिहय ।। १९२ ।।

झंखर [ दे० ] = शुष्क तरु है (पा० स० म०) और 'झंखाड़' के रूप में हिन्दी में भी मिलता है। यह 'विरहिणिहि अंग' का उपमान है, जिसे कर्त्ता के रूप में पूर्ववर्ती चरण में आया हुआ 'पहंजणु' दग्ध करता है।

( २५ )

हरियंदणु सिसिरत्थु उवरि जं लेवियउ ।
तं सिहणह परितवइ अहिउ अतिसेवियउ ।।१३५।।

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'उवरि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'उरसि' दिया हुआ है, और हिन्दी टीका में उसे छोड़ दिया गया है। 'उवर' ∠ उदर (पा० स० म०) है, जैसा डॉ० भायाणी ग्रंथ के शब्दकोष में कहते हैं।

( २६ )

हम तवियउ बहु गिंभु कहवि मइ वोलियउ ।
पहिय पत्तु पुण पाउसु धिट्ठु ण पत्तु पिउ ।। १३९ ।।

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'वोलियउ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'निर्गमितः' और हिन्दी टीका में 'बिताया' किया गया है। बोल ∠ व्यति + क्रम् = उल्लंघन करना है,

और रचना में अन्यत्र भी इसी अर्थ में आया है, जैसा ऊपर छंद ११३ के 'वोलेवि' के प्रसंग में बताया जा चुका है ।

( २७ )

पउदंडउ पेसिज्जइ झाल झलकंतियइ ।
भय भेसिय अइरावइ गयणि खिवंतियइ ॥१४०॥

उद्धृत दूसरे चरण में आए हुए 'खिवंतियइ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'द्योतनया' और हिन्दी टीका में 'चमकने से' किया गया है। किन्तु खिव ∠ क्षिप् = फेंकना, डालना है (पाँ० स० म०)। दूसरे चरण का अर्थ होगा : भयानक वेष वाली विद्युत् गगन में फेंक-फेंक उठती है। इसी अर्थ में यह शब्द रचना में अनेक स्थानों पर आया है:—

खिवइ हारु खारुब्भवु कुसुम सरच्छयहि ॥१३७॥
पइ पइ पेसइ करलउ गयणि खिवंतयह ॥१४१॥
णहु जणइ सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥
अच्च हियं मह हियए कंदप्पो खिवइ सरजालं ॥२२१॥

( २८ )

पय हत्थिण किय पहिय पयहि पवहंतयह ।
पइ पइ पेसइ करलउ गयणि खिवंतयह ॥१४१॥

उद्धृत द्वितीय चरण में आए हुए 'खिवंतयह' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में नहीं किया गया है, और हिन्दी टीका में 'जलाती हुई' किया गया है। किन्तु खिव ∠ क्षिप् = फेंकना, डालना है, जैसा ऊपर बताया जा चुका है।

( २९ )

हुइ तारायणु अलखु वियंभिउ तम पसरु ॥१४३॥

उद्धृत चरण के 'वियंभिउ' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। जैसा ग्रंथ के शब्दकोष में डॉ भायाणी कहते हैं, वियंभिउ ∠ विजृम्भित = उत्पन्न है; और इसी अर्थ में रचना में यह अन्यत्र भी आया है:—

जइ णिच्च मणंमि वियंभिययं मयणं ॥११५॥

( ३० )

मच्छर भय संचडिउ रन्नि गोयंगणिहि ।
मणहर रमिमइ नाहु रंगि गोयंगणिहि ॥१४६॥

उद्धृत प्रथम चरण का अर्थ संस्कृत टीकाओं में किया गया है: मच्छर भयाद् गवां व्रजैःस्थले आरूढम्। हिन्दी टीका में अर्थ किया गया है : मच्छरों के भय से गौओं का समूह रन्न (ऊँचा स्थल) पर चढ़ गया है। किन्तु 'रन्न' ∠ रण्ण ∠ अरण्य = जंगल,

अटवी है (पा० स० म०) और हिंदी के लोक-साहित्य में 'रन-बन' के रूप में प्रायः आता है। 'गोयंगण' का 'गोगण' अर्थ भी सम्भव नहीं है, वह <गोपाङ्गना है। न मच्छरों के डर से गायें ऊँचे स्थलों पर चढ़ जाती हैं, वे वर्षा में गोशालाओं में ही प्रायः रहती हैं। मेरी समझ में 'मच्छर भय' ∠मत्सर+भग=मद और ऐश्वर्य है और 'गोयंगण' ∠ गोपाङ्गना=इन्द्र वधू है। प्रथम चरण का इस प्रकार अर्थ होगा; अरण्य में इन्द्रवधूटियों को मद और ऐश्वर्य चढ़ रहा है। वर्षा में इन्द्र वधूटियों का वैभव दर्शनीय होता ही है।

( ३१ )

जउ णहु णिग्गउ जीउ पावबंधिहि जडिउ।
हियउ न किण किरि फुट्टउ जं वज्जिहि घडिउ ॥१५४॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'करि' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। यह 'किरि' <किर < किल=निश्चय ही है (पा० स० म०) और इसी प्रकार रचना में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है।

तंतीवायं णिसुयं जइ किरि कर पल्लवेहि अइ महुरं ॥१०॥
पहिय ण सिज्झइ किरि बलु मह कंदप्पसउ ॥६६॥

( ३२ )

जं हय हीय गिंभि णव सरयह।
तं पुण सोह चड़ी णव सरयह ॥१६१॥

उद्धृत प्रथम चरण में 'हय' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। 'हय' < हत है ( पा० स० म० ) और 'हउ' रूप में रचना में अन्यत्र भी आया है:—

तुट्टी देह ण हउ हियउ तुअ संमाणिय पिक्खि ॥७८॥

( ३३ )

उच्छलि भुवण भरिय सयवत्तिहिं।
गय जल रिल्लि पडिल्लिय तित्थिहिं ॥१६२॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'पडिल्लिय' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'पतितः' और हिंदी टीका में 'वेग से' किया गया है। जैसा ऊपर छंद ८६ में आए हुए 'पडिल्ली' शब्द के संबंध में बताया जा चुका है, यह 'पडिअल्लि' ∠ प्रतित्वरिन् =त्वरित, वेग युक्त है (पा० स० म०) और इसी प्रकार रचना में अनेक बार आया है, यद्यपि टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रसंगों में आवश्यकतानुसार इसका अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

( ३४ )

धूव दिंति गुरुभत्ति सइत्तिहि।
गो आसणिहि तुरंग चलत्थिहि ॥१६७॥

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'सइत्तिहि' का अर्थ समस्त टीकाओं में 'सहिता' या 'सहित्' किया गया है। किंतु 'सहित' का प्राकृत रूप 'सहिअ' है ( पा॰ स॰ म॰ )। 'देशी नाममाला' के आधार पर बताया गया है कि 'सयत्त' = मुदित, हर्षित ( पा॰ स॰ म॰ ) और ग्रन्थ की भूमिका में डा॰ भायाणी भी 'सयत्ति' = प्रमुदिता कहते हैं (भूमिका ६) किंतु मुझे इस शब्द के संबंध में दो संभावनाएँ और भी विचारणीय लगती हैं :—

सइत्ति ∠ स + इति = सहेतु, सकारण।
सइत्ति ∠ स + यत्त ∠ यत्न = यत्न पूर्वक।

( ३५ )

अंगि अंगि घणु घुसिणु विलत्तउ।
णं कंदप्पि सरिहि विसु खित्तउ ॥१७८॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'घुसिणु' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'घुसृण' किया गया है और हिंदी टीका में उसका अर्थ 'कपूर' किया गया है। किंतु घुसिण ∠ घुसृण = कुकुंम है ( पा॰ स॰ म॰)।

( ३६ )

सग्जिउ कुसुम भारु सीसोवरि।
णं चंदट्ठु कसिण घण गोवरि ॥१७८॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'चंदट्ठु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'चन्द्रस्यास्थानं' और हिंदी टीका में 'चन्द्रमा स्थित है' किया गया है। 'चंदट्ठु' में 'अट्ठु' प्रथमा का रूप है, क्रिया का रूप नहीं है। इसलिए हिंदी टीका वाला अर्थ संभव नहीं लगता है। यह 'अट्ठ' अट्ठाण ∠ आस्थान = सभा या सभागृह (पा॰ स॰ म॰) का ही कोई परवर्ती रूप लगता है। डॉ॰ भायाणी ने 'चंदट्ठु' के स्थान पर 'चंदद्धु' पाठ का सुझाव दिया है (भूमिका ९८)। किंतु वह असंभव लगता है।

( ३७ )

घण जलवाहु बहुल्ल मिल्हे विणु।
पढिय अडिल्ल मइ वत्थु तहेविणु ॥१८१॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'तहेवि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'तदैव' तथा हिंदी टीका में 'और' किया गया है। किंतु जैसा डॉ॰ भायाणी ने भी ग्रन्थ के शब्द कोष में कहा है, तहेवि ∠ तथैव = उसी तरह, उसी प्रकार है ( पा॰ स॰ म॰ )।

( ३८ )

संसोसिउ तणु हिमिण हाम हेमह सरिसु ॥१९१॥

उद्धृत चरण के 'हाम हेमह सरिसु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'धाम्ना हेम सदृशं' और हिंदी टीका में 'जैसे धाम हेम (ठंडक) को' किया गया है। धामन् = मकान प्रसंग में

अपेक्षित नहीं लगता है, और घाम ∠ घम्म ∠ घर्म का कोई रूप 'हाम' नहीं मिलता है। 'हाम' ∠ एवं = इस प्रकार है (पा० स० म०)। इसी प्रकार 'हेम' का अर्थ 'हिम' कहीं नहीं मिलता है। 'हेम' के तीन अर्थ मिलते हैं : जाड़ा, सोना और धत्तूरा (मोनियर विलियम्स तथा स. म.) इसलिए मेरी समझ में उद्‌धृत चरण का अर्थ होगा : इसप्रकार (मेरा) तनु हेम (धत्तूरे) के सदृश हिम से संशोषित हो गया। धत्तूरा हेमंत के तुषार-पात से सूख-सा जाता है।

( ३९ )

हेमंति कंत विलवंतियह जइ पलुट्टि नासासिहसि।
तं तइय मुक्ख खल पाइ मइ मुइय विज्ज किं आविहसि ॥१९१॥

उद्‌धृत द्वितीय चरण के 'तइय' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। 'तइय' ∠ तइअ ∠ तदा = उस समय है (पा० स० म०) और इस अर्थ में रचना में अन्यत्र भी आया है:—

सुहय तइय राओ उग्गिलंतो सिणेहो ॥१००॥

( ४० )

उट्ठिड झंखडु नयणि खर फरसु पवणिहय।
तिणि सूडिय झंडि करि असेस तहि तरुय गय ॥१९२॥

उद्‌धृत द्वितीय चरण के 'सूडिय झडि करि' का अर्थ टिप्पणक में छोड़ दिया गया है, और अवचूरिका में 'सुडिता:सन्त:' किया गया है। डॉ० द्विवेदी ने 'सूड' धातु को हेमचन्द्र के आधार पर 'भंज्' धातु का आदेश माना है और 'सूडिय' का अर्थ 'तोड़ा हुआ' किया है (प्रस्ता०)। किंतु मेरी समझ में सूडिय ∠ सूदित = आहत, विनष्ट, मृत की भी संभावना विचारणीय है।

( ४१ )

मत्त मुक्क संठविउ विवह गंधक्करिसु।
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि इक्खरसु ॥१९५॥

द्वितीय चरण के 'अद्धावट्टउ' को संस्कृत टीकाओं में 'अर्धावर्त्त' और हिंदी टीका में 'आधा पेरा हुआ' कहा गया है। 'अद्धावट्ट' ∠ अर्धावर्त = आधा औटा हुआ होता है, जिसे अवधी क्षेत्र में 'अधेवट' कहते हैं। कोई रस या क्वाथ जब औटाने या पकाने पर परिमाण में आधा रह जाता है, उसे उसका अधेवट कहते हैं। ईख का रस अधेवट करने पर गाढ़ा और इसलिए अधिक मीठा हो जाता है, और उसका कफ-कारक दोष नष्ट हो जाता है। इसके बाद उसमें गुलाब या केवड़ा जल जैसा कोई गंधोत्कर्ष मिलाकर पीने से वह बहुत स्वादिष्ट हो जाता है।

( ४२ )

सरउ गयउ अइ कट्ठि हिमंतु पवन्नियइ ॥२०४॥

उद्धृत चरण के 'पवन्नियइ' का अर्थ टिप्पणक में छोड़ दिया गया है, अवचूरिका में 'प्रपन्न: प्राप्त: और हिंदी टीका में 'आया' किया गया है। किंतु 'प्रपन्न' से 'पवन्न' बनता है ( पा० स० म० )। मुझे तो यह ∠ पवन्निय ∠ पवणिअ ∠ प्रवणित = सुस्थ ( स्वस्थ ? ) किया हुआ, तंदुरुस्त किया हुआ ( पा० स० म० ) ज्ञात होता है।

श्रीराम शर्मा

# जायसी की चित्ररेखा

आज से लगभग सात वर्ष पूर्व मुझे मलिक मुहम्मद जायसी के एक छोटे से काव्य 'चित्ररेखा' का पता चला था। उन दिनों मैं दक्खिनी की हस्तलिखित पुस्तकों के सिलसिले में हैदराबाद के राजकीय और निजी पुस्तकालयों में सामग्री एकत्रित कर रहा था। हैदराबाद में पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों की दृष्टि से राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय (पहले आसफ़िया स्टेट लाइब्रेरी) और सालारजंग पुस्तकालय का बहुत महत्व है। इन दोनों पुस्तकालयों में हस्तलिखित ग्रन्थों का पृथक् प्रबन्ध था, किन्तु कठिनाई यह थी कि दोनों में हस्तलिखित ग्रन्थों की कोई सूची उपलब्ध नहीं थी। राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय में आज भी यह कठिनाई है, किन्तु सालारजंग पुस्तकालय की पुस्तकों की सूची उर्दू में छप चुकी है, इन दोनों पुस्तकालयों में एक कठिनाई यह है कि फ़ारसी और अरबी की हस्तलिखित पुस्तकें अलग-अलग रखी गई हैं, किन्तु उर्दू, दक्खिनी और हिन्दी के ग्रन्थों का वर्गीकरण नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय में आचार्य केशव की 'रसिक प्रिया' तथा 'कवि प्रिया' की बहुत पुरानी प्रतियाँ हैं, किन्तु उन्हें उर्दू काव्यों के साथ रखा गया है, इसी प्रकार सालारजंग पुस्तकालय की जो सूची छपी है, उसमें जायसी की 'चित्रलेखा' का उल्लेख उर्दू आख्यानक काव्यों के साथ किया गया है। फलस्वरूप दोनों पुस्तकालयों में मुझे उर्दू लिपि में लिखित सभी पुस्तकों को इधर-उधर से देखना पड़ा। तभी पहली बार 'चित्ररेखा' देखने को मिली। उन दिनों आदरणीय डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मावत की संजीवनी टीका लिख रहे थे। मैंने चित्ररेखा की उपलब्धि से डाक्टर अग्रवाल को अवगत कराया। डाक्टर अग्रवाल ने पद्मावत की भूमिका में इस बात का उल्लेख भी किया है। डाक्टर अग्रवाल तथा अन्य परिचित विद्वानों का तभी से आग्रह रहा कि 'चित्ररेखा' नागरी अक्षरों में प्रकाशित की जाय।

गत पाँच-छह वर्षों से अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण मैं इस ओर अधिक ध्यान नहीं दे सका। चित्ररेखा के प्रकाशन में एक दूसरी बाधा यह थी, कि सालारजंग की प्रति पूरी नहीं है। पढ़ने पर ज्ञात हुआ कि किसी ने इधर-उधर से कुछ चौपाइयाँ चुनकर रख दी हैं, इसलिये यह प्रयत्न किया गया कि हैदराबाद में या अन्यत्र इस

काव्य की दूसरी प्रति तलाश की जाय और जब तक यह काव्य पूरा न मिले इसे प्रकाशनार्थ न भेजा जाय।

संयोगवश उस्मानिया विश्वविद्यालय में जायसी के कुछ काव्यों का एक संकलन खरीदा गया।* इस संकलन में पद्मावत नहीं है। अखरावट के अतिरिक्त चित्ररेखा और अन्य छोटे-छोटे पाँच-छह काव्य हैं। उस्मानिया विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डाक्टर रामनिरंजन पाँडे ने यह हस्तलिखित संकलन प्राप्त किया और वे पिछले पाँच वर्ष से उस संकलन पर कार्य कर रहे हैं, यह संकलन फारसी लिपि में लिखा हुआ है। लिखावट बहुत अच्छी है। सरलता से पढ़ा जा सकता है। डाक्टर रामनिरंजन पाँडे ने 'चित्ररेखा' का पाठ तैयार कर लिया है। शीघ्र ही पुस्तक प्रकाशित होगी। जब डाक्टर पाँडे ने इस प्रति पर कार्य करना प्रारंभ किया तो मैंने तथा मेरी तरह हैदराबाद के एक दो अन्य बन्धुओं ने सालारजंग पुस्तकालय के पाठ को छपवाना उचित नहीं समझा।

इसी बीच बम्बई के श्री शिवसहाय पाठक अपने प्रबन्ध के सिलसिले में हैदराबाद आये। चित्ररेखा की सालारजंग वाली प्रति के आधार पर यहाँ एक प्राध्यापक ने जो पाठ तैयार किया था, वह उन्हें देखने को भी मिला। कुछ दिनों बाद पाठक जी द्वारा सम्पादित 'चित्ररेखा' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय काशी से प्रकाशित हुई। इस संस्करण में यह बताया गया है कि पाठक जी को सालारजंग पुस्तकालय की प्रति के अतिरिक्त एक अन्य प्रति भी मिली, किन्तु उन्होंने उस प्रति का कोई चित्र नहीं छापा है, जब कि सालारजंग पुस्तकालय की प्रति के चार पृष्ठों के चित्र छापे गये हैं। इस प्रकार 'चित्ररेखा' का कुछ भाग हिन्दी भाषियों के लिए सुलभ हो चुका है।

यहाँ सालारजंग पुस्तकालय और उस्मानिया विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रतियों की जानकारी दी जा रही है। यह विश्वास करने के अनेक कारण हैं कि हिन्दी के महाकवियों ने जहाँ अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग एक बड़े काव्य की रचना में

*राज महेन्द्री (आन्ध्र) सरकार के अधीन मदूर नामक स्थान के अधिकारी सम्पतराय के आदेश से, केशवराय (लखनवी) ने जायसी के छोटे-छोटे ग्रंथों का संकलन तैयार किया, जिनमें चित्ररेखा भी एक है। जिसका लिपिकाल ११५४ हि० = १७४१ ई० है। विश्वविद्यालय में जो गुटका है, उसमें जायसी की निम्नलिखित पुस्तकें हैं।

१. तज़मीन—काव्य की यह एक विशेष शैली है। फ़ारसी के अनुकरण पर इसमें एक पंक्ति अन्य कवि की और तीन पंक्तियाँ जायसी की है। अन्य कवि की पंक्ति आधार मानी गई है। १३ बन्द है, १८ पद हैं।

२. अखरावली (=अखरावट) इसमें ४७० चौपाइयाँ हैं।

३. पोथी खरानामा—१५५ चौपाइयाँ हैं। इसमें एक कहानी को कवितावद्ध किया गया है।

४. चित्ररेखा—इस काव्य का परिचय इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है। अखरावती अथवा उपर्युक्त अखरावट के अतिरिक्त जायसी के तीनों काव्य अब तक प्रकाश में नहीं आये।

व्यतीत किया, वहाँ उन्होंने कई छोटे-छोटे काव्य भी लिखे। गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस के अतिरिक्त हमें पार्वती मंगल, रामलला नहछू आदि लघुकाव्य उपलब्ध होते हैं। जायसी ने मुख्य रूप से पद्मावत की रचना की, किन्तु आखरी-कलाम, महरी बाईसी तथा चित्ररेखा आदि से इसी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। उस्मानिया विश्वविद्यालय के संकलन में दो छोटे-छोटे काव्य और हैं, जो अब तक प्रकाश में नहीं आये हैं।

जहाँ तक सालारजंग पुस्तकालय की प्रति का सम्बन्ध है, वह मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रंगीले के काल में; संभवतः उन्हीं के लिए किसी भटनागर ने तैयार की थी। यह प्रति दोष पूर्ण है। कई स्थलों पर पाठ स्पष्ट नहीं है। एक तो अवधी को फ़ारसी लिपि में लिखना सरल काम नहीं, दूसरे लिपिक इस भाषा का पूर्ण ज्ञाता प्रतीत नहीं होता। जो पंक्ति उसकी समझ में आई उसने लिख दी। जो पंक्ति समझ में नहीं आई, छोड़ दी। पद्मावत से यह बात स्पष्ट है कि जायसी को 'चौपाई' तथा 'दोहा' नामक छन्द पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। सात चौपाइयों के पश्चात् वे एक दोहा रखते हैं। चित्ररेखा में भी उन्होंने चौपाई-दोहे का यही क्रम रखा है, किन्तु सालारजंग पुस्तकालय की प्रति में यह क्रम कुछ पृष्ठों में दिखाई देता है, कुछ पृष्ठों में यह क्रम लुप्त हो गया है। प्रथम दोहे से पूर्व छह चौपाइयाँ हैं। द्वितीय और तृतीय दोहे से पहले सात सात चौपाइयाँ हैं और फिर तीसरे दोहे से पहले छह चौपाइयाँ हैं। आगे चलकर यह क्रम बहुत बिगड़ गया है। पत्र नौ के दूसरे दोहे से पहले पाँच चौपाइयाँ आई हैं। पत्र ११ के दोहे से पहले नौ चौपाइयाँ हैं। इस प्रकार दोहे से पहले कम से कम पाँच और अधिक से अधिक नौ चौपाइयाँ आई हैं। कथा का मध्य भाग ही नहीं अन्त का बहुत बड़ा अंश भी छूट गया है। व्यास जी के आदेशानुसार राजकुमार काशी आता है और चिता पर बैठी हुई चित्ररेखा राजकुमार के साथ महलों में आ जाती है। यहीं यह कथा समाप्त होती है, किन्तु स्पष्ट प्रतीत होता है कि कथा अभी समाप्त नहीं हुई है। पद्मावत की तरह चित्ररेखा के मंगलाचरण में कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है, किन्तु फ़ारसी के आख्यानक कवियों के अनुसार उन्होंने पद्मावत के अंत में जब अपने सम्बन्ध में जो जानकारी दी है, सालारजंग पुस्तकालय की प्रति में वह नहीं है। इस प्रति में कुल ३६ दोहे हैं।

उस्मानिया विश्वविद्यालय की प्रति में २१८ दोहे हैं। प्रत्येक दोहे से पहले सात चौपाइयाँ हैं। चौपाइयों का क्रम कहीं भी बिगड़ा नहीं है। पाठ बहुत अच्छा है। यह प्रति आन्ध्र के राजमहेन्द्री स्थित किसी सामन्त के आदेशानुसार तैयार की गई थी। इस प्रति को देखने से ज्ञात होता है कि पद्मावत की भाँति जायसी ने इस काव्य की रचना मनोयोग से की थी। कहानी कहीं टूटती नहीं है। पद्मावत और चित्ररेखा में आश्चर्यजनक साम्य है। कुछ चौपाइयाँ और दोहे दोनों के मिलते-जुलते हैं। प्रतीत होता है जायसी ने चित्ररेखा की रचना पहले की है और पद्मावत की उसके पश्चात् चित्ररेखा की कुछ चौपाइयाँ पद्मावत में प्रसंगानुसार उद्धृत की गई हैं। जब यह काव्य प्रकाशित होगा तो आख्यानक काव्यों में पद्मावत की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।

पद्मावत की तरह यह विस्तृत काव्य नहीं है, अतः कवि वस्तु वर्णन में विस्तार से बच गया है ।

कवि ने 'पद्मावत' के अन्त में अपनी वृद्धावस्था का उल्लेख किया है, किन्तु चित्रलेखा के अन्त में उसने अपने बचपन और युवावस्था की दुर्दशा का चित्र खींचा है । इस विवरण से जायसी के जीवन पर नया प्रकाश पड़ता है । जायसी का पालन-पोषण एक हिन्दू परिवार में हुआ था । बचपन में जायसी को भयानक माता (चेचक) निकली थी । व्रणों से पानी टपकता था । उसके सम्बन्धियों से यह वेदना देखी नहीं गई । माता के कारण ही जायसी की एक आँख जाती रही थी । उस विपन्नावस्था में मुन्ना कलारिन नामक एक महिला ने जायसी की देखभाल की थी । स्वस्थ होने पर भी जायसी मुन्ना कलारिन के पास बने रहे । जायसी की भाषा यह प्रकट करती है कि अवध के ग्रामीणों से उनका घनिष्ट सम्बन्ध था । जनता के रीति-रिवाजों से वे पूर्णतया परिचित थे । पेड़-पौधे, और पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में उनकी जानकारी अद्भुत थी । सामान्य जनता द्वारा प्रयुक्त शब्द और मुहावरों का प्रयोग उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है । अवधी के कवियों में इस दृष्टि से जायसी को सब से अधिक सफलता मिली है । अतः यह स्वतः सिद्ध है कि मुन्ना कलारिन, उसके परिवार और उसके यहाँ आनेवाले सामान्य जनों से, जायसी ने बहुत कुछ सीखा होगा ।

जहाँ तक काव्य के प्रामाणिक पाठ का सम्बन्ध है, वह तभी उपलब्ध हो सकता है जब इस काव्य को दूसरी हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिलें ।

**चित्ररेखा**

की

सालारजंग पुस्तकालय में सुरक्षित
प्रति के प्रथम और अन्तिम
पत्रों के चित्र तथा पाठ—

باغ



بسم الله الرحمن الرحیم
پوتھی چترریکھا

آدا ایک برنون سو راجا    جا کر سیس جگت سب ساجا
چودہ بہون پوری سب جو    سہس اٹھارہ بھوجی راجا
ساجی چاند سورج اوتارا    ساجی بن کھنڈ سمند پہارا
جیا جون لاکھ چوراسی    جل تھل مانہ کیہ سب باسی
سب کنہ دنہو بہگت نو بہو    جو جیہ ٹھان ہوتا کر باسو
سب پرمانس سرا کو ساتی    سیسرا انس کے تاین
کہوں سراج بدتا کر کنار چاخ
راجا نوکھ بیس لاکھ دھرتی للات
ساجی کہانی نت نولاکھا    استہر آپ انور کنہ راکھا

चित्ररेखा का प्रथम पत्र

## पोथी चित्र रेखा

आदि एक बरनौ सोराजा ।
जाकर सबै जगत यह [साजा ।।
चौदह भुवन पूर कै साजू ।
सहस अठारह भूंजइ राजू ।।
साजे चाँद सुरुज औ तारा ।
साजे बनखँड समुद पहारा ।।
जीया जोनि लाख चौरासी ।
जल थल मांह कीन्ह सब बासी ।।
सब कंह दीन्हेउ भुगुति निवासू ।
जो जेंहि थान सो ताकर वासू ।।
सब पर मानुस सरा गोसाँई ।
सबै सरा मानुस कै ताँई ।।
कहो॔ राज़ बड़ ताकर कनक छात मन्हि पाट ।
राजा नवहिं सबै ओहि धरती लाइ ललाट ।
साजइ भाँजइ नित नव लाखा ।
अस्थिर आप अवर नहिं राखा ।।

۲۶

[illegible]

चित्ररेखा की कथा का अंतिम अंश

### कथा का अन्तिम अंश

दई आन उपराजा सोग मांहि सुख भोग ।
अवसि ते मिलें विछोही जिन्ह हिय होय वियोग ।।
साजें सखी जराऊ हारू ।
करहि बेगि धनि अलप अहारू ।।
आज कंत तुम चाहें भेंटा ।
सुख संताप जाइ सब मेंटा ।।
भावै पियहिं सिंगार सलोना ।
सेवा करइ न कीजै टोना ।।
सेवा पिउ कै टोना सोई ।
सेवा बिनु टोना बिख होई ।।
सेवा में जाकर मन लागू ।
दिन दिन बाढ़ै अधिक सोहागू ।।
सेवा पियिह दिष्टि मन भाऊ ।
लीनहि तजे विलोनहि राऊ ।।
सेवा कंथ न मानइ रोसू ।
सेवा करत न लागइ दोसू ।।
सेवा औ आयसु महं दसँइ दसा चढ़ि जांहि ।
रहहिं जो करत खेलारी ते पाछे पछिताहिं ।
लेखा तो बरसन्ह रहै जो लिख जानै कोइ ।
लेखनहारा बापुरा गलि गलि माटी होइ ।
कोटिक पोथी पढ़ि मरे, पंडित भा नहिं कोइ ।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होइ ।

**तम्मत तमाम शुद**

**पोथी चित्ररेखा सिन तसनीफ मलिक मुहम्मद जायसी, दर अहमद ।**





चित्ररेखा की अंतिम पुष्पिका

## अन्तिम पुष्पिका

मुहम्मद शाह बादशाह गाज़ी, बतारीख दो आज दहुम सहर, रजब मुआफिक ११२७ फसली, मुताबिक ११३३ हिजरी बरोज मंगलवार बवक्त दोपहरी अज़ खत कम्तरीन दयाराम भटनागर बातमाम रसीद ।

डॉ सत्येन्द्र

# जाहरपीर : गुरु गुग्गा

## कुछ और अध्ययन तथा सोहिले

१. दिसम्बर १९५६ में 'जाहर पीर : गुरु गुग्गा' पर एक विस्तृत अध्ययन प्रकाशित किया गया था। सन् ५६ के बाद कुछ और सामग्री उसी अध्ययन में सहयोग देने की दृष्टि से प्राप्त हुई है उसी को यहाँ दिया जारहा है।

२. 'मुँहणोत नेणसी की ख्यात' (खंड २, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) में 'पाबू जी री बात' में उल्लेख है कि पाबू जी की भतीजी, कड़ांजी की पुत्री केलमदे से गोगाजी का विवाह हुआ था। उन्होंने दहेज में डोंड़े की सांड़िनियाँ (ऊँटनियाँ) लाकर दी थीं। पाबू जी तथा गोगाजी तभी मिले थे। एक ने दूसरे को अपने चमत्कार दिखाये। तब दोनों एक दूसरे को मानने लगे थे।

३. बीकानेर राज्य के इतिहास (म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा) में उल्लेख है कि—

३·१. गोगाजी का स्वर्गवास जिस स्थान पर हुआ था, उसे गोगामेंड़ी[1] कहते हैं। बीकानेर से ११८ मील उत्तर-पूर्व में नोहर नामक एक प्राचीन स्थान है, उसमें १६ मील पूर्व में गोगामेंड़ी नामक स्थान है, जहां भाद्रपद के कृष्णपक्ष में गोगाजी की स्मृति में बड़ा भारी मेला लगता है। जिसमें १०-१५ हजार आदमी एकत्रित होते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि एक बार यहाँ की यात्रा कर लेने पर सर्पदंश का भय नहीं रहता।

---

१. गोगामेड़ी के सम्बन्ध में एक समाचार १३ मार्च १९५९ के सैनिक में प्रकाशित हुआ था। जिसे यहाँ उधृत किया जाता है।

"हिन्दू मन्दिर में मुस्लिम पुजारी"

जयपुर, १२ मार्च। सूरतगढ (राजस्थान) के निकट एक हिन्दू मन्दिर के पुजारी मुसलमान हैं, जो देवता की पूजा करते हैं और भक्तों के नैवेद्य ग्रहण करते है। ऐसा वे सदियों से कर रहे हैं।

यह मन्दिर गोगामेड़ी में है, जहां गोगा जी की मूर्ति है, जो एक राजपूत सन्त हो चुका है।

३·२. बीकानेर से १२४ मील उत्तर-पूर्व में ददरेवा गाँव का उल्लेख (उक्त इतिहास में) है। चौहानों का राज्य १३वीं शताब्दी में, इस ददरेवा में था। ये अपने को राणा कहते थे। बीकानेर की ख्यातों में इसे गोगा दे सिद्ध का जन्म-स्थान बताया है।

३·३. Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, New Series, Vol. XVI. 1920 : पृ० २५७ पर उल्लेख है कि—

"ददरेवो से एक लेख खोज में मिला है कि १२०० संवत् की शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह स्थान चहवाण राजाओं की राजधानी था। ये राजा 'राणा' की उपाधि धारण करते थे। इस प्रकार यह लेख अप्रत्यक्ष रूप से गोगा दे पीर संबंधी बीकानेरी किंवदन्ती की पुष्टि करता है। बीकानेरी किंवदंती के अनुसार गोगा दे पीर ददरेवों के चहवाण राजा के घर में पैदा हुआ था। मैंने एक ऐसी प्रति (ग्रंथ की) भी देखी है जिसमें गोगा दे के पिता का नाम 'जेवर' बताया गया है, यह 'राणा' की उपाधि धारण किये हुए था। उक्त लेख में एक कूप खुदाये जाने का उल्लेख है, और इसमें मंडलेश्वर गोपाल के पुत्र राणा जयतसीह का उल्लेख है। इसका काल संवत् १२७० दिया गया है। अतः यह सत्य है कि ददरेवों में चहुवाणों का शासन था। और यह जयतसिंह गोगा दे का कोई पूर्वज प्रतीत होता है।"[२] (टेसीटरी)

४. पंचपीर की परंपरा बहुत प्राचीन तथा बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली मिलती है। हमने पहले जो जाहरपीर के परिकर के पंचपीर बताये थे, उनसे कुछ भिन्न उसी परिकर का एक पता 'इंडियन एँटीक्वरी' में प्रकाशित आर० सी० टेम्पल महोदय के 'फोक-ईटिमालिजी' (लोक व्युत्पत्ति) विषयक लेख से चलता है। टेम्पल महोदय ने बताया है कि करनाल तथा अम्बाला जिले में जाहरपीर के साथ नरसिंघ, कालेसिंघ, बूरेसिंघ तथा

2. Next to the above-mentioned finds in importance and perhaps even more interesting is the discovery made at Dadercvo of an inscription which proves that in the later half of the Savat century 1200 this place was the seat of a chahavana chief who bore the title of rana, and thus indirectly confirms the truth of the Bikaneri tradition conceining Goga De Pir; according to the tradition, Goga De was born at Dadrevo of a Cahavana chief, who was ruling over the place, and one manuscript examined by me in Jodhpur goes further and says that this chief, father of Gogade, was called Jevara (sic) and bore the tittle of rana. Now the inscription mentioned above which incidently records the digging of a well, contains the name of a rana Jayat Siha the son of Mandaleshwara Gopala, and gives for him the date Samvat 1270. It is therefore true that a Chahavan Rana was ruling over Dadrevo in ancient days and in the light of t this particular it is reasonable to conclude that the Bikaneri tradition concerning the birth of Goga De at Dadrevo is accurate and that the rana Jayata Siha mentioned in the inscript is probably one of Goga De's ancestors. —Tessitory.

जौरसिंघ की पूजा होती है। ये सभी दईदेवता माने जाते हैं, और नाग कहे जाते हैं। जौरसिंघ को गुगा का पिता जेवर या राजा जेवर बताया जाता है। टेम्पल महोदय ने टिप्पणी में यह भी बताया है कि गुरु गुग्गा की मौसी के पुत्र अरजन तथा सर्जन जौरा या जौल्ला थे, कभी-कभी ये दोनों ही जौर नाम से पूजे जाते हैं।[1]

४·१. स्पष्ट है कि इस उल्लेख में जो पंचपीर हैं उनमें जाहरपीर तथा नरसिंह को छोड़ तीन बिल्कुल नये हैं और ये मथुरा की परम्परा से नहीं मिलते—कालेसिंह, बूरेसिंह तथा जौरसिंह में जौरसिंह की तो कुछ व्याख्या मिलती भी है, जिससे ये जाहर के पिता या मौसेरे भाई ठहरते हैं। पर कालेसिंह या बूरेसिंह कौन हैं ? मथुरा परंपरा में पाँचों पीरों में एक घोड़ा अवश्य रहता है, और यह घोड़ा वही है जो जाहरपीर के साथ साथ एक ही समय पैदा हुआ था, और जाहर के साथ ही भूमि में समा गया था। टाड महोदय के अनुसार यह घोड़ा 'जवार' कहलाता था, 'जौ' से उत्पन्न होने के कारण यह 'जवार' भी जौर हो सकता है।

५. गोगा पीर का भंगियों या महतरों से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह पहले बताया जा चुका है। इस सम्बन्ध में चिरकीन महोदय की भी कुछ उक्तियाँ मिलती हैं। लखनऊ के इस अनोखे शायर ने गोगा जी को भंगियों का देवता बताया है। वे कहते हैं:—

"फातिहा गूगल जला के देंगे गूगा पीर का,
कम नहीं गैरों से गर उस आफते–जां का तपाक।
× × × ×
चलेंगे देखने जिस रोज गोगा पीर का मेला,
बनेगा मेहतरों का टोकरा तख्ते रवां अपना।

६. पहले हम गोगा नाम के लगभग तीन भिन्न-भिन्न वीरों का परिचय दे चुके हैं। एक तो दद्रेवा के गोगा, यही हमारे नायक जाहरपीर हैं। दूसरे वंशभास्कर के अजमेरी चौहानों के गोगराज। वंशभास्कर कर्त्ता ने इन्हीं को जाहरपीर माना है, तीसरा गोगा राव साँभर के चौहानों वाला।

७. इनके अतिरिक्त भी एक और गोगा जी मिलते हैं। इनका परिचय हमें 'वीर मायण' नामक ग्रंथ से मिलता है। यह ग्रंथ राणा वीरम के संबंध में 'बादर ढाढ़ी' का लिखा

---

1. R. C. Temple	Folk Etymology	Indian Antiqary
In the Karnal and Ambala districts worshipped along with Guga Pir, Nar Singh (Narsinha). Kale Singh and Bure Singh is found Jaur Singh. Nar Singh is of course a curruption of the name of the man-lion avatar of Vishnu and Bure Singh and Kale Singh appear to be synonymous with him. Jaur Singh is explained to be Jewar or Raja Jewar, the usual name of Guga's father. All the above are worshipped as godlings and called nags or serpent.
Note—Arjan and Sarjan the jora or twin halfbrothers of Guga are sometimes worshipped as Jaur.

हुआ है। ये वीरम जी राठौर थे। वीरमजी राव सलखा के पुत्र थे। सिंध के जोइया मुसलमान गुजरात के बादशाह महमूद के खजाने को लूटकर मल्लीनाथजी की शरण में आये। वीरमदेव की पत्नी मांगलियाणी ने इन जोइयों के बड़े भाई दला को राखीबंद भाई बना लिया। एक बछेड़ी को लेकर मल्लीनाथ और जोइयों में मनमुटाव हो गया। जोइये बछेड़ी देना नहीं चाहते थे। एक षडयंत्र में मारे जाने के भय से जोइये दले के साथ खेड में वीरम के पास आये। वीरम ने उन्हें सिंध में पहुँचा दिया। वीरम ने कुंडल में भाटियों की कन्या से विवाह किया। इन्हीं भटियाणी से गोगा का जन्म हुआ। वीरम खेड़ लौटे पर अपने भाई जगमाल के बैर के कारण वहाँ ठहर नहीं सके। ये इधर-उधर भटक कर सिंध में जोइयों की शरण में आये। जोइयों ने इन्हे १२ गाँव दिये। यहाँ रहते रहते जोइयों और वीरमदे में बैर के बीज पड़े और बैर बढ़ता ही गया। आखिर दोनों में युद्ध ठन ही गया। वीरमदे इसमें मारे गये। इनके एक पुत्र चूँड़े ने युक्ति से मंडोवर में अपना राज्य स्थापित कर लिया। वहीं उसके तीनों अन्य भाई देवराज, जयसिंह और गोगादे उससे जा मिले।

गोगाजी ने यहाँ मंडोवर के भौमिया देव को पछाड़ा और उसको दी जाने वाली बलि बन्द करा दी। इस भौमिया देव ने गोगाजी को जालंधर नाथ जी से मिलाया। जालंधर नाथ जी ने गोगा जी को रलतली तलवार दी।

एक अवसर पाकर गोगा जी अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने जोइयों पर चढ़ दौड़े और दला को मार डाला। दला की पुत्री देऊ ने तिलक लगा कर गोगा को भाई बना लिया। इसी समय दला के पुत्र हांसू ने जोइयों को समाचार दिया। पर जब तक जोइये गोगा पर चढ़कर आये तब तक वह लोप हो चुका था। यह पता लगाने पर कि गोगा लछूसर तलाब पर हैं जोइयों ने उन्हें घेर लिया। गोगा जी रोटी बना रहे थे, घोड़ा उनके हाथ नहीं आया। उन्हें पैदल ही लड़ना पड़ा। जिसमें उनके पैर कट गये। इन्होंने जालंधरनाथ को याद किया। जालंधरनाथ ने प्रकट हो इनकी काया अमर कर दी, पैर जोड़ दिये, पर पैर उलटे जुड़ गये। जालंधरनाथ इन्हें दसवां सिद्ध मानकर अपने साथ ले गये।"

६.१.१. मारवाड़ के इतिहास में रेऊजी ने गोगा का जन्म सं० १४३५ और मृत्यु सं० १४५६–६० में मानी है। इन गोगाजी के ऐतिहासिक पुरुष होने में कोई संदेह नहीं।

६.१.२. इस कथानक में और जाहरपीर के कथानक में वाह्यत: तो कोई साम्य नहीं प्रतीत होता। पर कुछ मोटिफ या अभिप्राय अवश्य सामान्य दिखायी पड़ते हैं। जैसे—

(अ) जोइयों और वीरम जी में अंतिम युद्ध गायों के कारण हुआ था। जोइयों ने वीरम की गायें घेर ली थीं। गायों के लिए होने वाले इसी युद्ध में वीरम जी काम आये।

(आ) गायों को घेरने वाले जोइयों से ही (पिता का बैर लेने के लिए) गोगा जी ने युद्ध किया और उन्हें मार डाला।

(इ) दोनों पर ही नाथ की कृपा थी, इस गोगा पर जालंधरनाथ की, जाहर गोगा पर गोरखनाथ की।

(ई) जोइयों और गोगा का युद्ध मुसलमानों और गोगा का युद्ध था, क्योंकि जोइये मुसलमान थे सिंध के।

(उ) दोनों ही लुप्त हो गये। एक को जालंधरनाथ साथ ले गये दसवां सिद्ध बना कर। दूसरा पृथ्वी में समा गया।

फिर भी यह स्पष्ट है कि ये राठौर गोगा चौहान गोगा से भिन्न हैं।

७. गोगा जी का यश गायों की रक्षा के लिए प्राण की बाजी तक लगा देने में हैं। उनके पूजे जाने में इस गौ-रक्षा का भी एक बड़ा हाथ रहा है। वस्तुतः शत्रु द्वारा गायें घेरे जाने और उन गायों का उद्धार शत्रु को मार कर करने के वीरत्व का संबंध देवत्व से वैदिक युग से ही मिलता है। इन्द्र का सबसे बड़ा पराक्रम गायों का उद्धार ही ऋग्वेद में बताया गया है। महाभारत में कौरव, विराट नगर के राजा की गायें घेर ले गये थे। अर्जुन ने उनका उद्धार किया था। कृष्ण की गोकुल लीला में भी गोपों की सब गायें चुरा ली गयी थीं; उनका भी उद्धार कृष्ण ने किया था। इसी प्रकार इतिहास में हमें कितने ही राजस्थानी वीर गाय की रक्षा करने के कारण देवत्व को प्राप्त होते मिलते हैं। पाबू जी, तेजो, रामदेव आदि कितने ही वीर इस कोटि में रखे जा सकते हैं। अलीगढ़ जिले के गंगीरी कस्बे में गंगी पंथ का देवता मैकासुर भी गौ-रक्षक है। गंगी की गायें घेर ले गये थे उसके शत्रु, और उनका उद्धार किया था मैकासुर ने, उसमें उसने अपने प्राण भी गँवा दिये थे। इस प्रकार गौ-रक्षा और देवत्व में बहुत घनिष्ठ संबंध दिखायी पड़ता है।

८. हमारे नायक गोगा जी पर 'गोगा जी का रसावला' नामक एक ग्रंथ मिलता है। इसके लेखक हैं मेहा जी। यह कृति अठारहवीं शती की या उससे पूर्व की रचना होनी चाहिये, क्योंकि अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में इसकी जो प्रति है वह अठारहवीं १९वीं की हस्तलिखित प्रति से उतारी हुई है।

## सोहिले

९. यहाँ जाहरपीर या गोगा जी के कुछ सोहिले दिये जाते हैं। जाहरपीर के जागरण में सोहिले भी गाये जाते हैं।

९.१. सोहिले मूलतः जन्म गीत होते हैं। यही सोहर भी कहलाते हैं। जाहरपीर के जागरण में सोहिले गाने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि ये सोहिले यह सूचित करते हैं कि जाहरपीर का उद्‌भव हुआ है, अर्थात् वे पुनः अवतरित हुए हैं। इस पुनरावतरण के उपलक्ष्य में ये सोहिले गाये जाते होंगे।

९.२. ये सोहिले भी लोहबन के मट्टानाथ से सुनकर लिखे गये हैं। मट्टानाथ का कुछ परिचय पिछले निबन्ध में दिया जा चुका है।

## जाहरपीर के सोहिले

९.३. जब जाहरपीर की जात करने के लिए 'जाती' जाते हैं तो जाहरपीर की महिमा के सम्बन्ध में अनेक गीत गाये जाते हैं। उन गीतों को 'सोहिले' कहते हैं।

## जाहर के सोहिले

— १ —

सहर दलेलौ गाँउ जापै महरि पूरी नाथ की
गूंगा गजाधारी हुश्रौ जेवर के श्रौतारी
जाकूं धावै जगु संसार बात देखी ईमान की
संग नरसींगु सौ बीरु
माँगै लड़ुश्रा पूरी खीर
जे तौ धार पै परसंद, बीरी माँगै नागर पान की ।
गोरख टीला
श्रजब हटीला
सुगल तलैया पत्तुर पूजा भोलानाथ की ।
लागीं दस श्राठ
देख्यौ मैरी बीच ठाटु
चंदन की कड़ी लगीं बास्या के हाथ की ।
मंसानाथ गामें
गुरु गोरख कूं मनामें
जे भेक के परताप बात कहतु ना गुमान की

— २ —

श्रधर धरे करसा,
मैरी के ऊपर श्रधर धरे कलसा ।
बंकी महरी सौने के कलसा ।
सादर सहरूँ गुरू रे मनाऊँ ।
श्रौरु सैरूँ दुरगा । महरी के ऊपर० ।
गाम गाम में जुरै रे चिराकी ।
तेरौ मजलनि कौ चलना । श्रधर धरे० ।
निकरि संग ड्यौढ़ीनु भयौ ठाड़ौ
श्ररे हमें म्वां दरसन करना । श्रधर धरे० ।
माइ तुम्हारी भोजन लावै
बाबुल खरच बँधाइ । तेरे श्रधर धरे० ।
चल्यौ रे संग जमुना पै श्राया
जमुना जोर बहाइ । श्रधर धरे० ।

मलहा नाव डारि तू दीजौ,
मोइ बागर चलना । महरी पै अधर धरे ।
धरम की नाव सत्त कौ बेड़ा
जाई ते लगै चलना । अधर धरे० ।
ज्वाला नाथ बागर कौ राना
म्वां देवी के दरसन करना । अधर धरे० ।

— ३ —

बाबा कौ अगिमानी, ना रसिया मैंने अमरवा देख्या
अमरवा देख्या
जुलम का देख्या
तोड़ारै बजुर किवार ।
इक्कीस पान का बीरा तुम्हारौ
औरु दूध कौ प्यालौ
साँकर तोरै बाबा लोह मरोरै
तोड़ारै बजुर किवार ।
गावै नाथ सेवक सुखु पावै
सेवकु सुफल फलाइ ।

— ४ —

जोरूंगी दिवला
मैरी के आगें जोरूंगी दिवला ।
जोरि धर्यौ गोरख के आगें
जरी ऐ सारी राति चिराकी । जोरूंगी० ।
जोरि धर्यौ नरसींग के आगें
जरी ऐ सारी राति चिराकी । जोरूंगी० ।
जोरि धर्यौ बाछिल के आगें
जरी ऐ सारी राति चिराकी । जोरूंगी० ।
मंसानाथ भेख के काजें
जाकी हर चरना । जोरूंगी० ।

— ५ —

ऊपर ते आयौ रे असाढ़ु
मैं तो अलबत बागर जाऊँ ।

तेरी तौ बरजी चतुर पिया मैं ना रहूँ
गोरी कौनु करै हरफारु
जामें नारी पुरिष कौ नाएँ कामु
माँ बेटा परसैं पीर
पापी ऐ पीरु डारै मारि
भूड़ौं में निकारैं जानि
तेरी तौ बरजी पिया ना रहूँ
गोरी मेरें गाँठि खरचु हतु नाँइ
तू कहा खाइ परसै पीरु
बलमा मोइ सेरक लै दै रूअ
महलन में कातूं सूतु
तेरी बरजी पिया मैं ना रहूँ।
मेरौ अकरे मोल बिकाइ
मेरौ साठि रुप्या कौ सेरु
मैं ग्वाई ऐ बाँधि लै जाउँ।
तेरी बरजी ना रहूँ।
गोरी न्याँ (ञा) कौन बिलोवै दूधु
मेरी ननंद बिलोवै दूधु
ननदेउआ पसर[1] लैजाइ।
बलमा तुम करियौ हर फार
देवर संग लै जाऊँ साथ
मजलि मजलि के गूजरि के चालने
जमुना पै पहुँची जाइ
मलहा के डोंगा डारि
मेरी नैया लगाइ दै पार
बाबा की बोली जात
मेरौ घर कौ देवरु साथ
रानी तैनें बादर डारे फारि
म्वाँ मा-बेटा कौ ऐ कामु
तेरी बी बरजी रे, चतुर पिया ना रहूँ।

---

१. चराने

जमुना तौ जोर बहाइ
बाबा मेरी पल्ली पारि लगाइ
गावै बजावै रे 'सूरा' सोहिलौ
वु तौ म्वांऊ ते चलि दई हाल
छड़ियन की जात लगाइ
गोरख पै पहुँची जाइ
लड्डून ते पत्र भराइ
चोग्रो चंदन लै लीयौ मँगाइ
महरी पै पहुँची जाइ
जानें बालकु दयौ लुटाइ
पीर परसिकें रे गोरी धन बाहुरी
जेतौ तम्मू दीयौ ररकाइ
तमुग्रा में ते करति जुवाब
देवर मेरे काँटो लग्यौ भूड़ा रेत
काँटे की कसक मिटाइ
जे भुमि कहिऐं सच्चे पीर की ।
काँटौ काढ़तु देख्यौ पापु
देवर भौजी डारे मारि'
छोरा कौ है गयौ ग्राकु
देवर की छोंकर डार
भौजी कौ सागर ताल
ग्ररे जाकी बैंयन की बनि गई पारि
गावै बजावै सूरा सोहिलौ ।

— ६ —

इन भूड़ौं पै बलिहारी
भूड़ों पै ग्रधर धरी माड़ी ।
चौरे में तेरी करामाति जागी
साहिब सैरूँ गुरू मनाऊँ
सैरूँ दुरगे माई
परवत फोरि जिमी में निकरी
सामल पिंडी रे लटों वारी

१. टिप्पणी—सुना जाता है कि ग्राज तक वहाँ इन दोनों की समाधि बनी हुई है ।

चौरे में तेरी करामाति जागी
धुर बागर ते लीला पलान्या
दिल्ली की करी तैयारी
लाल पलंग पै सौवे बास्या
आइ पलंग ठोकर मारी
दौरी आई बास्या, तेरी अम्मा, राना
कहा जु उठी तोकूं बीमारी
लेटे से बैठ्यौ करिलीयौ
आइ तखत ठोपर मारी
अम्मखास बेली बास्या सोवै
पंडित बोले विरमचारी
धुर बागर में एकु पीर परगट्यौ
ताकी उठी ऐ जाइ बीमारी
क्या माँगै क्या लेस्यै सहजादौ
काए कौ भूकौ भाई
बागर आवै महरी बनबावै
जब सुख सोमन दूं माई
गाढ़ा भराइ लए माल के राना
बागर की करी तैयारी
बनि कें महरी सापरि आई
बनियाँ नें कलस चढ़ाए भारी
'आसकरन' रावलिया गावै, राना
तेरे हरि चरनों पै बलिहारी
धरि कें नौबति तेरी बाजें
पीलू तर नौबति भारी ।
तेरी इन भूँड़न में बलिहारी
चौरे में करामाति जागी ।

— ७ —

बनजारिन बनिबनि करति सिंगार
जे भुमि कहिएं रे सच्चे पीर की
बनजारौ टाँड़ौ लीयौ लादि
बागर कूँ रमतौ जाइ

जानें टाँड़ौ लीयौ लादि
गौंनिन में भरि लयौ मालु
जे भुमि कहिऐं । सच्चे बीर की
अरे यानें क्या क्या भरि लए माल
अरे वानें चिन्नी भरि लई खाँड़
जानें भरे ऐं गिरी रे बादाम
पूरब लाद्यो, पछैयाँ रमिचल्यौ
अरे जोरे पै पहुँच्यौ जाइ
जे भुमि कहिऐं । सच्चे बीर की
पानी कौ देख्यौ रे निमानि
जानें टाँड़ौ दीयौ थामि
अरे जानें उतारि लए रे माल
हाथ छबरिया रे बनजारे, बाँस की
जे कंडा बीनन जाइ
अरे जाइ घोड़ी वारौ मिल्यौ ऐ असवार
जाके कंधा पै धरी ऐ समसेर
अरी तू क्या भरि लाई माल
जे भुमि कहिऐं रे सच्चे बीर की
चिन्नी खाँड़ कौ बताइ दीयौ नौंनु
बादाम के क्यौला होंइ
जो तैनें माँग्यौ रे जोइ तेरें होइगौ
कंडा बीनि कें रे बनजारिन बाहुरी
बनजारे ते करति जुबाब
अरे जानें गाहकु दयौ लगाइ
बनजारौ टाँके तोरतु जाइ
हँसि हँसि कें चबाइ रही पान
बनजारौ करतु जुबाब
जे भुमि कहिऐं रे गोरे धन बीर की
अरे चिन्नी खाँड़ कौ है गयौ नौंनु
तू काऊ ते बोलि आई झूँटु
एकु घोड़े वारौ मिल्यौ ऐ असवार
ब्वाके कंधा पै धरी ऐ समसेर

जे भुमि कहिएं रे गोरीधन वीर की !
बाबा मेरे गए मालु बगदाइ
तेरी दूनी करूँ खैराति,
मैं फिरि कें बाँगर जाउँ
जे धन कहिएं रे सच्चे वीर की ।
एकु फलु माँग्यौ रे
द्वै तोइ दै दए जी
अरे सौंने कौ छत्रु बनाइ
चोबा चंदन औरु अरगजा
मेरी मलि मलि महरी लगाइ
गावै बजावै रे सूरा सोहिलौ ।

— ८ —

असाढ़ु महीना लग्यौ रमनि चहुँ बादर में छाई ।
मेरे उठै करेजा हूँक खोलि दिल कदी नहीं न्हाई
नगर में सोरु भयौ भारी
जाहरपीर अमीर करौ तुम महलन की त्यारी ।
सामनु महीना लग्यौ क झूला झूलें सबु नारी
मेरौ पिया घर नाँइ विपति भई सिरियल कूं ठाड़ी
बनी में करत कुहक मोरा
मेरौ सब तनु लैंतु हिलोर गुमट पै इन्दुर घन घोरा
भादों महीना लग्यौ, पुहुमि पै मेह परें भारी
मेरी थरथर काँपै देह पिया बिनु तड़पि रही नारी
दुपट्टा ओढ़ौ फुलवारी
जाहरपीर अमीर करौ तुम महलन की त्यारी ।
क्वार कनागत लगे दलेले में घर घर पुन्नु करें ।
पुन्न धरम हम जबई करिंगे जब बालम नजरि परें ।
कहै धन महलन में ठाड़ी
जाहर पीर · · · अमीर करौ·········
कातिक तिल के मास सरद ऋतु जाड़े की आई
रैन विहंगम लग्यौ महल में सुन्दरि घबराई
पिया बिनु नींद नहीं आवै ।
गाँठि खरचु ब्वाइ दऊँ बोलि नेंक जुलमी कूं लावै ।

अगहन महीना लगे टूटि गई आलम की आसा ।
राजपाट गए छोड़ि भये वे बनोवास राजा ।
पिया बिनु नींद नहीं आवै ।
काइ पठऊँ को जाइ खबरि नेंक लहरी की लावै
पूसु महीना लग्यौ पुहुमि पै सीत परै भारी
थरथर काँपै देह तड़पि रही तेरी घरवारी

— ६ —

बागर देस अनूप औलिया मंदुर भलौ बनायौ
बागर में साँचौ पीरु रे कहायौ ।
लगतई असाढ़ घटा चहुँदिसि छाइ रही
जाहरपीर बैठे जानें द्वाति हात लई जी
नरसींग बुलाइ लियौ पूरब खंदाइ दीयौ
सोमतु पायौ भगतु जानें जाँतई जगाइ लीयौ जी
निरभै के पूत जाने गरदन पै पाँउ दीयौ
पकरि बाँह लै आयौ
बागर में साँचौ पीर कहायौ ।
कान्हा कौ गिर्राज गाम
गोपीन कौ निज धाम
कन्नसींग माली कौ जाहर कौ बड़ौ ध्यानु जी
बाजत नगाड़ौ संग, जाहर पीर रहत संग
घोड़ा कौ खेंचि तंग
माली गोल बाँधि कें आयौ
बागर में साँचौ पीर कहायौ ।
परसा नाथ गामें गुरु गोरख कूँ मनामें
जोरि स्वान (स्वाँग) गीत गामें
राजा तेरे दरस कूँ आयौ
बागर में साँचौ पीर कहायौ ।

श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव

## किशुनेश भाट कृत
# शत्रुजीत-रायसा

'भारतीय साहित्य' के मुंशी अभिनन्दन अंक में जोगीदास का 'दलपति राव-रायसा' और एक अन्य अंक में श्रीधर का 'पारीछत-रायसा' प्रकाशित हो चुके हैं। रासो-ग्रन्थों की परम्परा में एक अन्य ग्रन्थ किशुनेश भाट कृत 'शत्रुजीत-रायसा' उपलब्ध हुआ है।

दतिया-नरेश महाराज शत्रुजीत (सन् १७६२ से १८०१) महाराज इन्द्रजीत के बाद दतिया की गद्दी पर आसीन हुए। उन्होंने बुन्देलों की प्रधान गद्दी ओरछा पर ओरछा-नरेश के दत्तक पुत्र कुँवर दूलहा जू को प्रतिष्ठित करने में दो बार सहयोग पहुँचाया। इस सहायता के एवज में उन्हें ओरछा-राज्य से १७ गाँव प्राप्त हुए।

सन् १८०० में उन्होंने महादजी सिन्धिया की विधवा बाइयों को सेंवढ़े में आश्रय प्रदान किया। उनका पक्ष लेकर लकवा दादा ने जब सेंवढ़ा के किले के सामने भारी तैयारी के साथ ग्वालियर के दौलतराव सिन्धिया के विरुद्ध मोर्चा जमाया, तो 'वीर दलप शरणदः' के पवित्र ध्येय से अनुप्राणित राजा शत्रुजीत ने ग्वालियर के रघुनाथ राव और फ्रांसीसी सेना नायक पीरू (Perrou) के विरुद्ध अदम्य वीरता दिखाई।

कैप्टेन साइम्स के नेतृत्व में बाँयें पार्श्व को तो दतिया के वयोवृद्ध वीर नरेश ने बुरी तरह परास्त किया। राजा अपने छत्र के कारण सहज ही पहचाने जा सकते थे, जिसके कारण उन्हें एक घातक घाव लगा परन्तु उन्होंने पीरू को भी घायल कर दिया।

पीरू की असाधारण वीरता के कारण ही सिन्धिया की भयंकर हार होते-होते बच गई। यह दावा कि पीरू मारा गया, भ्रमात्मक है, क्योंकि एक अंग्रेज लेखक द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक विवरण के अनुसार पीरू सन् १८०३ में रिटायर होकर फ्रांस गया, और वहीं अपने देश में मरा। इसमें सन्देह नहीं कि राजा शत्रुजीत ने बुढ़ापे में भी बाँकी वीरता का परिचय दिया, और इतिहास-प्रसिद्ध वीर महादजी की विधवा बाइयों की सहायता करते

हुए अपने प्राणों की आहुति दी । शत्रुजीत के बाद उनके प्रतापी पुत्र पारीछत गद्दी पर बैठे ।

सेंवढ़ा का दुर्ग लड़ाई की मार-तोड़ के लिये बहुत महत्व का है । सिन्ध नदी के किनारे घने जंगल से सटा हुआ यह दुर्ग बहुत पुराना बताया जाता है । जनश्रुति है कि जहाँ तीतर ने बाज पर विजय पाई थी, उसी स्थान पर यह दुर्ग निर्मित हुआ है ।

सेंवढ़ा का प्राचीन नाम 'कन्हरगढ़' है, जिसे हम 'किन्नरगढ़' का तत्सम रूप देने के पक्षपाती हैं । पुराने कागजों में 'कन्हरगढ़' रूप मिलता है, और इसका सम्बन्ध नन्द नन्दन की मूर्ति के कारण 'कृष्ण' अथवा 'कान्ह' से बताया जाता है । किन्तु आस-पास की प्राकृतिक शोभा के कारण इस भूमि को किन्नरों का प्रदेश बताया जावे, तो कोई अति-शयोक्ति न होगी । मानव की कृत्रिमता से प्रकृति की स्वाभाविकता कहीं पहले है ।

अस्तु, पन्द्रहवीं शताब्दी में 'सेंवढ़ा' एक सम्पन्न नगर था । ग्यारहवीं शताब्दी में चंडराय का पीछा करते हुए महमूद गजनवी द्वारा 'सरूआ' दुर्ग पर अधिकार जमाने का उल्लेख है । ऐसा समझा जाता है कि यह 'सरूआ' ही पुराने समय में 'सेंवढ़ा' का दुर्ग रहा होगा । भाषा और उच्चारण के अन्तर से 'सेंवढ़ा' को 'सरूआ' लिखा और पढ़ा जा सकता है । यह भी स्पष्ट है कि महमूद गजनवी की विजय का लूट-खसोट के अतिरिक्त कोई स्थायी प्रभाव इस पर नहीं पड़ा ।

यह मानने के लिये पर्याप्त आधार है कि आगरा (अकबराबाद) के सूबे के अन्तर्गत सेंवढ़ा का विशिष्ट महत्व था । राज्य और अब ज़िले का केन्द्र 'दतिया' सेंवढ़ा से प्रायः चालीस मील की दूरी पर है । दतिया से प्रायः बारह मील दूर पर बुहारा (शाहजहाँना-बाद) उन पिछले दिनों में एक सम्पन्न कस्बा था, जो दतिया की व्यवस्था करता था । आज 'बुहारा' एक ग्राम है, परन्तु प्राचीनता के उत्तम अवशेषों से पूर्ण । बनते और बिग-ड़ते देर नहीं लगती !

शोध के विद्यार्थियों के लाभार्थ हम यह रासो भी अपने मूल रूप में सम्पादित कर रहे हैं—इस आशा से कि यह आगे कभी विस्तृत चर्चा के लिये पथ प्रशस्त करे । इससे पुरानी हिन्दी कविता की कुछ बानगी तो पाठकों को मिलेगी ही ।

# शत्रुजीत रायसा

श्री गणेशायन्मः अथ श्रीम्हाराजाधिराज्यः श्री महाराजा श्री राउराजा सत्रुजीत बहादुर जू देव कौ राइसौ प्रारंभ ।

दोहा

गौर गिरीस गंणेश अरू ग्रहा ग्रहन कौ ईस ।
इन्हें वंद वरनन करौं शत्रुजीत रन रीस ॥१॥
भये अधिक तें अधिक इक रवि कुल मर्द महीप ।
भूप वैभमरनरंभ अति जंबुदीप के दीप ॥२॥

कवित्त

हंस बंस अवतंस होत आये कासी सुर, मधुकरसाह अंस ईश ही को मानिये ।
ताके दानवीर भयौ वीरसिंघदेव ताकै, भागवांन भूप भगवान राय गानिये ॥
करन तै सूर सुभकरन भयौ है ताके, जाकै षर्ग खेल षज वाकै खेल जानिऐं ।
ताकै भयौ हिंदुन की पत दलपत राउ रन रतो, भूपत जहांन मै वखानिऐं ॥३॥
दलपत नंद भयौ राउ रामचंद करो दूद दल द्रोहिन के षर्गन षपाऐ है ।
ताकै रन रूरौ रामसिंघ भयौ बैरिन के झुंड तौ वितुंड लौ ढहाऐ है ॥
ताकै भयौ गरुयौ गुमान महां वांहु वली दांनवारे सुजस जहांन मै जगाऐ है ।
ताके नंद रुद्र सौ नरिंद इंद्रजीत भयौ, वंश मै अनूप भूप ऐसो होत आऐ है ॥४॥
हार हर दांन करे करवर दांन करे करी करदान करदांन पगपेलांनै ।
जाहर जहांन करे विक्रम महान करे अकह कहांन करे अविनी अकेलानै ॥
नकसो निसान करे पंच महसान करे इन्द्रजीत के सपूत सत्रजीत अलबेलानै ।
रन मै दिसांन करे छीन कै दिसान वीर वैरिन किसान करे वरहू बुंदेलानै ॥५॥

छप्पय

सत्रजीत सुव प्रगट अघट भट संग विहारिय ।
हिंदवांन पर वांन आन लग्गिय भुज मारिय ॥
साज वाज गज राज गरुय आखेटक खिल्लिय ।
वीरादवीर रनधीर धन प्रिथियराज जन उग्गियव ॥
वल अत्र परीछत छत्रपति भुंम्म भोग इम भुग्गियव ।६।
आगम निगम अग्रंम्म ग्रंम्य कर रंम्म विहारिय ।
प्रीत सरीत पुनीत प्रजन नित नीत निहारिय ॥
धर्म धुरंधर धीर पुरंदर ह्वै सुप्रगट्टव ।
छवि छंड छपाकर छत्र लष खंढ षैड नभ उग्गयव ॥
छकि छरित छरस अस कस विहस पारीछत छिति भुग्गयव ।७।

### दोहा

सत्रुजीत कौ नंद अब दतिया अटल नरिंद ।
खेलत महि कौ इदं तिहूँ, देखत नसत नरिंद ।।८।।
प्रित्थिय राज तैं अलगरौ लरौ सूर सिरताज ।
सत्रुजीत रन राख लिय हिंदवांन की लाज ।।९।।
विदी वार रन रार सुन पारीछत छित कंत ।
वन्यौं चहियत राइसौ कहौं टेर गुनवंत ।।१०।।
सुनत श्रवन गुनवंत कवि आइसु उरमें राष ।
सत्रजीत कौ राइसौ वरनत भांषां भांष ।।११।।
जिहि विधि खाऐ घाउ मुख कैयक व्याल कृपान ।
त्यागौ तन रन भूम मै लागौ पद निरवान ।।१२।।
आयुस में दल दष्षिनिन करौ कछुक उतपात ।
जवर जमातें जोर कें करी लरन की घात ।।१३।।
जग्गै जी कौ मुख्पता लख्खौजी मुखत्यार ।
खीची दुर्जनसाल सँग और तपै दल भार ।।१४।।
अत वहीर प्यादे अमित घोरे बीस हजार ।
तपै तीस तोपें तमक आऐ कर गहि सार ।।१५।।
माधव प्रबल पटैल कौ लऐं कबीला संग ।
हिन्दुस्थांन को आमलो आऐ करत अभंग ।।१६।।
उत अंबो जी इगंला चार वंधु मजबूत ।
अमित द्रव्य वाके किलै भऐ सकल इक सूत ।।१७।।
ऐक सूत लख इगला लख्यौ करौ विचार ।
सत्रजीत दतिया धनी दीजै तिहि थर मार ।।१८।।

### छंदतोटक

दतिया पति साह हरौल अनी, तिहि के मुख पानिप ओप घनी ।
अतिसाषन साष जुझार महाँ, तिनके निस वासर संक कहाँ ।।१९।।
जिन संग जुरै यह नैम लयौ, कवहूँ नहिं पीछहु पांउ दयौ ।
जहि लुथ्थन वुथ्थन भुम्म घिरै, तहँ पीठ कहा नहि दीठ फिरै ।।२०।।
लखवा यह जांन प्रमोद भरौ, दर कूचन आइ मिलाप करौ ।
नरनाह लषै अत चैन भयौ, निरसंक तहां सब सैन भयौ ।।२१।।
लखवा नरनाथहि मंत्र भयौ, सुन संग समाज न ठीक दयौ ।
चलियौ गढ कन्हर पास अबै करियौ तहँवा सवही रसवै ।।२२।।

दोहा

सत्रजीत नरनाह की बाँह सकल दल छोड ।
छरी फौज लखवा गयौ जंग इँगलहि गोड ।।२३।।
दस हजार असवार सौ उतरौ सिन्धु गभीर ।
भितरवार डेरा करे पार नदी के तीर ।।२४।।
ये खबरें घर इंगलन, कही चरन सब जाइ ।
सत्रजीत कौ संग सुन, अंबो गयौ ससाइ ।।२५।।
सहज सजीलौ सिंघ तौ तिहि पर पष्षर जोर ।
अब विचार बचवौ कठिन कौन फैल कौ वोर ।।२६।।
यह बिचार मन कूत कर अंबो दूत पठाइ ।
लिखी सु दौलतराउ कौ कीजौ आप सहाइ ।।२७।।
जो सहाय करिहौ नहीं प्रगट कहौ नहिँ गोइ ।
हिन्दुस्तांन बंद आमली गढ़न फजीहत होइ ।।२८।।

छंद हनूफाल

यह बांच दौलत राउ, सुन सत्रजीत सुभाउ ।
सब साचि मानी गाथ, हमनैक वह नरनाथ ।।२६।।
पठवाइ पलटन तीन, सजसंग तोपैं दीन ।
तुम करहु जाइ सहाइ, सब इंगला घर जाइ ।।३०।।
लिख और कागद दीन, पठवाइ पंच प्रवीन ।
ऐ देउ पीरू हाथ, वहुरो कहै नरनाथ ।।३१।।
दर कूच पलटन धाइ, ते मिली आंवहि धाइ ।
संग दई पल्टन तींन, हुव ऐक मेक प्रवीन ।।३२।।
सग लयौ वालेराइ, मजबूत बंधु, सहाइ ।
असवार दोइ हजार, किय तमक तोपैं त्यार ।।३३।।
लिय ऐक से सब संग, सज चलौ रोपन जंग ।
वह वार सरिता पार, मेले सुआंन जुझार ।।३४।।

दोहा

उभय पार डेरा परे, उभय कोस दरम्यान ।
तरस रता डेरान पै लखवा कीन उठांन ।।३५।।

छंद-भुजंगी

उतै वंधु दोऊ लई जोत तोपें, खडे त्यार डेरांन पै पांउ रोपें ।
सजे संग जंगी फिरंगीन गोलें, सदा सुध्य अंगी अभंगी अडोले ।।३६।।
धसै कौन सूधौ वलो जंग नाधैं, पड़े हाल ते ज्वाल की वार बाधैं ।
परै कौन की गंम्य को वार फौरे, तजैं प्रान को काल पूछैं मरोरै ।।३७।।
फिरै पास दैकै सवै वाध मेला, जथा पारधी जान वैठौ अकेला ।
कछू षांद पै लूटआईपछारी, दई कोप तोपै गिरी सैन सारी ।।३८।।
वही भाँति लष्षौ वचौ जंग जोरै, दिया दाउ गोलांन की न्याउ रोरै ।
लयौ कूत अंबो पराक्रम्म ताकौ, पठायौ तवै जंग कौ वंधु वाकौ ।।३९।।
छली राइ वालौ नदी पार आयौ, लयै पल्टनै चार डेरा करायौ ।
चडे संगपै दोइ हज्जार वाजी, मिले हक्क पक्कौ सवै सेन राजी ।।४०।।
रह्यौ आठ जासं लषै भांन भोरं, बजे जंग नीसांन भौ शव्द घोरं ।
जुरे आंन डेरा नयै त्यार होकै, बड़े ऐक तै ऐक मानै न रोकै ।।४१।।
इतै कोप लष्षौ चड़ौ साज वाजी, वजे जंग वाजे सवै सैन साजी ।
लरै तोपको न्याउ है जाम बीतें, नहीं कोऊ हारै नहीं कोऊ जीतै ।।४२।।
परे जाइ डेरा दुवौ सैन वारे, तवै आंन कै मंत्र लष्षौ विचारे ।
करै जंग सूधी नही मेर पैहै, सवै सैन गोलांनही सौ उड़ैहै ।।४३।।

दोहा

तोपन सौं तन ताइवौ, यह नहिं उचित विचार ।
लूट कूट पुर वार कै, कीजै धरा उजार ।।४४।।
प्रात होत लष्षौ चलौ, लूटत गाँउ विसाल ।
पाछै वालेराइ गौ, कीन्है दाव कराल ।।४५।।
और दूत हरवर गऐ, पहुचे पीरू पास ।
कागद दौलतराउ कै, लीनैं दसकत खास ।।४६।।

छंद भुजंगी

लयें वान पीरू विचारै विचारे, बड़ी चित्त चिन्ता नहीं धीर धारे ।
किताबै लखे चित्त पावे न चैना, भयो वस्य भाभी भऐ अंध नैना ।।४७।।
करी मीच नै कीचकी घींच नीची, हृदै पैठ कें बुध्ध की आंख मीची।
रहीती कछू औध वांकी सरीरं, रहो आप इस्थांन पठवाय मीरं ।।४८।।

चलो पल्टनें चारले स्वॉम पेरी, चहूँ ओर ते हाल ही काल घेरी ।
लये त्यार तोपे चले चित्त कोपै, कहे यौ वुदेलानं सौ रार रोपे ।।४९।।
लगातार आए समनित मीजौ, परौ भिंड जा, इगंला को भतीजौ ।
तहाँ दौर अंवो भयो आन मेले, लये पल्टनें तीन ते जंग झेले ।।५०।।
असी तोप तैयार लै संग आयौ, चलो जंगको सिंघकौ घाट नायौ ।
लये दोइ हज्जार वाजी वलीयं, तहां गौर इस्थान पै वास कीयं ।।५१।।

दोहा

ऐ खबरें जगवा सुनी, उगो सकल दल अंग ।
सत्रजीत नरनाह बिन, को अँग है यह जंग ।।५२।।
परो भूप भाडेर पै, करत आमली जोर ।
गऐ दूत दरवर खबर, पहुचाई तिहिं वोर ।।५३।।
सुनत खबर नरनाह को, तन मन बड़ो उछाह ।
बुलवायो तह साहनी, सजवायौ बरवाह ।।५४।।
तदिप न जगवा को रहो, धीरज उमग उछाह ।
पारीछत नरनाह को, पूछन गयौ सलाह ।।५५।।
तुम अँगवो दल इंगला, कर तरवारन मंद ।
कहिये कहा सलाह, अब सत्रुजीत के नंद ।।५६।।

छप्पय

बिहस बदन नरनाह सहज वुल्लव बर बानिय ।
वीर अंग अनभंग जंग रंगहि सरसानिय ।।
मैं अगबहु दल भार सार धारहिं झकझोरहुं ।
कटक काट कर वार सिंधु सरिता महँ वोरहुं ।।
मम बाहँ छाहँ छितपाल तुम सहित सैन निरसंक रहि ।
इम प्रवल परीक्षत छत्रपत सत्रजीत सुत अत्र गहि ।।५७।।
दस हजार असवार सहसदस संग तिलंगह ।
कन्हरगड इकवार रार मंडिय अनभंगह ।।
सूरवीर इत कोप तुपकन बल डाटिव ।
षट हजार दल मार करह करवारन काटिव ।।

जाहर जहांन मरदांन रन भानु बंस जस जग्गयव ।
रघुनाथ सहित अंभाथ दल, बचउ भाग वस भग्गयव ।।५८।।
रहै कोट के बीच ज्यों कोट वांरो ।
धरैं वोट आसा करे चोट न्यारो ।।
धरे पाउ नीते प्रतीते न मानै ।
चले सत्रजीतै अभीतै डराने ।।५९।।

दोहा

मनसूवा असवारयें, करहैं आज मिलान ।
कन्हरगड ते कूच कर, जग्गों करी उठान ।।६०।।
खीची दुरजनसाल कौ, लयौ संग कर त्यार ।
सत्रजीत नरनाह के चले, कछुक असवार ।।६१।।

छंद तोटक

जगवादल बीचहि मै झटको खटको करसारनकौ खटको ।
लखके रघुनाथ तहां ठटको तम गोल तिलंगन को लटको ।।६२।।
तककै तहँ तोपन मार दई, रनरार तहां निरधार दई ।
जहँ तोपन दांव चलै वलसौ, जगवा तहँ भूमि तजी छलसौ ।।
असवार इतै उत तौप घलै, मन चाउ करै न उपाउ चलै ।
इहि भाँति कछू दल दाव करो, फिर फौज मुकामन लौट परो ।।६३।।

दोहा

जगवा को कह काम जह, तोपन उडत पहार ।
सत्रजीत विन समुप रुष, को अगवै दल भार ।।६४।।

छंद

सुनो रार की रीति कोपौ नरिंदं ।
सवारे सजौ जंग देखौ अरिंदं ।।
कछू फौज मेरी दऐ वित्र ठाऐ ।
निसा वेस कीनी निसा मै पठाये ।।६५।।
कहौ जाइ डेरान पै बान घालौ ।
वचै कीजियो चोट कावून हाँलौ ।।
लगाये लऐ आइयौ काम कीनै ।
सुगाडे करो मत्त मातंग लीनै ।।६६।।

दोहा

गऐ निसामै निकस तव, हुकुम सीस पर राख ।
ग्रटके डेरा इंगले, दई संक सव नाख ।।६७।।
सुनत खवर जगवा सहित, दौरे दुरजन साल ।
सत्रजीत की फौज सौ, करमेलौ ततकाल ।।६८।।

छंद भुजंग प्रयात

रही भोरकी रात तांवान घाले ।
परी रौर डेरा करै दौर ग्राले ।।
उतै ते तिलंगान घाली सुतोषै ।
कहै कोप कै भोरही रार रोपै ।।६९।।
कछू रात वीतै उवौ भान भोरे, चडे इंगले डंका वडे सब्द घोरे ।
करै मार गौलान को लेतु ग्रावै, लगा लौ चलै भूम जग्गो वतावै ।।७०।।
कहै खीज खीची कहा देत भामैं, गिरौ फौज पै जुघ्घ कौ सुद्ध सामैं ।
सुनी वात जग्गो कहे खीज खीची, तजै रार हूहै सबै वात नीची ।।७१।।
लगाऐ चलौ वात जग्गौ न मानै, विना सत्रजीतै सु को रार ठानै ।
यहै मंत्र कीनै लयै दाग ग्रावै, उतै इंगला दौरकै ग्रान दावै ।।७२।।
वड़े चाउ सौ कोट के मेर ग्राऐ, तहां रोप तोपै सु गोला चलाऐ ।
इतै सत्रजीतै परी कांन वांनी, सजौ जंग कौ सिघलौ सोपमानी ।।७३।।
उठी तुंग चुंगै लरौ ग्रान सुध्यौ, जहां इंगला जंग जग्गौ विरुध्धौ ।
डगे पाँउ जग्गौ दबायौ ग्ररिंदं, तवै वाहुतै भूम कूदौ नरिंदं ।
भई तोप तैय्यार वुन्देल वारी, घटा लौ जगै जे छटा विज्जुवारी ।
कछू ग्रापनी तोप जग्गो मँगाई, इकट्ठी सवै इंगला पै धुकाई ।।७४।।

दोहा

रांनी डगो पटैलली, जग्गो धरत न धीर ।
कागद लष्षो कौ लिखे, पठऐ दूत ग्रधीर ।।७५।।

छंद गीतका

तह वाँच कागद तुरत लष्यो कूच करके धाइयौ ।
तर सिंधु घाट नरिंद बलसौं इंद्रगड पर ग्राइयौ ।।
तहँ सुनत बालौराइ दौरौ सिंध तीर मँभाइ कैं ।
तरघाट कंजौली निराटहँ परौ ग्राडौ ग्राइ कैं ।।७६।।

सँग वीस तोपें चार पलटन है हजार सवार सौ ।
कर कूच अंवो पास आयौ परौ दल जह मार सौ ।।
दुव वंधु मेले ह्वै तहाँ इक सूत मंत्र उपाइयौ ।
कर कूच फौजह विदा भा उह सम तौर तुपाइयौ ।।७७।।
यह मंत्र मान इकंत वालौराइ दौरौ जंग कौ ।
सुन खवर लखवा गयौ दरवरदौर मान उमंग कौ ।।
तहँ झटक बालौराइ वीचहि लई कोंच वचाई कै ।
तव मुरक मेलौ वेउना पर कछुक मनहि कचाइ कै ।।७८।।

दोहा

लष्षो जो तबकूच कर, गयौ नदी के ग्रांम ।
उतरौ प ास पहूज के, अति मवास अभिरांम ।।७९।।
खबरें कन्हरगढ सुनी, सत्रजीत भुवपाल ।
गयौ दौर दरवर लयें, जग्गो दुरजनसाल ।।
आवत सुन दतिया धनी, लखवा अगमन लीन ।
मिले परसपर सरस मन, बाढ़ौ हरष नवीन ।।८०।।

चौपही

खबरें सुन अंबो अकुलानौ, सिरसा तें तज कीन पयानौ ।
सत्रजीत कौ लखौ सुभाऊ, धीरज तज अत भयव उषाऊ ।।८१।।
वालोजी को जान अकेलौ, धावै कहूँ बांध भट भेलौ ।
जुरै जंग तौ रूप न रैहै, हालहिं काम तमाम नसै हैं ।।८२।।
धर जिय जौमहिं कर भटभेलौ, टोला राउत पुर पर मेलौ ।
उत तें वालोराइ वुलायौ एक सूत तहँ मंत्र उपायौ ।।८३।।

छंद भुजंगी

समूचा करौ कूच दौरे सिताबो, भए लौंचको नै तह कौंच दाबो ।
दए काड़ भाऊ लई लूट सेना, कछू जंग काछे न पाछै तकेना ।।८४।।
धरी जौम जीमें करी कौंच खाली, करी सेंहुडै रारमानो खुसाली ।
चलौ जंग ठानें न काहू गदेलौ, नदी सिंघ पै वेरछा आंन मेलौ ।।८५।।

दोहा

दस पलटन तैयार संग, घोड़े पाँच हजार ।
धरे गरव सत जरव कौ, परौ सिंध के पार ।।८६।।
कन्हरगढ़ सौं फौज सौं रहौ, कछुक दरम्यान ।
सुनत खवर पहुचौ जहा, सत्रुजीत भुव मांन ।।८७।।
जग्गो लष्षोदल उमड, दुरजनसाल समेत ।
आए संग म्हराज के, मेले सिहुडैं खेत ।।८८।।

छप्पय

घोरे वीस हजार तोप चालीस त्यार कर ।
षांद वाद अमनैक रहे सिरदार धीर धर ।।
साखन साख जुझार सार धारय पगुपेलां ।
गहिरवार गंभीर प्रवल पंचम खगखेलां ।।
वीरादिवीर वुंदेल मनि सत्रुजीत दतिया धनिय ।
कड महल वाग मिल्लव नृपत, सहत मान लिन्निव अनिय ।।८९।।

दोहा

उमड वेरछा तै चलौ, अंबो कर घमसान ।
तोप नवल कोपत रूपौ, कन्हरगढ मयदांन ।।९०।।
इतै सूर सरदार सव, साजे वंम्म कराइ ।
रुरे धनी के हुकुम सौं, जुरे अनी पर जाइ ।।९१।।

छंद भुजंगी

चले वांन गोला मनो घोर घाई ।
मनौ रांम रावन्न कीनी लराई ।।
किलै तै घलै वीस तोपै उताली ।
मनौ कोपियौ कालकन्या कराली ।।९२।।
चलै एकसै साठ तोपैं तमंकै, धुंवा मै विरी चंचला लौ चमंकै ।
लगै वांन मै मै वान ते लौट आवै, मनौ दूत मीठी वसीठी लियावै ।।९३।।
परै लोट गोलांन मै लाग गोला, तहा दृस्टि मे तर्क आवै अमोला ।
लगै सांमनी जंग लालीन मेलै, मनौ वांकुरे वीर वट्टांन खेलै ।।९४।।
लगै जोर वारौ चलै लौट सोऊ, घलाऐ मनौ एक तै संग दोऊ ।
जडाकौ करै लौट अस्थांन आवै, मनौ टक्करै वीर मेंड़ै खिलावै ।।९५।।

इकै जूट फूटं उडै लोह करौं, मनौ दाव देषै दयौ घाल छरौं ।
इकै पैठ मौहारहू तें पछेलें, मनौ वांनि पें वांट कोठोन मेलें ।।९६।।

लगें जाहि वीरें उड़ै टूक न्यारे, मनौ खेत तैं लाल भुंडन् विडारे ।
उतै श्रौन के छिछ कूटें सरीरं, मनौ पोटरी लाल गुल्लाल वीरं ।।९७।।

लगें घोर घोरे गिरै फूट भूमै चमू चांप दोऊ मची जंग घूमै ।
रुपौ इस्ट ग्रारिस्ट है जांम वीते खड़े सैन दोऊ न हारे न जीते ।।९८।।

महीपै महीपाल बैठो बुंदेला, जथा जंग कौ हौसरो हौ ग्रकेला ।
लखै वांन गोलांन की मार जंगी, धरी भूम ग्रागै नराजीन संगी ।।९९।।

नहीं मूठपै हाथ डारै नरिंदं, तमासौ लखै जुध्ध को यों नरिंदं ।
डगें मेरु कैसे लगें पौन भोकें, इही भांत सौ इंगलो राररोकै ।।१००।।

हटे इंगला रार तै पांउ फेरे, गऐ वेरछा फेर पाछे न हेरे ।
इसी जंग दोवार कीनी जुभाऊ, हटौ चित्रता ग्रौर कौनौ उपाऊ ।।१०१।।

दोहा

ग्रंबोजी मन समभ कै, कीनौ मंत्र ग्रभंग ।
पीरू बिन यह भूप सौ, वोरन पर है जंग ।।१०२।।

विदी वार कागद लिखौ, पठय दूत दिय माल ।
पहुचौ पीरू पास जनु, जुलमी काल कराल ।।१०३।।

पाती पढ़ तइयार हुव, सजवाऐ सब ज्वांन ।
प्रांन जात ग्रसमान रन, मानहु सजे विमांन ।।१०४।।

छंद हनूफाल

सज चलौ पीरू कोप, जिय जंग जौमहिं रोप ।
कर इंगला कौ पकूछ, लिय जांन मरन प्रतकूछ ।।१०५।।

दस तोप लीनी लेस, जुतवाइ वाजी बेस ।
कर पलटनें सँगचार, जुभवार लिय निरधार ।।१०६।।

सत सात तुरक सवार, वड ग्रौर पांच हजार ।
दर कूच दर वर धाइ, उतरौ सुचामिल ग्राइ ।।१०७।।

मिय भिड थांनौ भिड, गैहि लीन जमतिहिं पिंड ।
कर कूच भिडह छोड, वुंदेल रार गोड ।।१०८।।

कर इँदु रखी मुक्काम, पठवाइ दूत सुनाम ।
दिय मंत्र तिनह सिखाइ, मुहि मिलहि अंबो आइ ।।१०९।।
सुन हुकुम मान विलास, पहुचे सुअंबहि पास ।।११०।।
तपसील दियहु सुनाइ, उठ चलौ अति अकुलाइ ।।१११।।

दोहा

सुनत खवर हरवर सजौ, अंबौजी अकुलाइ ।
मनहु लौट नौहार तें, मृतक उठौ सुख पाइ ।।११२।।
चली पलटनें चार सँग, अरु बाजी सत चार ।
पहुचौ पीरू पास तहँ, परौ सिंध के पार ।।११३।।

छंद त्रभंगी

बैंठे इक सूतं, दल बल कूतं मन मजबूतं, मंत्र करौ ।
बुंदेल अभूतं, रन मजबूतं, सूर सपूतं, बैर परौ ।।
हाकै रन रोरैं, मरद अमोरैं, कौन वहोरैं छौन छली ।
पावैं छित छोरैं, उमहिवछोरैं, कहर हिलोरैं कौन बली ।।११४।।
ताराइन तोरैं, चंदनि चोरैं, जममुख भोरैं, आउ घटै ।
सुमेर झकोरैं, फल मन फोरैं, केहर डोरैं, ताउ जटै ।।
अलकापुर ठोरैं, नवनिध रोरैं, लक्छ करोरैं, कौन गनैं ।
धस सोत अहोरैं, हिम गिर टारैं को सिर जोरैं, राउ तनैं ।।११५।।
भुवभार उतारैं, हरिहर हारैं, अग्नि अहारैं गरल पियैं ।
ध्रुव आसन टारैं, अमरन मारे, यह पन मारे, जुलम जियैं ।।
मुचकुन्द जगावैं, गगन ठगावैं, भीम भगावैं भारथ तें ।
मुनि कपिल डिगावैं, कुसलहँ गावैं, बान मँगावैं पारथ तें ।।११६।।
भवकी भय मेंटैं, तक्षक भेंटैं, पवन समेटैं, कर ईंचैं ।
गहि वाली फेंटैं, करें अनेंटैं, सिंघन सेंटैं, षिझ खिंचै ।।
को मांन अनीतैं, हेरहिसातैं. सीतामीतैं, को खटकैं ।
अव सत्तर जीतैं, सोष अभीतैं, कर रन रीतैं, को झटकैं ।।११७।।

दोहा

पीरू अंबो ऐक थल, इहि विधि करत विचार ।
कठिन सता नरनाह सौं, सनमुख गहवौ सार ।।११८।।
पुन्य घटे निघटे अवध, किहि को काल न खाइ ।
हौनहार वस सक तज, पीरू उठौ रिसाइ ।।११९।।

आठ पलटने प्रवल सँग षट हजार असवार ।
पीरू अंबोजी सहित भए जंग को त्यार ।।१२०।।

छंद मोती दाम

चलौ कर कूच वजाय निसान, करो तम तोप अनी अनवान ।
लयौ कर कोट तिलगन वार, चले तिन मध्य सवै असवार ।।१२१।।
लरौ नद सिंधु सुघाट मझाइ वरा गिरवास कछारहि आइ ।
सुनी खबरैं गढ़ कन्हर भूप, सु तामुख वोपव डारन रूप ।।१२२।।
दयौ नृप आयुस दूत वुलाइ, कहौ खवरैं लखवा दल जाइ ।
करै दल दुंद कछू कर कोप, चलावहि वाह घलावहि तोप ।।१२३।।
गयौ लषवानृप के ढिग दूत, दयौ सव मंत्र सुनाय अमूत ।
सुनौ नृप मंत्र गयौ ततकाल, भयौ संग खीचिय दुरजन साल ।।१२४।।
चडे संग आठ हजार सवार, ररै मुषमार धरै कर सार ।
कछू दतियापति को सँग फौज, धरैं जिय जौम करै रन पौज ।।१२५।।
तुरी दल सौदल दृष्ट करूर, छपौ जहँ व्योम उड़ी फिर धूर ।
करो लषवा दल में वगमेल, दयौ वह गौल तिलंगन ठेल ।।१२६।।
दई तह तोपन की मुह मार, दयौ वह गोल अडोल उसार ।
रहौ रुप पीरूय कीन मुकाम, रचौ जहँ कोट तिलंग तमाम ।।१२७।।
इतै लषवा नृप वंदय षांद, लगे जहं हौन जुझाउअ नाद ।
सुनी खबरैं गढ कन्हर वार, भयौ तह आप नरिंद सवार ।।१२८।।

दोहा

उत पीरू को रन अनी, संजोगिता सुजांन ।
वरन चलौ पथिराज सम, सत्रजीत मरदांन ।।१२६।।
चहुववांन तै चौगुनी, चडी सीस पर लाज ।
हुमक हंक हय पर चढ़ौ, सत्रुजीत महराज ।।१३०।।
सजे सूर सामंत सँग, करन सनमुख मंड ।
स्वांमि धर्म धन पालहैं, तन तरवारन छंड ।।१३१।।

छप्पय

टर समाध तिहि वार हरष कन्हरगढ दिष्षव ।
सत्रजीत रन काज चढ़व हयराज विसिष्षव ।।
गवर डार अरधंग गंग उतमंग उतारिय ।
इंचिय भुजन भुजंग चंद खिंचिय त्रिपुरारिय ।।

गरमाल गरल त्यागउ तुरत धौर धवल चड पथ लियव ।
उठ चुंगतुंग चंपिय धरन गरद गुंग गगनहि गयव ।।१३२।।

दोहा

तुपक दार चल चारसै, दो तोपै लिय संग ।
दो सै सुभट सवार लै, चलै करन नृप जंग ।।१३३।।
गनत न फौज अरिंद को, करत न अंग सम्हार ।
सत्रुजीत निज भुजन पर, धरे जंग को मार ।।१३४।।

छंद तोड़क

हयराज चढ़ौ महराज वली, सिरताज मनौ चलको पहली ।
घनघोर समान निसान दयो, सकसौर दिसांन दिसांन भयौ ।।१३५।।
तरवार गहे कर कंध धरे, सब अंगन जंग उमंग करै ।
हय वाग उठै नहि राज डगे, झुंक जात पुठो सिरपेंच लगै ।।१३६।।
छहरै सक सौरन की वन कौ, हहरे हिय काइर जीवन कौ ।
लखवै सुन सौर अनंद मयौ, वढ़ आगम जाइ नरिंद लयौ ।।१३७।।
हय हंक वरावर गैल गही, लखवा सिगरी रन रीत कही ।
पहुच नृप जां सव खांद वँधे, दल देख जरो रन नाघ नधे ।।१३८।।
लखवा समझौ नृप के मन, की यह के जिय जोम चडी रन की ।
इहि वार पनाह करै कर ता, रन रोस करे दतिया भरता ।।१३९।।
हम कौ पग रोप नही लरनौ, इहि वार न स्यांन कछू करनौ ।
रन रीति मुलाइ कही सुनिऐ, नरनाथ विचार यहै गुनिऐ ।।१४०।।
इत कांम कहां तुम कस्त करौ, तुम्हरे बल पौ दल मस्त परौ ।
अवही कढ कन्हर आप चलौ, तह वैंठ अरिदन मान मलौ ।।१४१।।
सव भीतर जो हम पास रहै, खलसौ खग खग्गन खोख गहै ।
सुनके नरनाह जवाब दयौ, सव अंग उमंग सुरंग मयौ ।।१४२।।
विन दूलह कौन वरात जगै, विन ष्वांविद को रन खग्ग खंगै ।
विन जीव सरीर करै करनी, विन भूपति फौज वरें वरनी ।।१४३।।
तुमरे मन कौ अभलाष भरौ, खलसौ खग खग्गन खेल करौ ।
सुनकै सव वोल नरेसुर के, सवनाम जपैं परमेस्वर के ।।१४४।।

दोहा

वहु उपाइ लखवा करौ, वहुत विचार सुनाइ ।
सत्रुजीत मानत नहीं, चड़ौ जुध्ध को चाइ ।।१४५।।
हौनहार सवपै प्रवल, को जग मेटनहार ।
सोच समझ मन यह करौं, लष्षोजी निरधार ।।१४६।।
खीची दुरजनसाल को, विदा करौ उहिवार ।
जग्गोजी जिहि मुह जुरौ, तिहिकी करौ सम्हार ।।१४७।।
सुनत वचन खीची करौ, जग्गोजी कौ संग ।
जहँ वालौ रघुनाथरा, जुरौ वेरछा जंग ।।१४८।।
सत्रुजीत वुल्लव बयन, चड़ौ जंगकौ चाउ ।
जिन्है राखनै प्रांन अव, ते कन्हर गढ जाउ ।।१४९।।
सुनत वचन नरनाह के, मनहि न खटकी खोट ।
सटक त्यार वहुतक गऐ, कन्हरगड की वोट ।।१५०।।
धंन्य तात धनमात वह, जिन जन्मौ वह नंद ।
बड़ै जंग कर वर कड़ै, मानत महां अनंद ।।१५१।।

छंद तोडक

हय हंक चडौ नरनाह सता, करकोप लयौ जुगरात कता ।
लखवा तव पुंछअ वात हितै, नरनाथ कहौ तुम जात कितै ।।१५२।।
हँस वुल्लव लौट नरिंद जहां, तक आवहु पीरुय फौज कहां ।
किहि भात मुकाम बंधेज वरे, किहिके मनमे कितनी उभरे ।।१५३।।
हय हंक गयौ नरनाह तवै, निरखौ दल मार सम्हार सनै ।
म्रगराज मनौ म्रग झुंड लखैं, जनु वाज लवा लगरे निरखे ।।१५४।।
दल देखत भूप कृपान गही, चड मूँछ तहां मिल मौहरही ।
रूख देखत मंत्रिन वाग गही, नरनाह अवैं न सलाह सही ।।१५५।।
नहि औध हतो नृप मान गयौ, फिर षांदन आंन मिलांन ठयौ ।
उतरौ हयतै नरनाथ जहां, उतरे सब सांमथ सूर तहां ।।१५६।।

दोहा

गयौ मान मय मान जह, अस्ताचल को वोट ।
प्रात होत चाहै भयौ, जुघ्घत्रसुघ्घ निखोट ।।१५७।।
भूम सयन तिहि निस करौ, सत्रजीत नरनाह ।
छिन छिन वीतत जामिनी, तनमन वड़त उछाह ।।१५८।।

दंई जाजमें डारकें, तह् पौंडे सकल सिपाह् ।
विन वंधन वाजी खडे, वागडोर कर माह् ।।१५६।।
सोयौ नृपति निसंक तह, भयौ जांमिनी अंत ।
संख वेद धुन सुन जगौ, तहँ दतिया कौ कंत ।।१६०।।
लाल रूप प्राची उवौ, उदयाचल चड़ मांन ।
उवौ प्रतीची भांन इत, सत्रजीत मरदान ।।१६१।।
संवतु दस अरू आठसै, अंठावन की साल ।
प्रथम जेठ सुद पंचमी, ईतवार सुभ काल ।।१६२।।

छंद गीतका

तह् सौच कर्म नरिंद कीनै वेद धर्म बिचार कें ।
अस्नान हेत मगाइ लीनौ गंग जल निरधार कौ ।।१६३।।
अस्नांन कर गौदान दीनैं सुघ्घ विप्र वुलाइ कै ।
वर वाउ पाँउ पषार सिचहु देह सव सुख पाइ कै ।।१६४।।
प्रथ्वी कुसासन डार ऊपर वैठकी सुच ऊन की ।
तह् दिपत आभा इंदतैं बड़ इंद्र नृप के सून की ।।१६५।।
जह् पाठ ऊ पीतांम्वरी कटि मध्य धोती धारियौ ।
वैठो कुसासन भूप तव गुरु गरूव मंत्र उचारियौ ।।१६६।।
जप इष्ट मंत्र अरिष्ट नासक ध्यान त्रिपुटी कीजियौ ।
रिष पित्र रविके हेत भूप जलांन्जुली तह् दीजियौ ।।१६७।।
तरवार पूजीं प्रेम सौ हरनाम राम उचारिकें ।
करदीप दांन स हौंम कीनै नित्त दांन सम्हांर कें ।।१६८।।
गरूवाइ चंदन चार गरूवे अंग अंग चडाइयौ ।
हर भात तज कुसलात तन की जंग उमंग वडाइयौ ।।१६९।।
किय भाल मधुकरसाह् साही तिलक केसर गार कै ।
तिहि मध्य विंद विसाल दीनौ गऊरोचन धार कै ।।१७०।।
कर दंडवत सत भांन कौ भुव भांन आसन छाड़ियौ ।
तह् जंग काज उमंग दूषन रहित भूषन मंडियौ ।।१७१।।
सज सीस पाग सुपेल कस सिर पैंज जर्व जवाहिरी ।
कलगी जराऊ जगमगैं सव रंग सोभा डार हो ।।१७२।।
जर,गोट हीरा जटित वंधव तुरत तोरा तौरकौ ।
मन मुक्त मोल विसाल तुर्रा मौर शुभ सिरमौर को ।।१७३।।

सन सोम मन मुक्तावली वड मौल की गल मेलियौ ।
रव ओप आनन वढ़िय कानन चौकडा चड खेलियौ ।।।१७४।।
भुजदंड वाजूवंध बध कौचान गजरा हेमकौ ।
भुज साह दलपतराइ तै सज जंग नकसौ नैमकौ ।।१७५।।
दुपटा कतैया मूँगिया सज रामचंदरि धारियौ ।
पुरषान की करवांन पै बीरादिवीर विहारियौ ।।१७६।।
तह सावरी सज सूतना कसवाय वांधी फेंट कौ ।
करवार वार करौ चहै नरनाह अरकी भेट कौ ।।१७७।।
गुजरात दौला को वनौ रग घनो पानिप सोष है ।
तेगा दुनाले ते अगीले एक सो रुष रोष है ।।१७८।।
पुर पीठ चौरौ चार आगुर अले मानिय लेखिये ।
निर दंभकर अत रंग राजत हार खंभ विसेखिये ।।१७९।।
अत साखसाखन साख ऐसी साख कट पट वाँधियौ ।
वाधौ कटार मुछार नै सव नाद रनकौ नाधियौ ।।१८०।।
लिय ढाल सिलहट हाल डारी अली वन्य नरिदनै ।
सव विदीवार मँगाइ खवरै सुनी श्रवन अरिंद नं ।।१८१।।
मखमल सुकासानी लपेटा जरी बूटा वेल कौ ।
कर लए खिदमतगार ठाडौ लखत रुखन हरेल कौ ।।१८२।।
जरजटित जाहर जीनपोस विछाइ वैठो भूप है ।
नहि काम की छवि काम की अभिराम रूप अनूप है ।।१८३।।
वंदूख खासी दो लये हुसयार दोइ खडे जहां ।
कंमान ऐक निषंग खासे खेलकौ लीनै तहां ।।१८४।।
वरछी अन्यारी चिरेदासे दमनी सम कौंधहै ।
लै खडौ खिदमतगार आगे ह्वै रही चकचौंध है ।।१८५।।
इहि भाँति वैठो देख नृप वर भाट विरुदावलि पडैं ।
सुभसाह दलपतराय के जहँ जागरा करषा रडै ।।१८६।।
सुन श्र.न मूछन हाथ फेरत डडनको उसकार कै ।
निरखै वँदूख कमान वरछी मूड अस निरधार कै ।।१८७।।
जिहि भांत भूप सजौ तहां तिहि भांत साज सजाइयौ ।
वुलवाइ कहव नकीब सौं सव सुभट त्यार कराइयो ।।१८८।।
सव तोप त्यार कराइ कें हुसयार प्यादे कीजियौ ।
हर भात हों सु जनाइ के नरनाथ आयस दीजियौ ।।१८९।।

दोहा

सुनत खवर नरनाह की, लष्षौ भयौ तयार ।
खट तोपै तैयार कर, आठ हजार सवार ।।१९०।।
माठ दूत पीरू सजें, दयौ म ल कर हेत ।
घरी घरी पर भोर तें, साची खवरें देत ।।१९१।।
जैसो बैठो भूप सुन, तैसो लख कर ध्यान ।
जुघ्घ असुध्घ न हो सकै, लखत किताब निदान ।।१९२।।
दषै प्रान पयान सौ, सूखै तहां निमान ।
इम ग्रीषम मध्यान्ह कौ, तप्पौ भयानक भान ।।१९३।।
तव महीप वुल्लव वयन, कर सूरन पर प्यार ।
गयौ समय टर जंग कौ, खोलौ सवै हत्यार ।।१९४।।

छंद भुजंगी

लयौ जान आयौ न जंगै अरिंदं, अली बन्दतें ढाल ऐंची नरिन्दं ।
धरी छोर कै साख तापै विसाली, धरौ छौर तेगा कटारी कराली ।।१९५।।
धरी छोर पौसाख तापै खुमानी, बंधी सीस पै पाग सेरे गंध मानी ।।१९६।।
चडायें रहो सूतना भूप जंगी, रहै त्यार दैखे कछू सूर जंगी ।। १९७।।
मडी तो महादेव की जुक्त माया, तहां चौंतरा पै छई स्वच्छ छाया ।। १९८।।
विछौ गासिया भूम पौडौ करारी, उसीसै दयै ढाल पोसाख वारी ।।१९९।।
लगे चारहूं ओर ते हौन पंखा, लगे ब्यार ऐसी भगै धूप भंखा ।।२००।।
वुलायो जतें जांगरा जो दुलारे, इसी रौल पै राग ऊँचो उचारै ।।२०१।।
लखौ वक्त मध्यांन्न की धूप जागै, गवायौ महाराज सारंग रागै ।
कह्यौ जांगरा सौं महाराज हर्षा, कहौ सुमकर्न के फैर कर्षा ।।२०२।।
सुनै जंग कर पावडी सांग औजे, करो जागरा को महाराज मौजे ।
गऐ पास पीरू तहां दूत धाये, विदीवार सौं भूप के भेद गाऐ ।।२०३।।

दोहा

सुनत खवर पीरू तहाँ, लीनी समझ किताब ।
यही वखत नरनाह सौं, करवे जंग सिताव ।।२०४।।
होनहार माथा कढ़ौ, चडो सीस पर काल ।
अंबोनी कौ टेर कै, भयो त्यार ततकाल ।।२०५।।

छंद माधुरी

सज करी कोप पीरू पयान, सव संग सैन तोपे निसांन ।
मन मांह मरन छड मंत्र कीन, गोला असंख भरवाइ लीन ।।२०६।।

छरें अनेक जंजीर वार, चड़ चलौ जंग कर सब सम्हार।
सिमटे तिलंग बाँधे सुकोट, पीरू कचाइ लीन्ही सुवोट ॥२०७॥
कह कोट वोट जानें न नीच, तन है न काल पाताल बीच।
कीनौ सुमंत्र अंबहिं बुलाइ, मजबूत करिए उपाइ ॥२०८॥
इक तरफ वहुत लख्यो सुभीर, लख तोप तुपक भजहै अधीर।
तिहि संमुष आप हूजे निसंक, लीजे सवार हज्जार वंक ॥२०९॥
पल्टन सु एक दो तोप संग, इहि मुख समार करयौ अभंग।
वुंदेल भीर थोरी प्रतच्छ, तंह एक एक को जान लच्छ ॥२१०॥
दावौ सुपीठ नरनाह आप, साखान साख जुझवार थाप।
तलवार धार तन तुरत अर्प, तिहि योर होत प्रांनन समर्प ॥२११॥
पल्टनै सात तइयार लेस, तोपैं सु आठ जुतवाइ वेस।
वाजी सु पांच हज्जार लीन्ह, पीरू पयान इहि भांत कीन ॥२१२॥

दोहा

सत्रजीत महराज ढिग, बोलौ खिदमतगार।
कछु पीरू की तरफ तें, उठत धूरिकों धार ॥२१३॥
सुनत उठव एडात अँग, हाथ मूछ पर फेर।
करत कोप राते नयन, पूरब दिसतर हेर ॥२१४॥
दूरवीन कर मैं लयौ, देखत नजर पसार।
परे नजर नरनाह की, कछुक निसांन सवार ॥२१५॥
हँस नरिंद वुल्लव वयन, आयौ पीरू त्यार।
सब सामंतन सौं कहौ, कस बाँधौ हथयार ॥२१६॥
सासन दें सबकौ नृपत, भयव आप हुसियार।
जगवन चाहत जंग जस, अगवन चाहत सार ॥२१७॥

छंदपाधरी

दव दुंद हेत आयौ अरिंद, इत सत्रजीत सज्जौ नरिंद।
सतयुग्ग त्रिपुर उतपात मूल, हतहेत संभु सज्जव त्रिसूल ॥२१८॥
तिहि मारधार त्रिपुरार नाम, निह कंटक कीन सतजुग विराम।
त्रेता सु सज्ज रामावतार, रावनहि मार हर भूम भार ॥२१९॥
द्वापरहि लाग मोटी पुकार, हर मार कंस चोटी उखार।
कलजुग्ग भार कनवज्जजूप, अवतार लीन प्रथिराज भूप ॥२२०॥
तरवार वार बह हत्यौ भार, संजोग ल्याइ सज करौ सार।
पीरू तिलंग अंबो अतार, वड गयव भूमि फिर कछुक भार ॥२२१॥

तव सत्रजीत अवतार लीन, दतिया नरिंद वकसी नवीन ।
सज्जौ सुजंग मनमान कोप, पीरू समेत अव करत लोप ।२२२।।

दोहा

पीठ दाव पीरू सुवन, जुरौ जंग पर आइ ।
महि विट्ठव वुंदेल मन, देखत सहज सुभाइ ।।२२३।।
रहि मुकाम लौ मेर तव, घली दुहू दिस तोप ।
धरन घूघ रन अत मची, अर्क आकाश अलोप ।।२२४।।

छंद भुजंगी

दुहूओर तें तोप पै तोप वाजै, मनो घोर आसाढ़ के मेघ गाजै ।
भयौ घोर सोरं दिसानं दिसानं, भजे दिग्गजं छोड आठौ दिसानं ।२२५।।
पराधार धारै परा पालकी सो, भजौ भार भीतें तजै माल कोसी ।
कहा माखि पै सोभ गोला घलाकी, विरी चांपित्रौ चंचला की चला की ।।२२६।।
गिरें गोल पै बान गोला सघट्टों, अकालं प्रलै काल मानौ प्रगट्टौ ।
दव्यौ और पीरू करें तोप धाई, तहां वेस वंदूख पै मार आई ।।
दुहूँ वोर तें वृंद वंदूख छूटै, तहां केर के पात लौ गात फूटै ।
महांराज कोपौ भयो भूम ठाड़ौ, मनौ जुघ्घ वीरं जगौ जंग गाड़ौ ।।२२७।।
चडी मूँछ भौहें भई वंक कोही, कँपे आज फौजें रहै कोन लोही ।
भए अंग उंत्तग मानी खुसाली, चडी भोर के भांन को आन लाली ।।२२८।।
लई हांथ में भूप वंदूख खासी, तहां प्रान खांनी लसी कालकासी ।
परौ दिष्ट ताकौ दई माझ, छाती गिरौ घूम भूमं भई देहराती ।।२२९।।
लई और तेंयार वाली भराई, मनौ आज लुकमान नै लाग लाई ।
दई कोप गोलीन कौ डार झौंका, फुटौ अंग जातें छुटौ औन मौका ।।२३०।।
घटै आय जो भूप की दिष्टि आवै, वड़ौ और छोटौ जुझोऊ दिखावें ।
अनी पें महाराज के रोम राखै, तजे वाह ताकी विधाता न राखै ।।२३१।।
महाराज तां सूर वारं हकारै, भरौ डार झौंका करौ सुध्घरारै ।
सुनी जो महाराज कीकांन वांनी, जुटै जंग पै सूर वीरं जुमानी ।।२३२।।
वड़े लाइ जैसे भएँ वाय संगे, छुटे सूर पैसें जुटे जाइ जंगें ।
वंदूखें चलै चार सैं भूप संगी, उतै सात हज्जार घालें फिरंगी ।।२३३।।
घलै तोप छर्रे अगंती वदूखें, लखें दष्ट देवान के प्रांन सूखें ।
जमी जुघ्घ खेतं सिची वार वारं, लसैं सूर साषा धरा धन्यवारं ।।२३४।।
धुंआ मेघ पेरे-यों रहे आंन छाई, मनौ पांहनी वृष्ठ वज्रो कराई ।
महाराज के सूर आंगें अरेजे, गिरे घूमके भूम फूटे करेजे ।।

करौ जाजरौ कोट फूटे तिलंगा, गिरे दोइ हज्जार ह्वै अंग भंगा ।
महाराज घाली बंदूखें उताली, हटे पांव वंदीरिलै सांख खाली ।।२३५।।

दोहा

ऐक अंग दावें करत, लष्यौ जो रन रार ।
आठ हजार सवार सौ, खट तोपन की मार ।।२३६।।

छंद मोती

रूपौ लषवा गहि षाँद गरूर, चडी जिय जौम वढ्यौ मुखनूर।
रूपे रन आठ हजार सवार, पिलौ उत गोल तिलंगन वार ।।२३७।।
दई इततें तक तोपन मार, दयौ वह गोल अडोल विथार ।
जुरौ फिर गोल करी रूप रारि, दई पिल खांन वँदूखन मार ।।२३८।।
गिरे तह फूट कछूक सवार, भजे रनतें सव आठ हजार ।
रूपौ लखआ रन डील न आप, रहे भट संग कछू थिरथाप ।।२३९।।
गिलौ वह गोल तिलंगन वार, दई तह छर्रन की मुँह मार ।
लगी लखवै इक आंन बंदूख, गई कड पार रूपौ रूष रूख ।।२४०।।
डगे सब संगिन कीन सलाह, भयौ अँग संग चलौ नरनाह ।
कहै लखवा चलअौ न सलाह, रूपौ रनमाहिँ सता नरनाह ।।२४१।।
परौ जंह पैदल भारतभाम, तिहै तजवौ हय मंत्र निकाम ।
डगे न लखौ लखआ चित चाइ, लखौ वर जोरिय वाज चडाइ ।।२४२।।
लई गढ कल्लूर की यह गैल, भये इकतार तने सव फैल ।
गयौ लष गोल भयौ उतसाह, रूपौ तिहि सुघ्घ सता नरनाह ।।२४३।।

दोहा

जह दल सकल समेट कै, पीरू कहत अरिंद ।
प्रांन हांन की संक तज, चापहु ताख नरिंद ।।२४४।।

छंदमोती

वढ़ौ दल दव्विय पीठ अरिंद, लई कर कोप कमान नरिंद ।
कसीसत कांन असीसत मांन, छुटैं सर सुघ्घ फुटै तन त्रान ।।२४५।।
भयौ यह भानु के कुलै वरदांन, चलावत है नृप कर्न समान ।
कड़ें सर पार चलावत कोप, रूपौ जन पारथ भा रन रोप ।।२४६।।
खगै खल जे नृपके मुख आइ, तिन्है तंह देत निषंग वनाइ ।
घलैं सब साइक रिज्जव भौन, मनौ यह सिष्षव सिष्य बदौन ।।२४७।।

दोहा

वृंदबान बरषा भन यै, गई फेर दल कूह ।
धाऐ षिज हंकार कर, आए सिमट समूह ।।२४८।।
वीर वांह वरछी लई, छई सता मुष ओप ।
जन कुमार दल करनकौ, किय कुमार अव कोप ।।२४६।।

छंदतोटक

वरछी नरनाह साताय करी, खल संक्य न सिंघ जथा बकरी ।
यहि भाति महीपति खेत खडो, सिव सत्य गहै जनु आपु अडौ ।।
जिहि पै नृप कोप चलावत है, तिहि के उर पार सलावत है ।
वड पीठ कछूक अनी सरसै, कड वद्दल भांन कला दरसै ।।२५०।।
उरपार कड़ै छुट देह गई, विधि सो विधि को जनु सक्ति दई ।
सिर फुट्टव सांग सही निसरी, सिवनै जनु आंख दई तिसरी ।।२५१।।
दल सांगन मार उसार दयौ, लखकै मन पीरुय सोच भयौ ।
छलको तव मंत्र फिरंगि करौ, तिहि कौ करकाल तहां पकरौ ।।२५२।।

दोहा

ढरकसवार बुलाइ कै, कहौ कांख पर जाउ ।
प्यादे सकल समैंट हम, करत सनंमुख न्याउ ।।२५३।।
दल हँकार हुव काल वस, भयौ अनी अगवान ।
दो हजार असवार नें, कीनौ कांख उठांन ।।२५४।।
हांका होकी दुव तरफ, बडी कराल अनूप ।
सिक्का दलपतराय कौ, टिक्का राखें भूप ।।२५५।।
गढ गंजन गुमराह मर, रन रंजन तज सथ्थ ।
दल भंजन महराज तह, पंजन बल समरथ्थ ।।२५६।।

छप्पय

कर गहि काल कराल हनिय आयें कर दिन्निव,
सत्रजीत पर आइ समुख पीरु रन किन्निव ।
पांउ रोप कर कोप हुमक हंकार घाल दिय,
पंचम प्रबल प्रचंड सांग अरि अंगहवाह किय ।।२५७।।
रह ´अ्रतकु देह धौरे छनक प्रथम प्रान गवनह कियव ।
कर हिस्त भिस्त लटक्यव घरन, मनह दौर दोजक लियव ।।

दोहा

छूटा कोवरछी तहां, पीरू केउरवार ।
हुमक हंक हय पर चडव, लई काढ तरवार ।।२५८।।

कवित

पेल चडौ दिन दूलह कोप, मचों जहँ तोप धुम्रांन की धूधौ ।
घालवँदूषन वांन चलाइ, चलाइकें सांगन सौंर न रूधौ ।।
को करै सतरजीत की सँग रचौ सु विरंच विचार कछू धौ ।
राज मिलें प्रथिराज सिवा इकवैंको लरौ तरवार न सूधौ ।।२५६।।

दोहा

धन्य घरी सुभकरन तैं, जिहि कर कढ़ी कृपांन ।
धन्य घरी नृप जनम की, धन दतिया थिर थांन ।।२६०।।
किरवान लसैं विस्नुकै चक्र जैसे सक्र कै,
अनहुज छाम कै कुठार रघुराम कर वांन ।
जिम सिव कै त्रसूल गननाइक कै,
फूल ज्यौ कुमार कर कुंत हनमंतन वसान ।।
बाहु वल जू कै हल सस भान कै,
निकर कर भीमकै गदा ज्यौं सदाय पक्छ षगांन ।
कुछत्र छव छाजै लाज हिंन्द को विराजै,
आज सत्रजीत राजै यौ विराजै किरबांन ।।
लसै पानिप सौ पूरो लोह लहर गरूरो,
डसे वैरिन के अंगन भुजंगन समान ।
कडै कोप कालकासो चमकै तै चपलासी,
मारतंड को कलासी है प्रचंड वलबांन ।।
चडी पंचम प्रचंड के अषंड भुजदंड होत,
नउषंड मंडल मैं विरद वषांन ।
सदा जीतन अजीत छत्रधारी सत्रजीत,
करौ हिदपला भारी तिहारी किरवान ।।२६१।।
जहां दौरो देख तुरक सवारनपै सूधौ सोष,
गरुवौ गुमानी गोल गंजन अमीन ।
जहां पैठो छांड भेलौ नहि रेलौ निरसंक,
वीर बरहु वुंदेलो अलबेलौ मरदान ।।

जहाँ सूट सूटकम्मर तै गऐ संग सूर,
लगौ जंग रंग नूर जरमूर तै दिषांन।
तहा राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चितचाही वरवांही किरवांन ॥२६२॥
जहां छाडिकै सिपाही पातसाही कौ समाही,
उतसाही सोष साहि वनै कीनौ घमसान।
जहां उमग उमाही दौर दाही,
अनी द्रोहिन की ताही समे षलकसराही समुहांन ॥
जहां वोलतो कराहीजे कराही वाल वैरिन,
की राखियौ पनाही भऐ राही पिय प्रान ॥
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चित चाही वरवाही किरवांन ॥२६३॥
जहां छांड कै सिपाही पात साही कौ समाही,
उतसाही सोव साहिव नैं कीनौ घमसांन।
जहां उमग उमाही दौर दाही भए राही पिय प्रांन तहां राखी।
नरनाही सुभसाही अवगाही सत्रजीत चितचाही वर वाही किरवांन ॥२६४॥
जहां उततै अरिंद महारिंदं रजपूत
खरे अरे आन अनीय अनेरे अगवान।
जहां दोऊ दल दौरे ऐक ऐक मेक
भये वाहै वीर वरछी वँदूखन कमान ॥
जहां फूटे तनपात लौ गुमानिन के गात
गिरे भूतल प्रभात भिरै भीम के समान।
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ॥२६५॥
जहां झपटैं जुझार वांह दपटै दरेत्तै ऐकै
चपटै चमू को तुंग चुंगन उड़ांन।
जहां ऐकै कोप कपटे कृपानन करेरी वाड-
हाड़न की छिपटैं उड़ाती आसमान ॥
जहां रपटै धिरमाह लपटै दिखात
लालपैसो ष्याल खेलौ वीर पंचम अमान।
जहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ॥२६६॥

जहाँ लतह पेटी कस कषची लपेटे ढाल
ऊपर चपेटी भय मेटी करस्यांन ।
जहां डारै दास्तांनै मस्तांनै वाधवानै
वीर ठानै जंग जौंम समुहांनै मरदांन ।।
जहां झिलम सनाह करै पाखरौ पनाह
हाथ मोरे नरनाह तिन्है सिवके समांन ।
तहांराखी नरनाही सुभसाही अवगाही
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ।।२६७।।
जहां तमक तुरंग जंग रंग कौ उमंग भरौ
देखत तमासौ फिरैं भानु कुलभान ।
जहां सूरनसौ सूर जुरै राजै मुख नूर गजै
सोषी भरपूर सुनै घोरे घमसान ।।
जहाँ जिरह जँजीरन सौं ज जर जलूसदार
नजर परे ते परै वजर समान ।
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ।।२६८।।
जहां पतितै विहून भई भामिनी सिगार तजै,
सजै रांड़ रूपकौ लजै जौ कुलकान ।
जहाँ डारै छोर तोरा टोप कलगी उतारै,
फारै पेटी चिलतांन कौप वारै तनत्रांन ।।
जहां वाके विरदैत अनी आछे अखरैत,
फिरौ ढूंड़त वनैंत वीर पंचम अमांन ।
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ।।२६९।।
जहां जंगमै जुझार गहि मूठन मुछार,
स्वांम धर्मैं उरधार लई काढ़कै कृपान ।
जहां जीतव कौ सार यहै मन में विचार रन,
नीकौ निरधार भार धारकै भुजान ।।
जहां ढार ढार मुंड रूंड डार डार धौरिन,
तै मार मार भाषत है मही मै मरदान ।
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवान ।।२७०।।

जहां जूटजूट जात जोर जवर जमातन के,
छूटछूट गिरत धरा पै बिन प्रान ।
जहां खूटखूट नाउ इकै चाउ सौ चपेट,
घालै गुरज गुजारि गिरै गाज के समान ।।
जहां टूट टूट टोप टूक टपकै धरापै,
सीस फूटफूट जात फैल फूट के समान ।
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ।।२७१।।
जहां झराझर सार झुरै झलन मझार चलै,
चारौ वोर वार डंडवार के समान ।
जहां श्रोनित वुछार परै भीजत मुझार,
न्यांउ नदके कछार सीचै बीर विरवान ।।
जहां सुमन सभागे फल जीतन के लागे तन,
त्यागे तरवार सौ स्वांमि तकी आंन ।
तहाँ राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ।।२७२।।
जहां ढक्के होत मालिन के ढालिन के ठक्के,
होत ठाड़े जिम लक्के पत पक्के मरदांन ।
जहां आयो गड पोत होत छक्के तरवारन के,
स्यारन के सक्के मन नक्के आसमान ।।
जहां हाथ घाल थक्के भरे श्रोनित के थक्के देख,
हक्केदार आये दौर दसहू दिसान ।
तहां राखी नरनाही सुभसाही अवगाही,
सत्रजीत चितचाही वरवाही किरवांन ।।२७३।।

अथ छै रित वरनन

जहाँ लाल भए अंग स्यांह तोपन,
तिलंग मनौ फूले पलास दल उन्मत उदयान ।
जहां टूटै तरवार गिरै छटके कटार,
वीर वगरौ वहार पत छारन के समान ।।
जहां कंत दतिया कौ वरवैरिनकौ अंत करौ,
वरह बसंत मंजुघोषा मुखगान ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हांरी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुक झारी किरवांन ।।२७४।।

जहां वाग दैय वंग जुरी जंग का उमंग दौर,
दाबौ दल दंग दावानल के समान ।
जहां सूखे तरुपात लौं गुमानिन के गात,
लगै सारन की लपटै लपेट लेत प्रान ।।
जहां तेज को मजेज कौ अँगेज करै कौन,
भयौ भान वंस मोष मतां प्रोषम कौ मांन ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हांरी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२७५।।
जहां घनलौ घुंमड दल उमड अनीपै जुरै,
तडता तडप कडौ कईक कृपान ।
जहां औजें साँग नेजे वेझे वेझलौं करेजे,
रहे मानौ पौंन घेरे छूट धुरवा धुरान ।।
जहां त्यागौ तनहंस औन वरषा लगी है,
जगी चात्रक लौ वंदीजन करत वखांन ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२७६।।
जहां कइयक हजार तरवार कडी दोऊ,
वोर फूलौ जनु कांस धरादव्वन निदान ।
जहां फूटजात सीस सोष कट जात गात,
करै पथिक लौ प्रांन आसमान कों पयांन ।।
जहां खासी चार चंदकासी कीरत प्रकासी,
लसै पानिप विमल मुष कमल प्रमान ।
तहां भारी भुंजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२७७।।
जहां लाग मुख धाउ फिरै चाहुड सौ चमूमैं,
लत रूधिर अत्र हूमै घूमै चावै जनु पांन ।
जहां ऐकै वीर वरहू वरंगनां वरनत,
ऐकै वास करै मारतंड मंडल महांन ।।
जहां ऐकन के माग भऐ पीपर के,
पात सोष सीतके सताऐ मुख कमल निदांन ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हांरी अत्रधारी,
सत्रजीत छंत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२७८।।

जहां तारी तलवार पिचकारी,
तांवदूखन की खेलत निसंक सूर वाडे महमांन।
जहां गांठ जोर जुग्गिन नचावै नचे,
आप ताप तन की वुझावै पावै फगुआ प्रमान।।
जहां लाल भए श्रौन रंग लपटौ गुलाल अंग,
ऐसो ख्याल खेलै को मही मै मरदान।
तहां भारी भुजदंडन सम्हांरी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२७९।।

दोहा

लगौ घाउ नरनाह मुख, वढ़ौ अधिक चितचाउ।
खडो खेत करवर कड़ौ, धन दतिया कौ राउ ।।२८०।।
हिंदू ताकौ नाम संग, हतौ छरी वरदार।
पकर वाग वरवाह की, करी अरज तिहिवार ।।२८१।।
करी आज सवतै सरस, तरवर आइसु वेस।
चलियै अब कल्लरगड़ै, वीतौ जुघ्घ नरेस ।।२८२।।
चोपदार ऊपर गिरे, श्रौनित वुंद अडोल।
जनु वगसे महराजनै, मानिक लाल अमोल ।।२८३।।
झपट वाग दल कौ जहां, फिर जुट्टव महराज।
कर साइर अग झुंड लख, जनु झपटौ अगराज ।।२८४।।

किरवांन छंद

जहां काठकै कटारी उरवारी अमनेक,
करवर दुहुधारी भुजभारी मरदांन।
जहां रही लगतारी वही रुधिरपनारी,
जांन जरतै निकारी जनुकारी डसौ न्यांन।।
जहां वोझ लगी आंत गहै जुग्गिन की पांत,
पनहारी पनहारी सी निहारी कलकान।
तहां भारी भुजदंडन सम्हांरी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२८५।।
जहां कीनौ दसरथ्थसून वानर के,
नथ्थकौन वै गुनगथ्थके उठान।
जहाँ कवकौ अकथ्थ करौ भारथ ज्यों पथ्थ
रथ रथ्थ रोक वोलै जय पंचम अमान।।

जहां हथ्थन समथ्थ सथ्थ भए लथ्थ पथ्थ,
जुथ्थ लुथ्थनके वुथ्थ भूम भयकै भयान ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी भुकभारी किरवांन ॥२८६॥
जहाँ फलच्चर चरै वेस विचरे वराती भए,
देवन की अंगना उमंग करें गांन ।
जहां हांक हांक हनी घनीघनी सैन सत्रुन की,
अनीवरै ठाड़ौ दिन दूलह अमांन ॥
जहां श्रौनित सौ सनी रार ढनी घमीगान,
मान बनी फिरैं वना चार चौसठ सुजाँन ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी भुकभारी किरवांन ॥२८७॥
जहां भैरव जमात लखें भूतन की पांत,
खेत कूकत फिरत प्रेत हूकत समान ।
जहां दीस कै तमासौ जगदीस विसै वीस देत ।
हरषौ असीस सीस पंचम कै पान ॥
जहां जुग्गिन जमातै नंचै नृत्य वहुभांतै करै,
गान अवदातै कलकंठ सुखदान ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी भुकभारी किरवांन ॥२८८॥
जहां मोटी जांघ षारन मभाइ मोद मोटी भई,
रुधिर अहोटी तज दीनै पातपांन ।
जहां लटकी रपट उठी ठठकी चुचात चोटी,
फिरै वाह जोटी जुर जुग्गिन सुजांन ॥
जहां मोटी करी कीरत निखोटी नरनाह कव,
पावत न छोटी भई उपमा जहांन ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी भुकभारी किरवांन ॥२८९॥
जहां तात भई छौनी हरमौनी गलमाल भई,
काली करताल दई कहकै अहांन ।
जहां छाल भई स्यारन की देह विन माल भई,
ढाल भई आउ न्याउ नाकी विन कान ॥

जहां वीरता वहाल भई बैरिन कौ काल भई,
तीछी ततकाल भई पंचम कृपांन ।
तहां भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२९०।।
जहां तेजसौ तमक ज्वाला रूप ह्वै करालकरे,
गारद गनीम उड़ै पारद लौ प्रांन ।
जहां सारद कवारद लौ वैरी वर वृंदन से बसे छाड,
राज जमराज के मकान ।।
जहां देस देस कीरत प्रवेस करी वेस,
सेस सारद समेत गावै नारद निदांन ।
तहँ भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२९१।।
जहां भरम भडारिनकौ करम सिपाहिन कौ,
धरम हथ्थारन कौ राखौ पैज पांन ।
जहां राखौ मुष नूर सूरपन कौ सहूर हूर,
हैरौ कर हार लयें साजकै विमान ।।
जहां आन राखी वरहु बुंदेलन की,
वान राखी भाखी गुनवंत कवि कीरत जहांन ।
तहँ भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२९२।।
जहां हार दयौ हरकौ अहार मासहारनकौ,
भूम भार तारन कौ कीन्हौ कुहरांन ।
जहां पालकन दुज कौ दयौ रूजक सिपाहिन कौ,
तुजक बुंदेलनकौ वगसौ महांन ।।
जहां राज दयौ पंचम परीक्षत वहादुर कौं,
समर सपूत पूत जानौ मरदांन ।
तहँ भारी भुजदंडन सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ।।२९३।।
जहां मारौ कंसराजन कौ वोयौ हंसवंस,
अवतंस अंस धारी काँपौ काल के समान ।
जहां समर सिरानै सूर साचे मृग साहव के,
महिर महीप दए तिनकौ मकान ।।

जहां ऐकै हर लोक रव रूरौडच ओकि ऐकै,
सिखिर सुमेर को व साऐ थिरथांन।
तहाँ भारी भुजदंडनि सम्हारी अत्रधारी,
सत्रजीत छत्रधारी झुकझारी किरवांन ॥२६४॥
जहां खाऐ मुख घाइ हाथक ईयक चलाइ,
मार पीरू रिपु राइ काट पलटनै महांन।
जहां कुध्धकै उपाइ जुध्ध वारिघ मचाय,
काढ़ी कीरत सुधा सी बडी दसहू दिसांन॥
जहां नकस नसैनी सुषदैनी पांउ देत ढायौ,
ब्रह्म कहै आपौ पद पायौ निरबान।
तहां सत्रजीत भूप इन्द्रजीत के सपूत करौ,
विक्रम अकूत जय जंपत जहांन ॥२६५॥

दोहा

घन दपंत जिनकै भयौ, तोसौ नंद नरिंद।
नेत वाँधषग षेत में, मारौ प्रबल अरिंद॥
तीन लोक जय धुन भई, धन्य भानुकुल भांन।
तनतरवार न छाँड़ियो, सत्रजीत मरदांन ॥२६६॥

कवित्त

फैल कर जानै अरमुखन मलाऐ मैल तिनहू की गैल अैल दिल दाहियतहै।
प्रवल अमान पेस वांनहि न मानी आंन सूवन की सैननपै षग्ग वाहियातहै॥
काट काट पीरौ कों सजीलौ शत्रुजीत खेत पंचमहि चेतवारे गुनगाहियतु है।
भाखै आसमान मै विमान बैठ भांन, वाह, वंसमै सपूत पूत ऐसे चाहियत है ॥२६७॥

दोहा

तप जप पुन्य प्रताप को, बाढ़ौ अमित उछाह।
तिहि गादी उद्दित भयौ, पारीछत नरनाह ॥२६८॥

छप्पय

ग्रीषम नृप मध्यान भान तप तेज विराजय।
वह सदोस भऐ भान सुषय साषस्स सोषय॥
यह अदोस भुव भान अन्न जल सो सव पोषय।
वह भान लपट लागय सकल विकल पान नभपथ गहय॥
*यह भान धन्य तट अछयवट होत प्रान तन लह लहय ॥२६९॥*

दोहा

आठ मास वरषात के वह वरषत चातुरमास ।
हरष तहाँ दसमास यह वरषत हेम विलास ।।३००।।
वलपत दलपत राउ कौ सोषौ सकल सुभाउ ।
जुद्ध करन दारिद हरन करन चौगुनो चाउ ।।३०१।।
लरौ वाय आनै प्रवल पारीछत मजवूत ।
वाल वैस विक्रम भयौ विक्रम करौ अकूत ।।३०२।।

छंद

विह्रैं निसंक तह सत्रजीत, हुव भूम भूप अदभुत अभीत ।
कह सत्रसैन हज्जार लक्ष्क्ष, लट्टप सुदेस सबकौ पतच्छ ।।३०३।।
इक वार इंगलौ देस मार, आयौ सु भूप रिय रोररार ।
लग्यौं पुकार अन्वो अरिंद ।।३०४।।
सेंहुडै सुपूत पठवाइ नंद, दतिया सु आंन आनंद कंद ।
करदय पबुंद अर देस देस, निरसंक आप नकसी नरेस ।।३०५।।
उत सजे इंगले धार रीस, प्यादे सवार हज्जार वीस ।
तोपें पचास लीनी जुताइ, आयौं सु साज रघुनाथराइ ।।३०६।।
धंस सिंधु पार आयौ अधीर, जुर गई पौर तह अधिक भोर ।
काटे गढ़ीन थाने कछूक, चिरगाइ दौर दावी अचूक ।।३०७।।

दोहा

कही बोल नरनाह नै, हीरा सिंघ पमारा ।
टौरी कंजौली गडी, रहियौ बहुत हुस्यार ।।३०८।।
मुजरा कर नरनाह सौ, लौटो तुरत पमार ।
कंज्जौली की गह गली, चलौ गहे करसार ।
चार तोप चल संग में, कछु प्यादे असवार ।
घेरी कंजौली लो गढ़ी, हीरासिंह पमार ।।३०६।।
सुनत खवर रघुनाथ रा, आयौ तुरत तयार ।
धायौ संग समेट कै, दस हजार असवार ।।३१०।।
भूपत लिखी पमार कौ, सुनियत लौटी फौज ।
आवत रहियौ इन्द्रगढ़, गहैं गोल मैं औज ।।३११।।

छंद हनूफाल

नरनाह पाती पाइ, सज चलौ बंम कराइ ।
उत दौरियौ रघुनाथ, सब लये सूरन साथ ।।३१२।।

लिये छैक वीच पमार, रुप गयौ गैल मझार ।
हंकार हीरासिह, धायौ सुगहि रज रिंध ॥३१३॥
बड दोइ सै असवार, पैठे सु आन जुझार ।
भागे सु दस हज्जार, काहू करौ नहि सार ॥३१४॥
लीनी सु गैल छिडाइ, रिग चले कर चितचाइ ।
गहि जौनियाको गैल, रिग चले अडत अडैल ॥३१५॥
कर गए अग्र उठान, सब फौज के मरदान ।
तोपै पछारी जान, दौरे सो अरि बलवान
किहु करो आंन पुकार, धायौ सु लौट पमार ॥३१६॥
प्यादे सवार सु संग, सत लौटियो अनभंग ।
कूदे सु तोपन पास, मनमाहँ मरन हुलास ।
इत मोर थोरां जान, रिप दौरि पौरि समान, ॥३१७॥
बहु कोद लीनै चंप, धाये सु हरिहर जंप ॥३१८॥
इत दई तोपन मार, सत्र दयो गोल विथार ।
बारूद गोला मार, रीतौ सु चलइ कतार ।
फिर फौज कीनी रार, इत दई तुपकन मार ॥३१९॥
तरवार बरछी जंग, अब चलत चारौ अंग ।
जुझवार सबरौ साथ, चहु वोर घालत हाथ ॥३२०॥
प्रथिराज कैसे सूर, रन रूपे राजत नूर ।
बहू मार अर गहि सार, सब गये जूझ जुझार ॥३२१॥

दोहा

समर सिंघ रावल कढ़ौ, प्रथीराज के संग ।
सैना गौरीसाह की, अंग अंग कर भंग ॥३२२॥
धारौ धारा नगर को, धार धनी सिर लाज ।
इमने ने महाराज कौ, ...कटौ सिर ताज ॥३२३॥

कवित्त

साँचौ स्वाम धरम सुधारौ सिंघ हीरासिघ,
चप्पौ चहुओर दष्पिती कै दलगाजनै ।
धारौ धार धनी नै अनौपै अलबेली अँड,
तोपै रखत्रे को करी सोषौ सिरताज नै ॥
मैया ओमती जो जंग अंग अंग अंग भए,
स्वर्ग लौ न छांडौ संग सकल समाज नै ।

घरबौ धरापै पाउ लरबौ अरिंदन सौ,
परबौ पमार कौ सराहौ सुर राज नें। ।।३२४।।
करी है इतेक काहू करे हे इते कौउ माचै,
घमसान पै मजेज मजबूती की।
हार दयौ हर कौ ग्रहार मांस हारन कौ,
वारितै पमार पै बहार पुरहूती की।
... ... ...
... ... ...
साध गयो स्वाम धर्म नाधगंयोन कसनेम,
बाँधगयौ हीरासिंघ सोभा राजपूती की ।।३२५।।

दोहा

सुनो इन्द्रगड़ में खवर, सत्रजीत नरनाह।
चंप्यो हीरासिंघ तहँ, धायौ कर उत्साह ।।३२६।।
गयौ जौनिया नृपति या, पाई खवर तमाम।
जूझ गये सामंत सव, स्वाम धर्म के काम ।।३२७।।

छंद

सुन राइ रीत पछताइ भूप, सामंत सूर जूझे अकूत।
चल गयव भूप जहँ जुरीय जंग, समंत देख तहँ अंग भंग ।।३२८।।
सिरदार तीन सुपपाल धार, धारे कितेक डोलन मँझार।
भरवाइ लीन गाड़ी अनेक, करि क्रिया कर्म सवको विवेक ।।३२९।।
सिरदार तीन जूझे सु देस, ल्याऔ सु इन्दगढ़ मै नरेस।
सुच क्रिया वेद विधिसहित कीन, तीरथन फूल पठवाइ दीन ।।३३०
आयौ नरिंद दतिया मकान, सैठो सु आप पांदी मचान।
जूझे जितेक मुख राख नूर, बुलवाइ नंद विन कै हजूर ।।३३१।।
जूझौ अकूत हीरा पमार, तिहि कौ सपूत गंधप कुमार।
सिरपाउ वेस पहराइ भूप, गजराज साज दीनौ अनूप ।।३३२।।
चौकरा चार चूरा सुदेस, पहराइ आप नकसी नरेस।
हय राज चौर छाया विसाल, वगसौ सुगाउ वड़की कमाल ।।३३३।।
फिर कहौ वहादुर आप भूप, दीनी बढ़ाइ सोभा अनूप।
इहि भांति और दिय दो गयंद, सबकौ नरिंद वगसे हवंद ।।
चूरा अनेक सिरपाउ खास, वगसे नरिंद सव कों हुलास।
सनमान कीन निज पांन पांन, दिय सत्रजीत इम भूप मांन ।।३३४।।

दोहा

भयै जंग रघुनाथ है, वड गौ कछुक करूर ।
कंन्हर गड रोरन गयौ, करौ मंत्र यह कूर ।।३३५।।
सत्रुजीत कौ नंद जहँ, पारीछत छित पाल ।
सकल इंगलन कौ प्रगट, रचौ विधाता काल ।।३३६।।
पारीछत वुल्लव वयन, गहौ सूर सब सार ।
करनै हीरासिंघ लै, अरितै अति संधार ।।३३७।।

छंद

ढिकलौ निसंक रघुनाथ राइ, अति भीर देख चित वड़ौ चाइ ।
गिनती कितेक कर मृगन झुंड, संकहृन सिंघ झुंडन वितुंड ।।३३८।।
तंवूर वज्ज सज्जे निसांन, सैहुडे समीप कीनौ मिलांन ।
इत सजौ वीर वुंदेल आप, नकसी विसंक विरदैत धाय ।।३३९।।
सामंत सूर हज्जार तीन, सज्जे निसोह घाई पवीन ।
सज्जयव देख नरनाह जंग, वुल्ले सु सूर सामंत संग ।।३४०।।
संग जियत सूर नृप गहै सार, उन कवन काज वांधे हथ्थार ।
हम टूक टूक जब गिरहँ खेत, नरनाह आंप बाँधियौ नेत ।।३४१।।
इहि भांति भूप रुध्धौ गंभीर, सब कढ़े कोप वाहर सधीर ।
उत बड़ौ इंगला कीन कोप, बुंदेल मीर सों घली तोप ।।३४२।।
पच्चास तोप चालै असंग, इत चार तोप लै जुरे जंग ।
उत दो हजार इत सौ जवान, इत घाट घाट रोके निदांन ।।३४३।।
उत करी दाउ अत परौ रार, रह गयौ मेर चलनै हथ्थार ।
यह सुनी परीछत भूम कंत, पठयौ सु दूत कर सर समंत ।।३४४।।
तहँ कहै दूत सब सुनहु सूर, ऐ हुकम तीन कीनै हजूर ।
बिन हुकुम खेत खगियौ न जंग, इक मुहै रार करनै अभंग ।।२४५।।
नृप हुकुम मान उसरे निषोट, कर चोट सूर फिर खंगे कोट ।
इक मास मार कीनी उमंग, हज्जार एक जूझे तिलंग ।।३४६।।
इक मास सहर गह लरे सूर, मारे हजार मुख राखि नूर ।
गड़ तीन फेर पक्के निखोट, तिहि आस पास घर घूर कोट ।।३४७।।
तिहि धूर कोट खाई बिलंद, तिहँ अग्र रंग वैंडा सुकंद ।
तह रुपे सूर अंगद समान, तज दई संक सब प्रान हांन ।।३४८।।
तह कहौ परीछत भूम पाल, करने सपूत यह भूमि लाल ।
खाई समीप इम रुपी भीर, दिषिय विंध जिम सिंधु तीर ।।३४९।।

दोहा

उतै इंगलन कोप कर, दए मोरचा आंन ।
इतै परीछत भूप के, जुरे सूर गहवांन ।।३५०।।

छंद

तोपन वंदूखन होत मार, सूझय असंख दुहुं वोर सार ।
इत बड़े मोरचन कौ चलाइ, चितचाइ करत कुलकी उपाइ ।।३५१।।
उत बेलदार हज्जार एक, इत सौ निसंक बांधे सु टेक ।
उत दुंदहेत कुल को देत, इत तै असंद ऐ नाथ लेत ।।३५२।।
इत गुन गभीर कुलफी चलाइ, कइयक तिलंग दीने उड़ाइ ।
मोरचन मे रह गयो आइ, आयौ सुसाज रघुनाथ राइ ।।३५३।।
बुलवाइ फौज कीनौ अतंक, यह कहौ आज हल्ला निसंक ।
इत लषौ आचरज सूर वीर, रुप गए निसंक मन धार धीर ।।३५४।।
झौकन बँदूख गोली भराइ, ठाडे सपूत साँमै रिसाइ ।
तंमूर मज्ज फहरै निसान, हुंकार शब्द चारौ दिसान ।।३५५।।
इम करी कूह दौरे जुझार, रुख एक एक कइयक हजार ।
आए नजीक तब दई मार, दीने अनेक पुहुमी पछार ।।३५६।।
फिर लई कोप बरछी कृपान, कर जौम कंद कूदे जवाँन ।
भागी सु लौट इंगली फौज, भूलौ गुमान मन गई औज ।।३५७।।
उत भगे जात हज्जार खेत, इत लेत जात दस बांध नेत ।
इम दये मोरचन तै भगाइ, फिर षगे सूर निज कंद आइ ।।३५८।।
उत परी होल मुरकी सु फौज, सबको सम्हार मन बँधी औज ।
आए ससंक फिर मोरचान, देखे सुखेत कलपत जवांन ।।३५९।।
बुंदेल भूप के लख सिपाह, इंगली फौज लीनी सलाह ।
तज कै गरूर निरहथे आइ, ले गये लोथ घायल उठाइ ।।३६०।।
बोले सपूत इत वांधि नेत, घायल बँदूख हूजौ सचेत ।
इहि भांत बोल फिर करी रार, लागी सु हौन बंदूख मार ।।३६१।।
वारूद पोटरिन मुजो मीर, व्याकुल तिलंग तड़फै सरीर ।
इक कहौ टेर हूजौ हुस्यार, कीजौ हमार हल्ला समार ।।३६२।।
यह कहत वीर बाढ़ौ अनंद, तरवार काढ़ कूदे सुकंद ।
पहुंचे निसंक अरि मोरचान, गई गच्छ मीर देखत कृपान ।।३६३।।
आई सु लौट फिर कंद मीर, बरछी कृपान गरुये गभीर ।
इम स्वामिधर्म पागे सपूत, निस दिवस कीन विक्रम अकूत ।।३६४।।

दोहा

आठ मांस इहि भांत सौं, घलौ सार वसु जांम ।
पारीछत महाराज कौ, वाड़ौ अत इतमाम ।।३६५।।
उतै इंगली फौज में, कीनौ सकल समार ।
अबरेखे घाइल मरे, लेखे सात हजार ।।३६६।।
तीस लाख रोकर उठी, गयौ खजानौ रीत ।
लखे फौज घाइल मरे, भइ इंगलन भीत ।।३६७।।
रहे और संग सुभट ते, गए सकल हियहार ।
महावीर बुंदेल सौं, गहत न कर तरवार ।।३६८।।
कंन्हरगड सौ सिर पटक, गए गवालियर थांन ।
जीत परीछत भूप की, जाहर भई जहांन ।।३६९।।
इत कंन्हरगड पै भए, घाइल मरे हजार ।
प्रकट परीछत भूप ने, सब कौ करौ सम्हार ।।३७०।।

कवित्त

सरवर कौन करै छूट गई नरवर,
टूट गयौ सेरग डसो सो विसेषियतु है ।
गौपाचल धौलपुर छूट गौ पिरोजाबाद,
आगरौ अलीगढ़ अनेक लेषियत है ।।
दाव के भए तें दीख दिल्ली है कितेक दीह,
लै लई लपेट लंक अवरेषियत है ।
पंचम परीछत कौ कंन्हर सहाइ भयौ,
भूपै गढ कन्हर अटूट देषियत है ।।३७१।।
अैड अंधकानी तोप चरषी चपै न गडदार की,
न मानै आँन दावै दिसा चारौ सौं ।
अरबी अरिन्द जमा जरतै उखार देत,
मूर मरौ खूनी खेत खेलत अखारौ सौ ।।
काल सौ कराल लगै दख्खनी भुआलन को,
पंचम न्रपालन कौ सुखमा पसारौ सौ ।
अंगतै उतंग अंग जंग की उमंग जाह,
राजै गड कन्हर मतंग मतवारौ सौ ।।३७२।।

छंद

दौरे सुदूत उताल, लै खवर खूव खुसाल ।
पहुँचे सु दतिया आइ, नरनाथ लीन वुलाइ ।।
उन कही खवर अनूप, सुन भयौ आनँद भूप ।
सिरपाव चूरा बेस, वहु दये नगद नरेश ।।३७३।।
सजवाइ बाजी वेस, असवार भयव नरेस ।
गहि सेहुडै की राह, हरषौ सु अत नरनाह ।।
दो पहर तुरग चलाइ, पहुँचै सुसौहुडै जाइ ।
सुन कै परीछत भूप, उत साजियौ सुख रूप ।।३७४।।
पित लयौ आगम आइ, ह्वै मिले अत सुखपाइ ।
सब सूर भेंटै आप, स्यावास कर थिर थाप ।।३७५।।
सुत लयौ संग अनूप, गड भयौ दाखिल भूप ।
कर सूर वीरन सोध, बुलवाइ कीनौ बोध ।।
सुषपाल सिहत किताव, जह राइ भूप सिताब ।
वर वाह वगसे वेस, चूरान सहित सुदेस ।।
सिरपाउ दीन अनेक, नरनाथ सहित विवेक ।
पठवाइ दतिया नंद, नृप भयौ आनंद कंद ।।३७७।।
पहुँचौ सु दतिया आइ, जो प्रजन अत सुखपाइ ।
गड घली सिलग जरूर, मुख राख आयौ नूर ।।३७८।।
गादी भयो आरूड़, पड़ भाट सुजस अगूड़।
सुन कै परीछत आप, कवि भाट किय थिर थाप ।।३७९।।
तइ आर तुरग मगाइ, जर जटित जीर घराइ ।
दो दिनन के वड़ मोल, अत ललित लपकत लोल ।।३८०।।
सुषदा दुरुष मुख साफ, निरदोस अग असराफ ।
गज गाह लसत हमेल, जे करत मृग सम खेल ।।३८१।।
वगसे परीछत भूप, कवि करे राजा रूप ।
बड़ मोल वसन विसाल, वहु दये भूपत माल ।।३८२।।
अत वड़ी आनन्द वोप, जस बड़त चितकर चोप ।
कविराज दई असीस, जीजौ सुकोटि बरीस ।।३८३।।

दोहा

सत्रजीत नर तन तजौ, कन्हरगड़ मैंदांन ।
को करहै कलकाल में, ऐसौ अकह कहान ।।३८४।।

सत्रजीत साजोज्य मौं, पावौ वास अभीत ।
पारीछत दतिया दिपत, प्रकट विक्रमा जीत ।।३८५।।

छंदपाधरी

नरनाह संग जूझे जुझार, इक गिरे खेत घाइल मुझार ।
कर प्रवल परीछत सब सम्हार, सब खवर भूप सुन विदी वार ।।३८६।।
वरदांन सग्य दलपत्त राउ, जाहर जहांन किय नकस नाउ ।
गज दए ऐक सै कविन भाट, जस नकस दिसन विदसन निराट ।।३८७।।
दो पात साहज जुरे जंग, तहँ दिपत वीर बुंदेल रंग ।
जग जंग सीस धर हैम मौर, जाहर जहांन किय तुजक तौर ।।३८८।।
जूझौ नरिंद मारे अमीर, फोरे पटान दै इक्क तीर ।
दलपत्त राउ नकसी नरेस, दतिया मकान बनवाइ वेस ।।३८९।।
इक सिवमरमरी दर दलान, लखपरत भांन सोभा समांन ।
खटरित वसंत सोमा समाग, तहँ रूचित्त रम्य रचिफूल वाग।।३९०।।
दह नाल मध्य गादी विछाइ, विट्ठव पारिछत भूप आइ ।
रन मरे सूर आनंद कंद, तिनके समान बुलवाइ नंद ।।३९१।।
नरनाथ संग जे जुटे जंग, लीने बुलाइ सब अंग भंग ।
गजराज साज सिरपाउ वेस, पहराइ चार चूरा सुदेस ।।३९२।।
काका सपूत सँग समा सिंध, कटियौ सुकन्ह सुमराषि रिंध ।
तब बखत सिंध तिनकौ कुमार, पहराइ परीछत कर समार ।।३९३।।
गजराज साज सिरपाउ वेस, पहराइ चार चूरा सुदेस ।
दीनी किताव हयराज गांउ, जस नकस कीन सब ठांर ठांउ ।।
यह भांति भूप वगसीस दीस, गुनवंत भाट दीनी असीस ।।३९४।।

दोहा

फूलवाग गादी दिपत, पारीछत छित भूप ।
कामदेव जनु तनु धरे, राजत रूप अनूप ।।३९५।।

छंद

अभि राम रूप अनूप, यह लसत गादी भूप ।
हिंदवान हद को खंभ, द्रग देखिए निरदंभ।।
हिंदवान की यह ढाल, यह भयौ आप भुयाल ।३९६।।
हिंदवान सागर सींउ, यह भूप निहचल नीउ ।
हिंदवांन की वरवांन, लग्गी सु आन भुजान ।।३९७।।

हिंदवान हदकी लाज, लग्गी सु तुव महराज ।
हिंदवान हदकौ दीप, यहि देख परत महीप ।।
हिंदवान कौ सब तौर, तुव सीस पर सिरमौर ।
हिंदवान कौ सब कर्म, लग्गौ सुनृपत अधर्म ।।
हिंदवान सकल निबाह, लग्गौ सु तुव नरनाह ।।३९८।।
हिंदवान करष कृपान, लग्गी सुनृपतु अपांन ।
हिंदवान की गुमराह, लग्गी सुतुव नरनाह ।।३९९।।
हिंदवान हदकौ नूर, तुव बनैपै भर पूर ।
हिंदवान सकल सहूर, तुव रहत भूप हजूर ।।४००।।
हिंदवान की सबरीत, तुव भुजन लग कर प्रीत ।
हिंदवान कठिन विवेक, यह जाँनबौ नृप एक ।।४०१।।
किसुनेस सब विधि जान, इम करह भूप वखान ।
हिंदवान तुव जस छाइ, दिस विदिस रह सरसाइ ।।४०२।।
तारीफ वरनी सार, नृप समभ मन निरधार ।
किसुनेस चूकौ होय, नृपमाफ करवी सोइ ।।४०३।।
यह दई हरष असीस, महाराज के निज सीस ।
यह अमर सुजस प्रसिद्ध, हुवराइ सौ सुभ सिद्ध ।।४०४।।
किसुनेस दियव सुनाइ, नरनाथ सुन सुखपाइ ।
नृप आचरन सब देख, हरखे सु देव विसेष ।।४०५।।
सब देव देत असीस, महाराज के निज सीस ।
कासी सु नृपकौ जान, सिव कहत आनँद मांन ।।४०६।।
मम तुल्य वड़ बुध आउ, जस नकस सहित सुनाउ ।
गज बदन कह कर सुद्ध, मम तुल्य वडियौ बुद्ध ।।४०७।।
कह उमा उमंग विसाल, हम दाहिनी सब काल ।
कहि मारतंड विसेष, निज वंश भूषन देष।।४०८।।
मम तुल्ल वडियौ तेज, जय जुद्ध सहित अगेज ।
वसु जांम छरित अखंड, रस एक प्रवल प्रचंड ।।
हर भांति हरि हरषाइ, बरदांन दियकर धाइ ।
गौ विप्र प्रजन सम्हार, नित नीति धर्म विचार ।।
विध वेद सहित विवेक, सुभ जान और अनेक ।
सबको जथारथ जोइ, ममतुल्ल पालक होइ ।।४०९।।

दोहा

यह विध देव असीस सुन, पारीछत छिति पाल ।
उमग अंग किसनेस कौ, दयौ बहुत विधि माल ।।४१०।।

छंद

तामै सुपत्र लिखवाउ खूब, करमांफ कुल्ल रकमैहवूव ।
इम दयौ अटिल करिकै अरिंद, तिह षूँटषांट नसिहै अरिंद ।।४११।।
जिम दई विभीपन लंक राम, निज दास जान कीनौ सनाम ।
जिम अचल भूम दावै सुजोग, कर है सुभाट इम गांउ भोग ।।४१२।।
गजराज साज सिरताज भूप, दीनी बड़ाइ सोभा अनूप ।
सद मद मतंग मातौ वहाल, जनु विंध्य भूप ठाड़ौ विसाल ।।४१३।।
दावै सु भूम झूमत गजेस, तिहि भार भूर चुप रव्हौ सेस ।
तह करत सुंड दंडन फुकार, जिम भरत सूमका छटी छार ।।४१४।।
तिहि पर वँदाइ हौदा नरेस, जरकसी झूल झलकै सुदेस ।
पावसहि पाइ रह घंटा घूम, जह चार वोर चंचला झूम ।।४१५।।
गरजै करिंद सँग घंट सोर, जन उमड नाद घनघुमड़ घोर ।
हौदा नरिंद घैली धराइ, तिहि कौ हजूर लीनौ मगाइ ।।४१६।।
जरवाफ सिरै सिरपाउ वेस, पहराइ आप नकसी नरेस ।
चौकरा चार चूरा सुदेत, वगसे नरिंद मनमान हेत ।।
गह भुजन भाट निज भुज नरिंद, दीनौ चड़ाइ हौदा कविंद ।
वाजी सुखास आसन मँगाइ, दीनौ सु भूप सव विधि सजाइ ।।४१७।।
रिंग चलौ आप भाटन जलेव, जनु रुचिर रम्य यह कांमदेव ।
नृप भयव आप भाटन हरौल, पंचम प्रचंड पौरष अतौल ।।४१८।।
इहि भांति दीन वगसीस भूप, कविराज कीन राजान भूप ।
इक दई हवेली भूमपाल, सोभा विसाल बहु लगौ माल ।।४२०।।
धनअधिप इन्द्रपुर तैं अनूप, वगसीस कीन कवितान भूप ।
फिर कहौ परीछत भूमकंत, सबकौ सुनाइ यह प्रगट मंत ।।४२१।।
वड़है सुराज जहलौ विसाल, सोभा अखंड बहु मुलक माल ।
यह हुकुम मान यौ ठांउ ठांउ, लीजौ प्रचार सब गांउ गांउ ।।४२२।।
मिलकै जु होइ हमकौ निराट, तिम मिलक लेइ किसुनेस भाट ।
इहि भांत भूप वगसीस दीन, किसुनेस भाट दीनी असीस ।।४२३।।
नाती सु इन्द नृपकौ अनूप, यह ध्रुव समान थिरथाप भूप ।
दीजत असीस खुस विसे वीस, जीजौ नरिंद कौटन वरीस ।।४२४।।

दस आठ वर्ष कर सत सम्हार, उन्तीस दून ऊपर विचार ।
भादौ सुदष्टः इत्रबार, पूरन सुग्रंथ हुव सुजस सार।।४२५।।
इतै श्री सत्रजीत राइसौ संपूरन मिती अघन वदी ३ वुधे १९७
जैसी प्रत पाई हती तैसी लई उतार,
भूलचूक सब माफकर लीजौ सुधर सुधार ।।४२६।।

टिप्पणी--३

# ब्रजभाषा का एक दुर्लभ काव्य-ग्रंथ

कुछ मास पूर्व मुझे अपने (रायबरेली) जिलांतर्गत बेहटा ग्राम के निवासी पं० लक्ष्मीशंकर वाजपेयी का ग्रंथ संग्रह देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वाजपेयी जी मुख्यत: राजनीति के आदमी हैं, पर उन्हें साहित्य और कला से भी प्रगाढ़ प्रेम है। अपने छोटे, पर व्यवस्थित, पुस्तक-संग्रह पर उन्हें उतना ही नाज है जितना अपने अनोखे रेडियो पर! ये दोनों ही उनके लिए अनिवार्य हैं।

उनके ग्रंथ-संग्रह में अनेक दुर्लभ हस्तलिखित पोथियाँ भी हैं। इनमें मुझे एक काव्य-ग्रंथ मिला। इसमें ७" × ४½" आकार वाले कुल ६२ पत्र हैं, जिन पर दोनों ओर काली स्याही से नागरी लिपि में लिखा है। प्रत्येक पन्ने पर लिखा हुआ भाग ५" × २½" है। लिखावट सुंदर है। कहीं-कहीं अशुद्धियाँ मिलती हैं, जो प्रतिलिपि की भूलें कही जा सकती हैं। लिपि-काल अबसे सवासौ या डेढ़ सौ वर्ष पहले का हो सकता है। इस ग्रंथ का विवरण प्रकाशित करने के लिए वाजपेयी जी ने मुझे अनुमति प्रदान की, जिसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

दुर्भाग्य से ग्रंथ में लेखक का नाम कहीं स्पष्ट रूप से नहीं दिया। ग्रंथ के अंतिम कुछ पृष्ठ फट गए मालूम होते हैं। हो सकता है कि लेखक ने अंत में अपना नाम तथा संभवत: कुछ अन्य परिचय दिया होगा। छंद-संख्या ३३६ में 'सेवक' नाम आया है। संभव है कि कवि का यही नाम रहा हो। परंतु निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता। एक स्थान पर लेखक ने बड़े आदर के साथ कवि शिवलाल मिश्र का उल्लेख किया है।

सेवक नाम के अनेक प्राचीन कवि मिले हैं। एक सेवक असनी के ब्रह्मभट्ट थे, जिनका 'बरवै नखशिख' ग्रंथ मिला है। इनका समय वि० सं० १८७२ और १९३८ के बीच माना गया है। दूसरे सेवक चरखारी वाले थे, जिनका कविता-काल मिश्रबंधुओं ने सं० १८९७ माना है।[1] प्रस्तुत ग्रंथ के कर्त्ता इन दोनों से पृथक् मालूम पड़ते हैं।

---

१. द्रष्टव्य 'मिश्रबंधुविनोद', तृतीय भाग, पृ० १०३६-४२ तथा १०७४।

शिवलाल मिश्र नाम के एक कवि ओरछा में हुये हैं। ये महाकवि बलभद्र के पौत्र कहे जाते हैं और इन का कविता-काल सं० १६८० के लगभग माना जाता है।[२] परंतु प्रस्तुत ग्रंथ में जिन शिवलाल कवि का उल्लेख मिलता है वे संभवतः दौलतपुर के थे।

इस ग्रंथ में कवि ने प्रायः परवर्ती रीतिकालीन ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं खड़ी बोली का तथा कुछ स्थानों पर अवधी का भी पुट मिलता है। भाषा आदि से अंत तक सरस और सजीव है। कवि का इस भाषा पर अच्छा अधिकार प्रतीत होता है। यथास्थान दोहा, बरवै, सवैया, कवित्त, पद आदि विविध छंदों का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत काव्य का वर्ण्य-विषय प्रेम है। कवि महोदय अपनी युवावस्था में विदेश गए और वहाँ किसी संभ्रांत युवती के प्रेम-पाश में आबद्ध हो गए। लगता है कि वह कवि के आश्रयदाता की ही पत्नी थी, जिसे, कवि के अनुसार, अपने पति का यथेष्ट प्रेम न मिल सका। शायद विवाह के तुरंत बाद हो पति को बाहर जाना पड़ा। कविवर के ऊपर प्रारंभ में इस परकीया सुंदरी की कृपादृष्टि रही, जिससे वे अपने जीवन को धन्य मानने लगे।

परंतु यह स्थिति अधिक दिन तक न बनी रही। कवि को अब सौंदर्य-दर्शन के स्थान पर उपेक्षा मिलने लगी। उसका भावुक हृदय वियोग की विषमता से तिलमिला उठा। बीते दिनों की याद उसे बुरी तरह सताने लगी। उसके विरह उद्गार एक ओर अश्रुधारा में और दूसरी ओर काव्य में बह निकले। फिर एक दिन वह भी आया जब कि भावुक कवि को अपनी किसी गलती के कारण परदेश से विदा लेकर अपने घर का रास्ता नापना पड़ा। वह मर्माहत हो गया; विगत दिवसों की केवल याद उसके पल्ले पड़ी।

इस काव्य ग्रंथ में सौंदर्य, प्रेम और वियोग शृंगार का हृदयग्राही चित्रण मिलता है। रचना निस्संदेह उच्च कोटि की कही जा सकती है। नीचे के कुछ दोहों और बरवै छंदों से कवि की प्रतिभा का कुछ पता चलता है। यद्यपि प्रारंभ में कवि यह कहता है कि वह काव्य-रीति नहीं जानता और गुरु से उसने शिक्षा नहीं प्राप्त की, परंतु यह उसकी विनम्रता मात्र है—

काव्य रीति जानों न कछु, गुरु सों पढ़्यो न अंक।
मूरखता के भाव-बस, कबित रच्यो निरसंक ॥ १३ ॥
सुवरण-पंजर पालि शुक, असन करावै खीर।
कोटि जतन कीजै तऊ, समता लहै न कीर ॥ ६७ ॥
पतिव्रत बार वधून को, भानमतिन को नाचु।
प्रेम-नेम कुलटानि को, केहूँ हो तन सांचु ॥ ७७ ॥

---

२. वही, चतुर्थ भाग, पृ० ३१-३२।

जे सपने में हूँ न कछु, लख्यो वियोग विछोह।
अब ताके अपदृगनि को, को करिहै आरोह ॥१०१॥
गई निगोड़ी डीठि परि, दई कहा ते हाय।
जित वह बाल खरी हुती, कौनेहु एक सुभाय ॥३५७॥
सुमुखि तिहारे रूप को, सहज धर्म यह आहि।
देखत ही हरि लेत मनु, तोहि न कछु परवाहि ॥१७२॥
सबुज कंचुकी में उरज, अति सोभा सरसात।
जुगुल जलज नित पात में, ढपे मनहु दरसात ॥
बित के हित चित आस करि, कित बिदेश सठ जात।
जात-रूप लतिका ललित, तुव अगार अवदात ॥१६२॥
ज्यों अरण्य-रोदन बृथा, कोऊ सुनै न स्रौन।
त्यों कवित्त मेरे भये, वाहि सुनावै कौन ॥
जहि कटाक्ष सर हरषि हिय, लीनो करखि सुजानि।
वहै डीठि अब ईठि की, मोंहि भई दुखदानि ॥

कुछ बरवै इस प्रकार हैं—

बालापन सुख सागर गएउ पराइ।
तरुनापन यहु बैरी पहुँच्यो आइ ॥१४०॥
बिसरि न जाइ परोसिन वह पहिचानि।
खेलनि चोर-मिहीचुनि, सुख कै खानि ॥१४१॥
सुन्दर तरुन ननँदिया नैहर पेखि।
मंद भाग्य तिय अपनो रोई लेखि ॥१४२॥

प्रेम और शृंगार पर कवि की कुछ उक्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और प्रभावोत्पादक हैं। अपनी प्रेयसी की रूप-माधुरी पर उसके कुछ छंद देखिए—

जोबन प्रकास को न आगमन अगमत,
जगी है कितीक जोति अंगनि अनूप आनि।
छूटि जात धीरज विलोकि सुर मुनिन को,
मानस की कहा चली कैसे रहै मनु पानि ॥
एतौ बित, एतौ रूप, एतौ गुन केतौ तोहि,
दीनो है बिरंचि ह्वै प्रसन्न मेरी सुखदानि।
जादू-सी सहज ही चितौनि अबहीं ते कछू,
आगे एरी कहा धौं करेगी तेरी मुसकानि ॥१६६॥

होते जो चितेरे चित्र तेरो प्यारी लिखि हम,
हिय की सकल हौंसें पूजते बनाइके।
गेह में निसंक बैठि एकत अचल चित्त,
साँची कहौं प्रानन की निधि ही सी पाइकै ।।
पंकज चरन चारु पहले परसि करि,
चूमि मुख चन्द लेते छतियां लगाइके।
सुख के समूह में समोइ तनु मनु आछे,
याही विधि जीवन को डारते बिताइके ।।४१४।।

छप्पय

अरुन कमल पद जमल अमल तुव रुचिर सुखद सत।
बसत रहत मम हृदय अहरनिसि निमिस न बिछुरत ।।
दरसत-परसत रहत चपल गति तजिय मधुप मन।
मुदित छिनहु-छिन अखिल जनम धनिधनि गुनि गाहि प्रन ।।
जब लगि कहि निज तनु अछत तब लगि यह निरबहि पढ़ब।
सुनि सुमुखि सुमन अगनित अपर, चलति न रुचि कहुँ अनत अब ।।

अपने रूप-रस प्यासे नेत्रों के लिए कवि इस प्रकार कहता है—

देखहू देखे बिना कलपै, बिष बेलि विषादमयी हिये कोड़ी।
कीजै कहा चित्त-चाह बुरी, जिय जाति भई सबही की कनोड़ी ।।
वाहि नहीं परवाह इतें, पर, जा के लिए कुलकानि यों छोड़ी।
नै जु लगें अँखिया दई मारी ए, राजु करै यह प्रीति निगोड़ी ।।

कौन समुझावै हाय कैसो कीन्हों कहा इन,
काहू निरदय करी पीछे लागी धाइकै।
छिपकै छिपाइकै विलोकतीं चवाई नितै,
चोरि पनघट जाइ चुपचाप आइकै।
धिग ऐसे नेह को कहाँ ते कौन कारन ते,
कौन धौं बलाइ लागी सुखदाई आइकै।
इतने ही सुख के लिए ही ए हमारी आँखें,
बावरी भई हैं दई मारी कहाँ पाइ कै ।।३२१।।

कवि की इस अप्रतिम नायिका के प्रति उसका पति संभवतः कठोर रहा, क्योंकि कवि के अनुसार वह (पति) विवाह के तुरन्त बाद ही अन्यत्र चला गया। कवि की सहन-शक्ति के यह बाहर था—

बदन मयंक नैन इंदीवर चारु सोहै,
बिकसे अधर कर पंकज मनोरी है।

बार तो सेवार-से बिसाल कारे सुकुमार,
भृकुटी धनुष कैसी बंक करि मोरी है ।।
जातरूप गात, कुच स्त्रीफल-से रचे विधि,
सकल बनाव अंग अंगन बनोरी है।
कैसो तेरो नाहु गोरी व्याहु की न गांठ छोरी,
पंथ-परदेस को री काहें तें गहो री है ।।३८२।।
क्वारें भली रहै बीस बिसे, अपने पितु-मातु के धाम धिया।
यों ही हुती करिबें को जु पै तब काहे को मूरख ब्याह किया ।।
तोसी अनूपम सुन्दरी को लहि वाही दिना ते बिदेस लिया।
तेरे पिया को छिया में दिया, अरी एरी तिया वाको कैसो हिया ।।३८३।।
होती जो बगीचा बीच काहू सुकृती के एरी,
धन्य वह भागमान आपने बिचारतो।
प्यार कै अपार मन तोहीं में बसाइ लेतौ,
आनंद बढ़ाइ केतो उर सीस धारतो ।।
फूली बन में तू कहा पसुन को बास जहाँ,
जानै न सुवास ज्ञानवान प्रान वारतो।
मालती सुमन तोहि पावतो सुजन जन,
आँखिन के आगे ते न एक छन टारतो ।।

अपनी इस हृदय-देवी से विछोह हो जाने पर कवि को असह्य वेदना हुई। उसने अनुभव किया कि उसकी प्रेम-लीला मृग-मरीचिका जैसी थी। वह अपने प्रेम का मूर्त रूप न देख पाया। वियोग पर कवि की रचनाएँ मधुर पीड़ा और आक्रोश से ओत प्रोत हैं—

नितै आनि कढ़ो तबै आगे सदा, इत द्वार हमारे ह्वै बारहु-बार।
नहीं आइबो होत कहूँ सपने, अब तो यहि ओर अबार-सबार ।।
कहा चूक परी वह क्यों न कहो, तुम काहे तज्यो हित को ब्यवहार।
चढ़ै आपनी नाउ भले जू हमैं, लगी बोरन बीच ही में मँझधार ।।
नेरे ह्वै न देख्यौ एक बारक कहूँ कै वाको,
बदन मयंक चारु नैननि को सुखदानि।
मधुर सुधा से मंजु नैनऊ सुने न श्रौन,
प्यार ऊचरति हीं परम प्रेम हित खानि ।।
दूरहूते जाके दरसन कीने आस पूजे,
लालसा बिवस जीव ललकै वृथा ही आनि।

तैतों प्रान वारे, पै न तोहि वह चहै तासों,
लगनि लगाई मन मेरे एरे कहा जानि ।।३३०।।
निकट न देख्यो ह्वै प्रगट मुख रावरे को,
ज्योंही कछु मेरो जीव लटू भयो तेरो है।
निरगुन रूप जैसे परब्रह्म ईश्वर में,
मुनिन को मनु लागै नेमु कै घनेरो है ।।
पूरब जनम ही को संसकार बन्यो यह,
ऐसो तो सनेह कहूँ सुन्यो है न हेरो है।
तै ही बसै प्रानन हमारे प्रानप्यारी सुनु,
अरु मेरे प्राननि को तोही मैं बसेरो है ।।
अब के पछिताने कहा सजनी, जब आगे इहै मति आवती तौ ।
अति नीके मैं नाहक नेह-जँजाल में, क्यों परि जीव जरावती तौ ।।
कुल गोकुल में इन भाँति नही, हठि काहे को नाउ धरावती तौ ।
यह जानती जो परिनाम 'हमैं हरि छाँड़िहैं,' छाहौं न छ्वावती तौ ।।२७२।।
सोवत-जागत सपनेहूँ ओर सो तक हूँ,
छबि वा छबीली तेरी हिय में बसति है।
नींद-भूख-प्यास भूली सूली सो रहत प्रानु,
आयु भई छीन सोऊ ऊनी ए ससति है ।।
एरी गरबीली क्यों न दरस दिखावै आनि,
जीव ही की प्यासी कैधों प्रेमहिं कसति है।
रूप दरसाइ तब मनु ललचाइ मेरौ,
बावरो बनाइ मोहिं अब तू हँसति है ।।३६५।।
इत आइकै आपुही ते तब तौ, मुसकाइ तिरीछे चितै चितचोर ।
अति मीठे मनोहर बोलनि बोल, हर्यो मन मानिक मो बरजोर ।।
अब कैसी भई हित सो दई पीठि, न जानिये सो कित है केहि ओर ।
सखि काहे ते धौं यह मेरो हियो, दरकै नहिं पाहनहूं ते कठोर ।।३६७।।
कासों रोइ कहैं कछू कहत बनै न हाय,
कौन के करेजे पीर कसकै हमारी है।
प्रान हूं तजों तौ काहू नेकऊ न परवाह,
दई ऐसो ठौर मरिबे की विधि सारी है ।।
करम हमारे यों ही विधि ने लिखी ती सोचि,
दोष काहू दीजै भावी सवते निनारी है।

जरता पतंग जैसे दीपकै न चित चाह

ए कहाँ की प्रीति रीति ऐसिए निहारी है ।।३१८।।

स्वदेश-गमन के समय कवि-हृदय स्थायी वियोग की कल्पना से व्यथित हो उठा। वह अपनी हृदयेश्वरी से स्मरण की भीख माँगता हुआ क्षमा-याचना करता है—

सुनि साहिबिनी सुखदानि सदा, मति छोड़िबी दाया जु है हितते ।
अति आनँद रावरी ओर लह्यो, अब जात सुदेस चले इतते ।।
दुख एक इहै जिय अन्तर मो, तुव पायँन को लखिबो नितते ।
जन जानि कै आपुनो मोहिं हहा, न बिसारबी सेवक को चितते ।।३३९।।

थोरी बात ऊपर करत कोऊ कोप एतौ,
जेतौ आपु बोलि कटु मोहि दुख दीनो है ।
चूक जो परीती कछु भूलि कै अयान बस,
छमा ही उचित जानि आपनो अधीनो है ।।
जौपे जिय भायो हित हौं तो करिबोई आछौ,
तौ तो याते ससु हतिबे को मतो पीनो है ।
जामे कहा एहो तुम्हें मोहिं तरसाये मिलै,
मरिबे न जीबे में न द्वै मे एक कीसो हैं ।।३४८।।

अपने प्रेम को स्थायित्व प्रदान करने के लिए कवि विवश हो कर विधाता से विनय करता है—

अहो हो विधाता ! नाथ, अटल भरोसो तव,
नेसुक कृपा की डीठि मोतन निहारिहो ।
क्यों हूँ एक बार कहूँ फेरि आँसु ही में आँसु,
वाही बानि वाही ठौर जित वह पारिहो ।।
गमन कराइहो मुदित मन मेरो उत,
जानि निज दासु ऐसो बुद्धि उर धारिहो ।
जानि अस चरन दास चरन बेजू,
कब मो बिछोह दुख दूरि करि डारि हो ।।

भाग में मेरे विधाता कहूँ, कबहूँ सपनेहूँ में जो लिख देतो ।
होइगो तोसों औ मोसों मिलाप, मृषाहू जो बात सो साँचु कै लेतो ।।
धन्य कै आपु को मानु तो सौ भरि औ भरि खेद न तो कछु एतो ।
एक ते लाख चबाई कलंकहि, होतो कहा जो लगावते केतो ।।

सुभग सलोनी गोरी रूप रासि रूरी भूरि,
चाहि-चाहि नैन ये हमारे मोद सरसैं ।

जानि तब योंही दिन होहिंगे सदा ही सब,
फेरि नहिं कबहूँ बिछोह दुख दरसैं।
सो तो वह समयो कपूर लों उजहि गयो,
गूलरि को फूल भयो छाँहियो न परसैं।
मन की हमारी हौंसे जल की बलूला भई,
ह्वाईं अब तुम्हें हम देखिबे को तरसैं।।

प्रेयसी तथा अपने प्रेम की अनवरत मंगल-कामना करता हुआ कवि कहता है—

जित रहौ तित हित चित ते चरन तुव,
टरिहै न टारै बात साँची कै विचारबी।
तेरोहौं अनेरो चेरो तऊ यहै जानतु हौं,
जौंलौं तन प्रान तौलौं नेम पूरो पारिबी।।
सेवा के निकट कहूँ कबहूँ अँटत नाहीं,
बिनती हमारी हाहा केहू हिये धारिबी।
जैसो अरु तैसो हौं अनैसो सब भाँतिनि सों,
सुरति न मेरी देवि मन ते बिसारिबी।।

प्रेमी हृदय का करुणा-मिश्रित शाश्वत संदेश इन पंक्तियों में मूर्तिमान हो उठा है—

अहे रूपरासि प्रानजीवनि अवधि सींव।
मनकी हमारी नहीं जानै है कि जानई।।
अब लौं बिलोकि तोहिं जैसी कछू लोयन नूँ,
मेरे इन लही ती अनन्त ही अनंदई।
सुखसों सदा हीं तुम नीके रहो सब काल,
बिछुरे-तिहारे हमें होइगी-औ जो भई।
कहिबे कहा सो, जहां रहेंगे तहां ते तुम्हें,
सुमिरो करेंगे जौं लौं आयु बिधि ने दई।।

बिनती कर जोरि करी परि पाइँ, हिये बिच मोहिं पिछाने रहो।
अभिलाखी हमारो लखै को सदा, यह जानि दया जिय आने रहो।।
मनसा बच कायिक साँची कहौं, नहिं और-चहौं हितु ठाने रहो।
निज दासु हमैं करि माने रहो, इतनो अपने चित जाने रहो।।

मरने के बाद कवि को मोक्ष आदि प्राप्त करने की अभिलाषा भी नहीं हैं। वह तो इससे कहीं अधिक अपनी प्रेयसी के अंगों को पोंछने वाला वस्त्र ('अँगौछा') बनना पसंद करेगा।

मोक्ष-वोक्ष नहिं चाहतो,
मो मन को यह तंत।
समय पाइ तुव अँगन को,
होउँ प्रोक्ष्य-पट अंत ।।

यह है एक प्रेमी कवि का आत्म-चरित जो इस हृदयस्पर्शी रचना के अनुसार प्रेम के लिए जिया और प्रेम के लिए मरा।

—श्रीकृष्णदत्त बाजपेयी



# क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के प्रकाशन

१. "भारतीय साहित्य।" त्रैमासिक मुखपत्र। वर्षभर में ८०० पृष्ठों की गवेषणापूर्ण सामग्री। वार्षिक मूल्य—१२, रु०। एक प्रति—५, रु०। वर्ष भर के सजिल्द अंक १८, रु०; अजिल्द—१६, रु०। जनवरी १९५६ से प्रारम्भ।

२. "ग्रंथ-वीथिका।" अलभ्य एवं अप्रकाशित हस्तलिखित तथा अप्राप्य मुद्रित ग्रंथों का संग्रह। १९५६ के ... अंक में और १९५७ के अंक में ग्यारह ग्रंथ हैं। ... ६०।

३. "हिन्दी धातु-संग्रह।" ... हिन्दी रूपान्तर। ... ०।

४. "जाहरपीर गुरुगुगा ... लोकगीत तथा उसकी गवेषणा ... रु०।

५. "भारतीय ऐतिहासिक ... ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास ... ६०।

६. "छन्दोहृदयप्रकाश।" ... विश्वनाथ प्रसाद। ... रु०।

७. "मानस में उक्ति-सौ ...

८. "अनुसंधान के मूल ...

९. "अली आदिलशाह ... श्री मुबारिजुद्दीन ...

१०. "शोला का काव्य ... सं०—डा० विश्व ...

११. "चंदायन।" ... प्रसाद।

१२. "पद्मावत।" ... अग्रवाल।

१३. "पिंगल-संग्रह।" ... प्रसाद।

१४. "नजीर का काव ... प्रसाद।

१५. "तुलनात्मक ... गानोव। ... शुक्ल।

१६. "बंगाल की ... सत्येन्द्र।

१७. "ब्रज-लोकवा ... ० सत्येन्द्र।

१८. "शशिमाला ... र शास्त्री। ... अग्रवाल।

१९. "नल-दमन ... याल।

२०. "ब्रज के लोकव्रतानुष्ठान। ... डा० सत्येन्द्र।